स्वामी विवेकानन्द और शिक्षा

अध्यापक प्रशिक्षकों का सशक्तिकरण

मॉड्यूल्

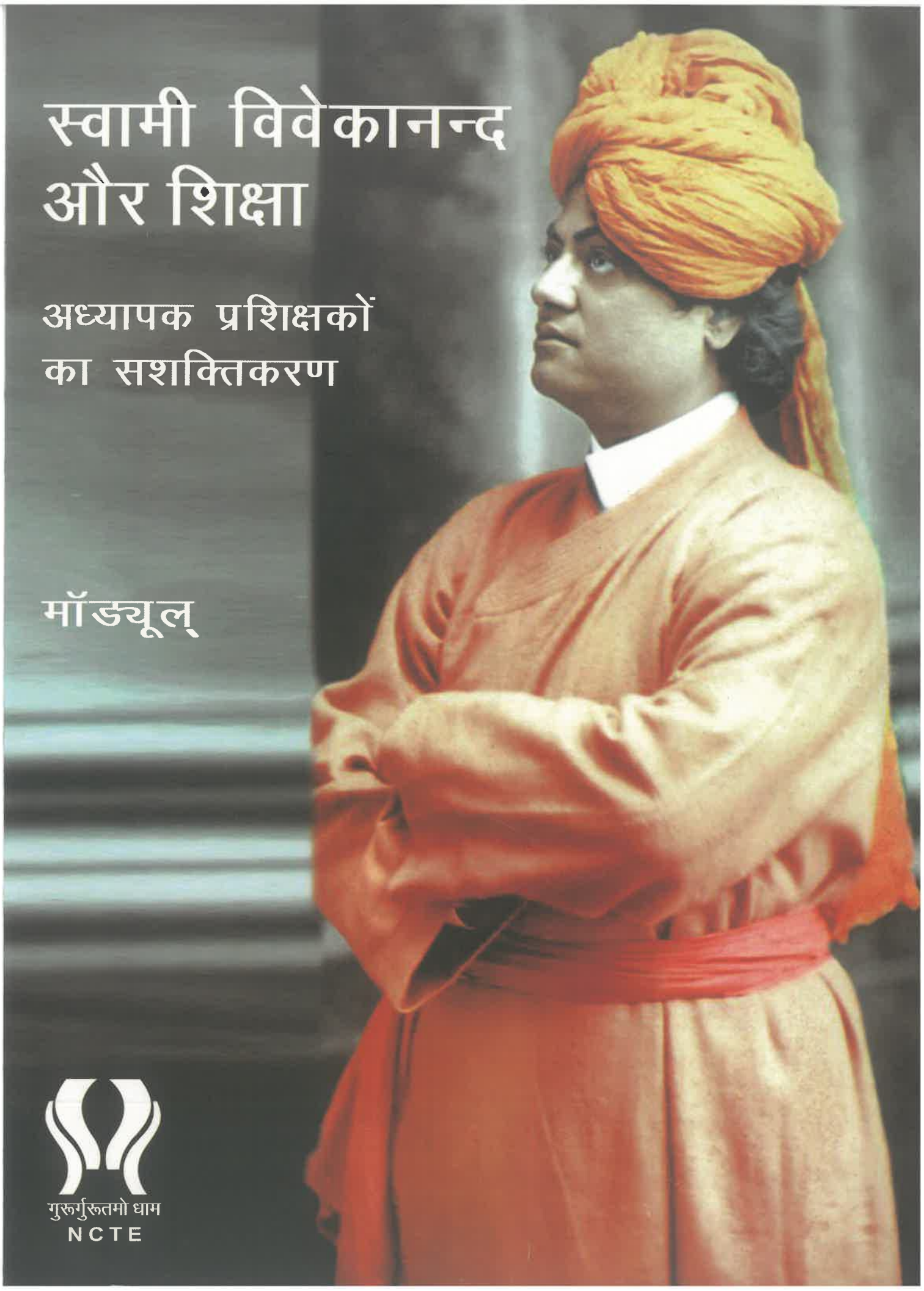

गुरूर्गुरूतमो धाम
NCTE

स्वामी विवेकानन्द

मैंने गहराई से उनकी समस्त पुस्तकों का अध्ययन किया है और ऐसा करने के बाद मेरे देश प्रेम में हजार गुना वृद्धि हुई।

महात्मा गाँधी

यदि तुम भारत सम्बन्धी ज्ञान अर्जित करना चाहते हो तो विवेकानन्द को पढ़ो, उनमें सब कुछ सकारात्मक है, नकारात्मक कुछ भी नहीं।

विवेकानन्द की शिक्षायें मनुष्य के पूर्णत्व को जाग्रत करने में सक्षम थीं। यही कारण है कि हमारे युवक उनको अनेकानेक रूपों में ग्रहण कर त्याग तथा पौरूष के द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्ति हेतु जाग्रत हुए।

रवीन्द्र नाथ टैगोर

विवेकानन्द की प्रगति, जैसी कि उनके गुरू ने भविष्यवाणी की थी, के अनुरूप थी। इस वीरात्मा ने सम्पूर्ण विश्व को अपनी प्रखर बुद्धि और ओजस्वी वाणी से परिवर्तित कर दिया। उनका उदय वह पहला संकेत था जिसके द्वारा विश्व की समझ में आ गया कि भारत केवल जीवित ही नहीं था, अपितु वह विश्व विजेता बनने की सामर्थ्य रखता था। एक बार धर्म द्वारा देश की आत्मा के जागृत हो उठने के पश्चात्, यह मात्र समय और अवसर आने की बात थी जब इस देश को आध्यात्मिक तथा बौद्धिक गतिविधियों में भर जाना था।

हम यह अनुभव करते हैं कि आज भी उनका प्रभाव एक वृहत् रूप में हम पर पड़ रहा है। भारत के जर्जर शरीर में नयी शक्ति तथा आत्मा का संचार हमें दृष्टिगोचर हो रहा है, जिसके प्रभाव से हमारे राष्ट्र की कायापलट होती जा रही है, जिसे देख हमारे मुँह से बरबस निकल पड़ता है, ''देखो आज भी विवेकानन्द अपनी माता की (भारत) तथा उसकी संतानों की आत्माओं में वास कर रहे हैं।''

श्री अरविन्द

उनके लिए धर्म ही राष्ट्रीयता का प्रेरक था। उनका प्रयास था, भारतीय युवा पीढ़ी में अपने देश के प्राचीन गौरव के प्रति सम्मान जागृत करना और भविष्य के प्रति आस्थावान बनाना एवं उनमें आत्मविश्वास और आत्मसम्मान जगाना।

बलिदानों में बेधड़क, परिश्रमों में अथक, प्रेम में असीम, बुद्धिमत्ता में गम्भीर एवं प्रतिभावान, भावनाओं में उत्कट, आक्रमणों में निर्दयी होते हुए भी शिशु के समान– वे हमारे संसार के दुर्लभ व्यक्तित्व थे...

स्वामी जी का व्यक्तित्व पुरूषार्थ से परिपूर्ण था– वह एक विलक्षण योद्धा थे, जिसके फलस्वरूप वह शक्ति के उपासक बने तथा अपने देशवासियों के उत्थान हेतु उन्होंने वेदान्त को व्यावहारिक किया।

सुभाष चन्द्र बोस

स्वामी विवेकानन्द और शिक्षा

अध्यापक प्रशिक्षकों का सशक्तिकरण

(मॉड्यूल)

गुरूर्गुरूतमो धाम
NCTE

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद्
हंस भवन (विंग-II)
1, बहादुर शाह ज़फर मार्ग,
नई दिल्ली-110 002
डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू.एनसीटीई-इंडिया.ओआरजी
(www.ncte-india.org)

स्वामी विवेकानन्द और शिक्षा

अध्यापक प्रशिक्षकों का सशक्तिकरण

संकलन एवं सम्पादन :

प्रोफेसर के0 पी0 पाण्डेय
प्रोफेसर बी0 पी0 खण्डेलवाल
डॉ0 शरदिन्दु

राष्ट्रीय व्याख्यान श्रृंखला समिति
संयोजकः डॉ0 अनिल शुक्ला

©राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद्, 2015

आवरण अभिकल्पन : सागर प्रिंटर्स, नई दिल्ली–110003
टंकण एवं आकार व्यवस्था : अमित कुमार
प्रकाशक : सदस्य–सचिव, राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद, नई दिल्ली–110002
मुद्रक : सेंट. जोसेफ प्रेस, नई दिल्ली–110020, ई–मेल : stjpress@gmail.com

अंतर्वस्तु

पृष्ठ

आमुख **vi**

मॉडयूलों की अन्तर्वस्तु **viii**

मॉडयूल 1: भारत में अध्यापक शिक्षा का परिप्रेक्ष्य **1**

1.1 स्वामी विवेकानन्द के दर्शन की प्रासंगिकता 3
1.2 अध्यापक और अध्यापक शिक्षा का परिप्रेक्ष्य 4
1.3 अध्यापक शिक्षा का गुणात्मक और नियामक परिप्रेक्ष्य 7
1.4 अध्यापक शिक्षा के सशक्तिकरण हेतु राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद की भूमिका 7
1.5 अध्यापक शिक्षा में प्रतिमानपरक बदलाव की आवश्यकता 9
1.6 विचारकों की श्रेणी में स्वामी विवेकानन्द की प्रथम प्रस्तुति–क्यों? 11
चिन्तन हेतु 12
पठन एंव मनन हेतु 13
अभ्यास हेतु 14
अध्ययन एंव परामर्श हेतु 14

मॉडयूल 2: स्वामी विवेकानन्द की शैक्षिक अवधारणा : अध्यापक प्रशिक्षकों के लिए संदेश **15**

2.1 मानव निर्माणकारी शिक्षा 17
2.2 व्यक्तित्व विकास में शिक्षा का योगदान 20
2.3 चरित्र-निर्माणकारी शिक्षा 22
2.3 शान्ति और सौहार्द के लिए शिक्षा 24
2.5 समानता और उत्कृष्टता के लिए शिक्षा 31
चिन्तन हेतु 33
पठन एंव मनन हेतु 34
अभ्यास हेतु 35
अध्ययन एंव परामर्श हेतु 35

मॉडयूल 3: पाठ्यक्रम और शिक्षण पद्धतियाँ : स्वामी विवेकानन्द का परिप्रेक्ष्य **37**

3.1 पाठ्यक्रम अभिकल्प उपागम 39
3.2 अन्तर्वस्तु और प्रक्रिया 42

3.3 शैक्षिक विधियाँ – प्रत्यक्ष और परोक्ष 43
3.4 सूचना और सम्प्रेषण प्रौद्योगिकी (आई.सी.टी) की भूमिका 48
चिन्तन हेतु 53
पठन एंव मनन हेतु 54
अभ्यास हेतु 55
अध्ययन एंव परामर्श हेतु 55

मॉडयूल 4: साध्य और साधन **57**

4.1 वैश्विक संदर्भ और शिक्षा के उद्देश्य 59
4.2 सामंजस्य की स्थापना में अध्यापक प्रशिक्षक की भूमिका 60
4.3 अध्यापक प्रशिक्षक तथा छात्राध्यापक के मध्य संबंध 61
4.4 प्रभावी अध्यापक शिक्षा के लिए सेवा–पूर्व और सेवारत परिप्रेक्ष्य 63
4.5 साधन एंव साध्य 66
चिन्तन हेतु 69
पठन एंव मनन हेतु 70
अभ्यास हेतु 71
अध्ययन एंव परामर्श हेतु 71

मॉडयूल 5: अध्यापक प्रशिक्षक एंव नैतिक आचार **73**

5.1 नैतिक शिक्षा : मुद्दे एंव परिप्रेक्ष्य 75
5.2 भारतीय विचारकों के दृष्टिकोण :
स्वामी विवेकानन्द के विशेष संदर्भ में 77
5.3 अध्यापक प्रशिक्षकों के लिए मूल्य शिक्षा : प्रभाविता लाने की युक्ति 82
चिन्तन हेतु 94
पठन एंव मनन हेतु 95
अभ्यास हेतु 97
अध्ययन एंव परामर्श हेतु 97

मॉडयूल 6: स्वामी विवेकानन्द के विचार –
'दायरे से मुक्त सोच' में योगदान **99**

6.1 'दायरे में बन्द सोच' और 'दायरे से मुक्त सोच : भेदक लक्षण 101
6.2 गुणवत्ता एवं श्रेष्ठता 106
6.3 समानता और समता 110
6.4 महिला सशक्तिकरण 113
6.5 जन शिक्षा 118
6.6 पर्यावरणीय शिक्षा और प्रबन्ध 124
6.7 राष्ट्रीय एकता 127

6.8 अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध 132
6.9 सुस्थित जीवन शैली : स्वास्थ्य, स्वास्थ्य-विज्ञान और योग 138
6.10 अध्यापक प्रशिक्षकों के लिए नेतृत्व :
रूपान्तरणवादी बनाम क्रियान्वितिकारी 149
चिन्तन हेतु 156
पठन एंव मनन हेतु 159
अभ्यास हेतु 162
अध्ययन एंव परामर्श हेतु 164

हिन्दी–अंग्रेजी शब्दावली **167**

आमुख

स्वामी विवेकानन्द हमारे राष्ट्र के महान देशभक्त सन्त एवं उच्चतम अनुभूति वाले युग-द्रष्टा थे। मानव-कल्याण एवं उत्थान उनका परम ध्येय था। वे एक अग्रणी चिन्तक थे जो आध्यात्मिक सत्यों का प्रतिपादन अत्यन्त सरल ढंग से करने के साथ-साथ, विविध विषयों यथा विज्ञान, संगीत, कला, समाज एवं शिक्षा आदि पर सारगर्भित विवेचन भी प्रस्तुत करते रहे हैं। उनके विचार एवं शब्द नीति-प्रणेताओं, शिक्षकों, प्रशासकों एवं अभ्यासकर्त्ता अभिकर्मियों के लिए प्रेरणा के अविरल स्रोत रहे हैं।

अध्यापक शिक्षा के लिए एक शीर्ष नियामक निकाय के रूप में गठित राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् का प्रमुख उद्देश्य गुणवत्ता के मुद्दों पर विमर्श को प्रोत्सहन एवं उन्हें सामंजस्य की परिधि में लाना है। इस परिप्रेक्ष्य में हम अपने देश के युग निर्माता चिन्तकों जिन्होंने बच्चों एवं युवाओं की शिक्षा हेतु एक नवीन दृष्टि के अभ्युदय में अवदान किया है तथा जिनसे हमें प्रेरणा मिलती रही है, के विचारों को अवगुण्ठित एवं सुलभ बनाने की जिम्मेदारी एवं भूमिका के प्रति सचेत हैं। इसी उद्देश्य से पूर्व में 'श्री अरविनद' तथा 'श्री माँ' के उदबोधनों की श्रृंखला विरचित की गयी थी तथा जिसके प्रति हमारी नयी पीढ़ी के अध्यापक प्रशिक्षकों का ध्यान सहज रूप में आकृष्ट हुआ है।

अध्यापक प्रशिक्षकों के सशक्तिकरण की आवश्यकता को दृष्टिगत रखते हुए महान् चिन्तकों के विचारों से परिचित कराने के हमारे सत्प्रयास में स्वामी विवेकानन्द को प्रथम प्रस्तुति के रूप में लिया गया है, यतः पूरा देश उनके विचारों से समर्थन एवं निर्देश प्राप्त करने का आकांक्षी है। स्वामी विवेकानन्द मानवीय श्रेष्ठता के मूर्तिमान उदाहरण थे एवं उनका व्यक्तित्व बहुआयामी था। प्रस्तुत अभिकल्प जिसमें स्वामी जी की शिक्षाओं के आधार पर उपयोगी अधिगम सामग्री संकलित करना अभीष्ट रहा है, एक स्थान पर अध्यापकों तथा अध्यापक प्रशिक्षकों को लाभ पहुँचाने की दृष्टि से गठित की गयी है। यह प्रथमं प्रयास है। इसे अन्य अग्रणी चिन्तकों के विचारों से जोड़ते हुए सम्वादपरक कार्यशालाओं के माध्यम से व्यापक आयाम दिया जायेगा।

इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु एक समिति गठित की गयी है, जिसके सदस्य हैं— प्रो. बी.पी.खण्डेलवाल, पूर्व निदेशक नीपा (एन.आई.ई.पी.ए.), डॉ शरदिन्दु, पूर्व अध्यक्ष, राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद तथा प्रो. के.पी. पाण्डेय, पूर्व कुलपति, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, समिति के अध्यक्ष तथा डॉ, अनिल शुक्ला, उपसचिव (एकेडेमिक) एन.सी.टी.ई., समिति के संयोजक हैं। यह अत्यन्त प्रसन्नता का विषय है कि समिति ने विवेकानन्द केन्द्र, कन्या कुमारी के सहयोग एवं समर्थन तथा अन्य महत्त्वपूर्ण स्रोतों का अवगाहन करते हुए एक उपयोगी अध्येय सामग्री का अवचयन किया है, जिसे छः मॉड्यूल् के रूप में अभिकल्पित एवं प्रस्तुत किया गया है। इन मॉड्यूलों का हिन्दी रूपान्तरण इस रूप में

पाठकों विशेष रूप से अध्यापक प्रशिक्षकों एवं छात्राध्यापकों के लाभार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है।

इस पूरे प्रकल्प को वास्तविक आकार एवं आधार उपलब्ध कराने में विवेकानन्द रॉक मेमोरियल तथा विवेकानन्द केन्द्र, कन्या कुमारी के उपाध्यक्ष श्री ए. बाला कृष्णनन् तथा उनके सहयोगियों के प्रति हम आभारी हैं। हिन्दी रूपान्तरण की प्रक्रिया में वाराणसी स्थित विश्वविद्यालयों विशेषतः काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के आचार्य डॉ. अवधेश प्रधान और डॉ.सी.वी.द्विवेदी, तथा सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के निवर्तमान आचार्य एवं संकाय प्रमुख डॉ. वाचस्पति द्विवेदी, एवं महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ की शिक्षाशास्त्र संकायाध्यक्ष डॉ. कल्पलता पाण्डेय का योगदान सराहनीय रहा है।

अन्त में, मैं समिति के सदस्यों के प्रति अपना आभार प्रदर्शित करना चाहूँगा, जिन्होंने स्वल्प समयावधि में पूरे कार्य को फलीभूत किया है। मुझे पूरा विश्वास है कि अध्यापक शिक्षा से जुड़े हमारे सभी साथी तथा अन्य शिक्षक इस सामग्री से लाभान्वित होंगे तथा इस परियोजना को व्यापक संवाद के दायरे में लाकर गुणवत्ता के मुद्दों को अपेक्षित महत्त्व देंगे। साथ ही स्वामी जी के उद्‌बोधनों को सम्यक् रूप में आत्मसात्करण हेतु छात्राध्यापकों, प्रशिक्षण विद्यालय के अन्य अध्यापक प्रशिक्षकों के मध्य संवादों की उपयोगी श्रृंखला सृजित करेंगे, जो वर्तमान संदर्भ में अत्यन्त सामयिक है।

प्रो. संतोष पांडा
अध्यक्ष,
राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद

स्थानः नई दिल्ली
दिनांकः 26 फरवरी, 2015

मॉड्यूलों की अन्तर्वस्तु

जीवन एवं शिक्षा के बारे में स्वामी विवेकानन्द की व्यापक दृष्टि को दो शब्दों में सारांकित किया जा सकता है– सन्तुलन तथा संश्लेषण। नौबेल पुरस्कार विजेता रोमॉ रोलान्ड ने जैसा कि कहा था "वह समस्त मानवीय ऊर्जा के सामंजस्य की प्रतिमूर्त्ति थे। उनके प्रेरणादायक शब्द सभी के लिए तथा सभी समय के लिए– भूत, वर्तमान एवं भविष्य के प्रबल स्तम्भ रहे हैं।"

स्वामी जी के अनुसार हमें ऐसी शिक्षा चाहिए जो जीवन-रचना, मानव निर्माण एवं चरित्रगठन में मद्दगार हो, इन अभिकथनों के वास्तविक भाव को समझने एवं उस आत्मसात् करने का समय अब आ गया है। इस दृष्टि से वर्तमान शिक्षा प्रणाली के प्रतिमान में क्रान्तिक बदलाव अपेक्षित है। प्रस्तुत छः मॉड्यूलों को स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक चिन्तन के आच्छादक परिप्रेक्ष्य में विकसित किया गया है।

स्मरणीय है कि स्वामी जी के लेख एवं प्रवचन विषयों के एक बड़े परास-दर्शन, धर्म, समाजशास्त्र, कला, स्थापत्य कला तथा संगीत तक को अपने में समेटे हुए हैं तथा वे लौकिक एवं आध्यात्मिक दोनों ही मुद्दों से संबंधित हैं। किन्तु वर्तमान प्रयास का प्रयोजन शिक्षकों से सामान्य रूप में तथा अध्यापक-प्रशिक्षकों से ही विशेष रूप में अनुसीमित होने के फलस्वरूप केवल उन्हीं प्रकरणों को चयनित किया गया है, जो शिक्षा की अन्तर्वस्तु, प्रक्रिया, शिक्षक-विद्यार्थी संबंध, साध्य-साधन सामंजस्य, जन शिक्षा, महिला सशक्तिकरण तथा स्वामी जी के शिक्षा विषय पर कतिपय अन्य मुक्त एवं बेवाक उद्गार के रूप में उपलब्ध हैं। इन मॉड्यूलों का अभिकल्पन इस आशय से किया गया है कि स्वामी जी के विचारों को यथा साध्य मौलिक रूप में उद्घाटित करते हुए नयी पीढ़ी के अध्यापक-प्रशिक्षकों को गतिमान एवं प्रेरित करने का सुदृढ़ आधार उद्दीप्त हो सके।

इन मॉड्यूलों से सार्थक अन्तर्क्रिया के माध्यम से पाठकों की शैक्षिक उत्कण्ठा अभिवृद्ध होगी। हमें पूरी आशा है कि इनके माध्यम से अध्यापक-प्रशिक्षकों के सशक्तिकरण की दिशा में एक सकारात्मक आयाम जुड़ पाएगा जिस पर स्वामी जी अपनी प्रस्तुतियों में प्रायः ज़ोर देकर चर्चा किया करते थे।

प्रथम मॉड्यूल् के अन्तर्गत अध्यापक-शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में कतिपय उन अवश्यकरणीयों की ओर संकेत दिया गया है जिनके प्रति राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद की योजनाएं एवं कार्यक्रम गुणवत्ता के मुद्दों की दृष्टि से संकल्पित हैं तथा जिनके लिए विभिन्न प्राविधानों एवं नीतियों का सृजन किया गया है।

द्वितीय मॉड्यूल् में स्वामी विवेकानन्द के शिक्षा दर्शन एवं शिक्षा की अवधारणा को विस्तारपूर्वक प्रस्तुत किया गया है। यहाँ स्वामी जी के विचारों पर केन्द्रित प्रमुख मुद्दों को अत्यन्त सावधानी पूर्वक चयनित एवं विश्लेषित किया गया है जिससे अध्यापक-प्रशिक्षकों को उनसे अपेक्षित लाभ प्राप्त हो सके। ऐसे विमर्शी-संकेन्द्रकों से निःसृत शैक्षिक एवं सांस्कृतिक लोकाचार को सम्यक् रीति से समझने एवं आत्मसात्कार कराने हेतु यह मॉड्यूल् एक ठोस आधार प्रदान करता है।

तृतीय मॉड्यूल् स्वामी विवेकानन्द द्वारा विहित पाठयक्रम के उन आधारभूत सिद्धान्तों को प्रतिबिम्बित करता है जो प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक मूल्यों एवं क्षमताओं के विकास में सहायक हो तथा साथ ही, जो समाज के सम्यक् सामाजिक-राजनीतिक एवं सांस्कृतिक लोकाचार हेतु अपेक्षित है। स्वामीजी की दृष्टि में शिक्षा व्यक्ति में निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति है। यहाँ वास्तविक मुद्दा यह है कि इस महत्त्वपूर्ण ध्येय तक कैसे पहुँचा जाए? फलतः इस मॉड्यूल् के तहत वैश्विक युग के उभरते नवीन सन्दर्भों में संगत मुद्दों एवं चिन्ताओं को प्रत्यक्षतः चिन्हित किया गया है।

चतुर्थ मॉड्यूल् की आधारभूमि इस मान्यता पर प्रतिष्ठित है कि 21वीं सदी के नवीन ज्ञान समाज के लिए एक अत्यधिक स्वतंत्र एवं जिम्मेवार व्यवहार की अपेक्षा है तथा लोगों को अपनी प्रगति एवं कतिपय परिस्थितियों में अपने अस्तित्व को बचाये रखने के लिये नयी एंव अप्रत्याशित परिस्थितियों में उत्तरदायी निर्णय लेने की भी आवश्यकता है। अस्तु, उक्त मॉड्यूल् में साधन और साध्य को प्रभावी ढंग से संयोजित करने की दृष्टि से उन बिन्दुओं को गहन रूप से आच्छौदित किया गया है जो अध्यापक और छात्राध्यापकों के बीच सही रिश्तों की जमींन तैयार करते हैं।

पंचम मॉड्यूल् स्वामीजी के उन विचारों के निहितार्थ तलाशता है जो सभी श्रेणी के व्यक्तियों के नैतिक आचार एवं व्यवहार संयमन हेतु आवश्यक हैं। इसमें विशेष रूप से अध्यापक शिक्षा के लिए आज के संदर्भ में अपेक्षित मूल्यों एवं आचरण नीतियों का प्रतिपादन किया गया है, जिसके आधार पर ज्ञान तथा शिक्षणशास्त्र के संबंध में सीमित उपागम के सापेक्ष एक व्यापक दृष्टि विकसित करने तथा वर्तमान सामाजिक तथा सांस्कृतिक विवशताओं से अनुरूपता रखने की अपेक्षा रखते है।

षष्ठ मॉड्यूल् स्वामी विवेकानन्द के 'दायरे से मुक्त सोच में' योगदान से संबंधित है। स्वामी जी के चिन्तन से निगामित शिक्षा के अर्थ को अत्यन्त प्रभावपूर्ण ढंग से व्यक्त करना इस मॉड्यूल् का मुख्य आग्रह है। उनके चिन्तन परिप्रेक्ष्य में विशदता को दृष्टिगत रखते हुए प्रमुखतः जिन बिन्दुओं को रेखांकित किया गया है, वे हैं– गुणवत्ता एंव श्रेष्ठता, राष्ट्रीय एकता एवं अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध, शैक्षिक

अवसर की समानता, जनशिक्षा, पर्यावरणीय शिक्षा एवं प्रबन्ध, महिला सशक्तिकरण, अध्यापक प्रशिक्षकों के लिये अध्यापक-नेतृत्व प्रतिमान तथा स्वास्थ्य, स्वच्छता-विज्ञान एवं योग के माध्यम से सुस्थित जीवन शैली की ओर अग्रसर होना।

इन सभी प्रकरणों तथा इनके अतिरिक्त अन्य पर भी स्वामी जी युवा पीढ़ी तथा अन्य श्रोताओं को जो उन तक पहुँचने के लिए आतुर होते थे, अत्यन्त स्पष्ट एंव प्रभावी ढंग से उद्‌बोधन किया करते थे।

इस प्रकल्प को फलीभूत बनाने में हम विवेकानन्द केन्द्र कन्याकुमारी तथा उसके प्रबन्धतंत्र के प्रति अपना आभार एवं साधुवाद अंकित करना चाहेंगे, जिन्होंने उदारतापूर्वक शैक्षिक सहयोग एवं अपेक्षित साधकत्व उपलब्ध कराया। हमने अमूल्य दस्तावेजों एवं स्वामी जी के शिक्षा से संबंधित अवतरणों को अत्यन्त सावधानीपूर्वक परीक्षणोपरान्त चयन किया है, जिसमें कई अन्य अभिकरणों एवं व्यक्तियों की भूमिका भी महत्वपूर्ण रही है, हम उनके प्रति कृतज्ञ हैं। आशा है कि क्षेत्रीय स्तर पर विचार विमर्शों के माध्यम से मॉड्यूलों में निहित सामग्री को और अधिक परिनिष्ठित बनाने का आग्रह विद्यमान रहेगा।

प्रस्तुत मॉड्यूलों को सर्व प्रथम अंग्रेजी भाषा में निर्मित किया गया। तदुपरान्त इसे राष्ट्र भाषा हिन्दी के माध्यम से रूपान्तरित भी किया गया है। इस प्रक्रिया में हम वाराणसी स्थित शिक्षा संस्थाओं प्रमुखतः विश्वविद्यालयों के आचार्यो एवं शिक्षकों का सहयोग प्राप्त हुआ है जिसके लिए विशेष रूप से प्रो. अवधेश प्रधान, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, प्रो. सी.वी. द्विवेदी, पूर्व आचार्य एवं विभागाध्यक्ष मनोविज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, प्रो. वाचस्पति द्विवेदी, पूर्व विभागाध्यक्ष एवं शिक्षा संकाय प्रमुख, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय तथा प्रो. कल्पलता पाण्डेय, संकायाध्यक्ष, शिक्षा, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ आदि के प्रति समिति विशेष रूप से आभारी है।

अन्त में, समिति राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद के अध्यक्ष, प्रो. संतोष पांडा तथा उनके सहयोगियों के प्रति भी आभार ज्ञापित करती है, जिन्होंने अपेक्षित रूचि तथा तत्परता के साथ इस पूरे प्रकल्प को वास्तविक आधार एवं समर्थन प्रदान किया।

स्थानः नई दिल्ली
दिनांकः 26 फरवरी, 2015

के.पी. पाण्डेय
अध्यक्ष
राष्ट्रीय व्याख्यान श्रृंखला समिति

जीवन रचना
चरित्र गठन

मानव सृजन
विचारों का आत्मसात्करण

– अपेक्षित

"शिक्षा का अर्थ तुम्हारे मस्तिष्क में रखी हुई ऐसी जानकारियों का ढेर नहीं है, जो आजीवन अनपची रहकर गड़बड़ी पैदा करती रहे। जिस शिक्षा से हम अपना जीवन-निर्माण कर सकें, मनुष्य बन सकें, चरित्र गठन कर सकें और विचारों का सामंजस्य कर सकें, वही वास्तव में शिक्षा कहलाये जाने योग्य है। यदि तुम केवल पाँच ही विचारों को पचाकर तदनुसार अपना जीवन और चरित्र बना सको, तो तुम्हारी शिक्षा उस आदमी की अपेक्षा बहुत अधिक है, जिसने पूरे ग्रन्थालय को ही कण्ठस्थ कर लिया है। यदि तरह-तरह की सूचनाएँ एकत्र करना ही शिक्षा है, तब ये ग्रन्थालय ही विश्व के श्रेष्ठ ज्ञानी और विश्वकोश ही ऋषि होते।"

मॉड्यूल्-1

भारत में अध्यापक शिक्षा का परिप्रेक्ष्य : स्वामी विवकानन्द के दर्शन की प्रासंगिकता

भारत में अध्यापक शिक्षा के परिप्रेक्ष्य को स्वामी विवेकानन्द के प्रेरणात्मक उद्गारों से व्युत्पन्न एवं संचारित किया जाना चाहिए। "हम ऐसी शिक्षा चाहते हैं, जो चरित्र का निर्माण करे, मनःशक्ति में वृद्धि करे, बुद्धि में विस्तार लाए एवं व्यक्ति को स्वावलम्बी बनाए।" आज हमारे देश में अध्यापक शिक्षा के पुनर्गठन हेतु इन शब्दों में एक विशिष्ट अधिदेश निहित है। यह मॉड्यूल् अध्यापक शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में कतिपय अवश्यकरणीय की ओर संकेत करता है जिनके प्रति राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् की योजनाएँ एवं प्रस्ताव गुणवत्ता की चिन्ता मुखर करने की ओर संकल्पित हैं तथा जिसके लिए विभिन्न प्राविधान एवं नीतियाँ प्रतिपादित हैं।

संपादक

भारत में अध्यापक शिक्षा का परिप्रेक्ष्य : स्वामी विवेकानन्द के दर्शन की प्रासंगिकता

भारत में अध्यापक शिक्षा प्रणाली की स्थापना का मूल 19वीं शताब्दी के इंग्लैण्ड व यूरोप के जनसाधारण हेतु आयोजित आधुनिक शिक्षा प्रणाली के इतिहास में परिलक्षित होता है जिनमें तीन 'आर' (पढ़ना, लिखना एवं अंकगणित) अभीष्ट था। इन विद्यालयों की प्रकृति एवं आवश्यकताओं के अनुरूप, प्रारम्भिक मॉनिटोरियल एवं विद्यार्थी-शिक्षक प्रणाली के मॉडल को शिक्षकों के बड़े समूह हेतु उपयुक्त समझा गया जो कि बढ़ते हुए विद्यार्थी संख्या के सापेक्ष आवश्यक था। यहीं से कालान्तर में नॉर्मल स्कूल (तत्समय यूरोप में प्रचलित) की स्थापना हुई जिसने अध्यापक-प्रशिक्षण को संस्थागत स्वरूप प्रदान किया। भारत में अध्यापक-शिक्षा का विकास ब्रिटेन में प्रचलित मॉनिटोरियल एवं विद्यार्थी-शिक्षक प्रणाली के समतुल्य हुआ जिसकी शुरुआत देश के विभिन्न हिस्सों में की गई। सन् 1882 तक देश में कुल 106 नार्मल स्कूलों की स्थापना की गई थी। 19वीं शताब्दी के अंत तक प्रशिक्षण महाविद्यालय जो मुख्यतः माध्यमिक शिक्षा हेतु स्थापित थे और भी अधिक प्रचलित हुए। कालान्तर में ये विश्वविद्यालयों से औपचारिक अनुज्ञप्ति प्राप्ति हेतु सम्बद्ध हुए। पारम्परिक रूप में माध्यमिक शिक्षक शिक्षण संस्थान विश्वविद्यालय के शिक्षा विभागों के रूप में विकसित हुए, किन्तु प्रारम्भिक एवं पूर्व बाल्यावस्था शिक्षा की उपेक्षा हुई। इसे ज्ञान के विशिष्ट क्षेत्र जिसमें अपना सरोकार, अपनी अवधारणाएँ तथा प्रणाली परिप्रेक्ष्य हो, इस रूप में मान्यता नहीं प्राप्त हो सकी। अब इसके परिशोधन का समय है। विभिन्न शिक्षा आयोगों एवं समितियों के प्रतिवेदनों में अध्यापक शिक्षा में सुधार एक प्रमुख मुद्दा रहा है। इस सन्दर्भ में 21वीं सदी के प्रारम्भ से ही एक महत्वपूर्ण परिवर्तन परिलक्षित हो रहा है।

1. अध्यापक और अध्यापक शिक्षा का परिप्रेक्ष्य

1.1 आगे आने वाले समय में जब हम शिक्षक की भूमिका तथा अध्यापक-शिक्षा के स्वरूप के बारे में अपनी कल्पना को आकार देते हैं, तो हमें बाध्य होकर ऐसे विचारों को अपने चिन्तन के दायरे में लाना पड़ता है, जिन्होंने वैश्विक सन्दर्भ में अध्यापक-शिक्षा के बारे में अद्यतन सोच को प्रभावित किया है। वर्तमान युग की अपेक्षानुसार जबकि अध्यापक शिक्षा के नए दर्शन की तलाश जारी है, हम कुछ ऐसे सामान्य सिद्धान्तों की ओर मतैक्य प्रदर्शित कर रहे हैं जो अध्यापन-व्यवसाय को एक नूतन परिप्रेक्ष्य की ओर अग्रसर कर दे। प्रथम, अध्यापक शिक्षा के बारे में हमारी सोच समन्वयात्मक एवं संकलनात्मक है। यह सोच दर्शन एवं मनोविज्ञान के सम्प्रदायों की छाया से मुक्त है। अध्यापक शिक्षा को एक रूढ़िगत प्रयास न बनाकर, इसे खुली एवं लचीली व्यवस्था का रूप देना होगा। इसमें परिवर्तनशील सन्दर्भों पर जोर देना चाहिए तथा उनसे प्रभावी रूप में शिक्षकों को जोड़ना मुख्य उद्देश्य होना चाहिए जिससे वे सशक्तीकरण का अनुभव कर सकें। द्वितीय, वर्तमान अध्यापक शिक्षा को एक ऐसे वैश्विक पृष्ठभूमि के तहत रहना है जिसे 'अधिगम-समाज', 'सीखने के लिए सीखना' तथा 'समावेशी शिक्षा' की अवधारणाओं ने निर्मित किया है। इस क्रम में मुख्य चिन्ता इस बात की है कि अध्यापक शिक्षा को उदार, मानवतावादी तथा समावेशी शिक्षा की आवश्यकताओं के प्रति संवेदनशील बनाना हैं। इस दृष्टि से शिक्षण में प्रबोधात्मक सम्प्रेषण से हटकर अप्रबोधात्मक एवं संवादपरक समन्वेषणों पर बल देना होगा। तृतीय, आधुनिक शिक्षा विज्ञान (शास्त्र) के उद्भव में प्रमुख प्रेरणा स्रोत समाजशास्त्र एवं नृःविज्ञान द्वारा शिक्षा के बारे में विकसित सूझबूझ रही है। इसके तहत शिक्षण एवं अधिगम की प्रक्रिया के कलेवर में जीवन्तता लाने की दृष्टि से सामाजिक सन्दर्भों के महत्व एवं सम्भावनाओं को विशेष रूप से प्रमुखता दी जा रही है। बहु-सांस्कृतिक शिक्षा तथा विविधता-सम्पोषण के लिए शिक्षण वर्तमान युग की माँग है। चतुर्थ, अधिगम एवं पाठ्यक्रम के स्थलों में विविधता के अस्तित्व को (यथा कृषि क्षेत्र, सहज रूप में उपलब्ध कार्य-स्थल, घर, समुदाय एवं मीडिया) जो कक्षा-गृहों के अतिरिक्त हैं, दृश्य रूप में सुनिश्चित करनी होगी। इस प्रकार अधिगम शैलियों की विविधता जिसे अधिगमकर्त्ता प्रायः प्रदर्शित करते हैं तथा अधिगम के वर्तमान सन्दर्भों जिनमें शिक्षकों को कार्य करना है– अधिसंख्य विद्यार्थियों वाली कक्षाएँ, भाषा की समस्या, संजातीय बालक, सामाजिक विविधता एवं वैषम्य तथा अनेक प्रकार की अयोग्यताओं के शिकार बच्चे– मुख्य रूप से ध्यान देने योग्य हैं। अन्ततः अध्यापक शिक्षा में विकसित होने वाले ज्ञान के आधार को उसकी प्रकृति के अनुसार अस्थायी एवं अस्थिर रूप में मानने पर जोर देना होगा। इसका तात्पर्य यह है कि अध्यापक शिक्षा का केन्द्रवर्ती उद्देश्य है–

विमर्शी चिन्तन पर आधारित व्यवहार एवं तत्सम्बन्धी अभ्यास को अंगीकृत बनाना।

अस्तु, शिक्षक को अपने शिक्षण–अधिगम सन्दर्भों की अवश्य करणीयताओं को भली प्रकार पूरा करने के लिए अपने शैक्षणिक विधि विषयक जानकारी में अनवरत हेर–फेर लाने के लिए तत्पर रहना चाहिए। इस दृष्टि से अध्यापक शिक्षा में शिक्षकों की क्षमता संवर्धन की नितान्त आवश्यकता है जिससे वे ज्ञान सृजन कर सकें, विभिन्न सन्दर्भों की अपेक्षाओं से समुचित ढंग से निपट सकें तथा अस्थिरता एवं अस्पष्टंता के क्षणों में शिक्षण–अधिगम की विशेषताओं को जानने समझने एवं भली प्रकार परखने की योग्यता विकसित कर सकें।

1.2 पूर्व वर्णित अध्यापक शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में शिक्षकों की भूमिका एवं अध्यापक शिक्षा के दर्शन, उद्देश्य एवं अभ्यास हेतु निष्कर्ष निम्नवत् हैं:

- बालकों की सम्यक् देख–रेख के लिए, उनके साथ रहने का आनन्द लेने, उनके द्वारा स्वयं ज्ञान प्राप्त करने, एक बेहतर दुनिया बनाने में समाज एवं कार्य के प्रति जिम्मेदारी का भाव रखने, उनकी समस्या के प्रति संवेदनशीलता अभिवृद्ध करने, न्याय के लिए प्रतिबद्धता और सामाजिक पुनःनिर्माण की दृढ़ इच्छाशक्ति से भरपूर बने रहने की दृष्टि से शिक्षकों में तत्परता विकसित करने की नितान्त आवश्यकता है।

- अध्यापक द्वारा विद्यार्थियों को अधिगम प्रक्रिया में एक सक्रिय सहभागी के रूप में देखना, न कि मात्र ज्ञानार्जक के रूप में, ज्ञान के सृजन की क्षमता की वृद्धि हेतु प्रोत्साहित करना एवं यह सुनिश्चित करना की अधिगम रटने वाली विधियों से परे हो। अधिगम व्यक्तिगत अनुभवों की खोज पर आधारित हो और विमर्शी ज्ञान सृजन का अवलम्ब बने तथा सतत् प्रक्रिया के रूप में हो।

- अध्यापक शिक्षा में सिद्धान्तों को व्यावहारिक अनुभवों से जोड़कर पढ़ाना चाहिए जिससे प्रशिक्षार्थी का ज्ञान मात्र वाह्य रूप से प्राप्त न हो अपितु सक्रिय रूप से गतिशील अधिगम प्रक्रिया के माध्यम से सृजित हो। इस प्रकार अध्यापक शिक्षा में शैक्षिक ज्ञान और व्यावसायिक अधिगम दोनों में इस प्रकार समन्वय हो कि एक अर्थपूर्ण समग्रता विकसित हो सके।

- अध्यापकों को विद्यार्थी–केन्द्रित, गतिविधि-आधारित, सहभागिता के माध्यम से निःसृत अधिगम अनुभवों, के सृजन हेतु प्रशिक्षित करना चाहिए।

- अध्यापक शिक्षा में शिक्षकों को पाठ्यक्रमों, पाठ्यचर्याओं व पाठ्य पुस्तकों के समीक्षात्मक परीक्षण का अवसर प्राप्त होना चाहिए न कि बिना पूछताछ के उसे यथावत् रूप में स्वीकार कर लेने की प्रवृत्ति पर।

- प्रशिक्षण कार्य को शिक्षक–निर्देशित क्रियाओं द्वारा बोझिल न बनाकर छात्राध्यापकों को गहन विमर्शी–चिन्तन तथा स्वतन्त्र अध्ययन के अवसर उपलब्ध कराना चाहिए।

- अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम के अन्तर्गत विद्यार्थियों को वास्तविक सन्दर्भ में अध्ययन करने का अवसर मिलना चाहिए न कि मात्र सिद्धान्तों के माध्यम से। ऐसा करने से अध्यापक विद्यार्थी की मनोसामाजिक विशेषताओं और उसकी आवश्यकताओं को समझेंगे। साथ ही, उनकी विशिष्ट योग्यताओं, संज्ञान अर्जित करने की विशेष विधियों तथा सामुदायिक समाजीकरण से जुड़ी अभिप्रेरणा एवं अधिगम की प्रक्रिया को भी समझ सकेंगे।

- यह कार्यक्रम अध्यापकों या भावी अध्यापकों में सामाजिक संवेदनशीलता, जागरूकता एवं सूक्ष्म मानवीय संवेदनाओं के विकास में सहायक होना चाहिए।

- अध्यापक शिक्षा-पाठ्यक्रम (विद्यालयीय और अध्यापक शिक्षा दोनों) के आधार को व्यापक स्वरूप दिया जाना चाहिए जिससे विभिन्न पारम्परिक ज्ञान विकसित होने के साथ अध्यापकों के विद्यालयीय ज्ञान को सामुदायिक ज्ञान और विद्यालय के बाहर के जीवन से जोड़ा जा सके।

- अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों में अध्यापकों को अपनी कक्षा के भीतर एवं बाहर अपनी शिक्षण विधि में 'करके सीखने' से जुड़े अनुभवों की सम्भावनाओं को विकसित करने की ओर प्रोत्साहित करना चाहिए। इसे शिक्षा प्रक्रिया का अविच्छिन्न अंग बनाना होगा।

- अध्यापकों द्वारा नागरिकता शिक्षा की अवधारणा को व्यापक रूप में व्याख्यायित करना होगा जिसमें मानवाधिकार एवं शिक्षा विज्ञान के उपागमों को शामिल करते हुए पर्यावरण और उसके संवर्द्धन, स्वयं एवं प्रकृति तथा सामाजिक परिवेश के साथ सामंजस्य, शान्ति को बढ़ावा देना, प्रजातांत्रिक जीवन–शैली, संवैधानिक मूल्यों जिनमें समानता, न्याय, स्वतंत्रता, भ्रातृत्व और पन्थनिरपेक्षता के मूल्यों का समावेश सुनिश्चित हो।

- अध्यापक शिक्षा के कथित बहु-पक्षीय उद्देश्यों के अनुरूप मूल्यांकन व्यवस्था व्यापक होनी चाहिए तथा इसमें अभिवृत्तियों, मूल्यों, प्रवृत्तियों, आदतों, अभिरूचियों के साथ सम्प्रत्ययात्मक और शैक्षणिक पहलुओं के मापन पर भी यथोचित स्थान देते हुए उपयुक्त गुणात्मक और परिमाणात्मक मापदण्डों के अपनाए जाने पर जोर देना चाहिए।

1.3 इन परिप्रेक्ष्यों तथा अभिधारणाओं के अनुरूप यह सहज ही देखा जा सकता है कि स्वामी विवेकानन्द की शिक्षा का दर्शन और उनके विचार हमें अपने ध्येय और साधनों पर आत्म चिन्तन के लिए एक सुरक्षित और निश्चित आधार प्रदान करते हैं, जिससे वर्तमान अध्यापकों और अध्यापक-प्रशिक्षकों को उपयुक्त मानसिक ढाँचे में पुनर्निर्मित किया जा सकेगा।

2. अध्यापक शिक्षा का गुणात्मक और नियामक परिप्रेक्ष्य

2.1 राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद (एन.सी.टी.ई.) की स्थापना संसद के एक अधिनियम (1993 का अधिनियम संख्या 73) के द्वारा सारे देश में अध्यापक शिक्षा प्रणाली का योजनाबद्ध और समन्वित विकास करने तथा अध्यापक शिक्षा प्रणाली में मानकों और स्तरमानों का विनियमन और उन्हें समुचित रूप में बनाए रखने की दृष्टि से और उनसे सम्बन्धित विषयों का उपबन्ध करने के लिए की गई है।

2.2 ऐसा देखा गया है कि भारत में इस समय प्रवर्तित सेवा–पूर्व अध्यापक शिक्षा की संस्थागत संस्कृति, उच्च शिक्षा प्रणाली में उसे प्रदत्त स्थान का परिणाम है। अधिसंख्य माध्यमिक अध्यापक शिक्षा संस्थाएँ जो बी.एड. डिग्री प्रदान करती है वे विश्वविद्यालय परिसरों के बाहर हैं। प्रारम्भिक अध्यापक शिक्षा की संस्थाएँ जिनमें जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान भी है, के द्वारा प्रदान किये जाने वाले डिप्लोमा इन एजुकेशन (डी.एड.) विश्वविद्यालयों से जुड़े नहीं है। ये अध्यापक शिक्षा संस्थाएँ मात्र प्रशिक्षण देने हेतु एक सीमित दायरे में कार्य करती हैं। ऐसी स्थिति में इनमें अध्ययनरत युवा संवर्ग को परास्नातक एवं शोध अध्ययनों के माध्यम से शिक्षा के व्यापक मुद्दों से सम्बन्ध कायम करने हेतु प्रतिभाग का अवसर उपलब्ध कराना चाहिए। किन्तु इसके लिए एक ही व्यवस्थित मार्ग उपलब्ध है, और वह है अपने को शिक्षक के रूप में प्रशिक्षित करना।

3. अध्यापक शिक्षा के सशक्तिकरण हेतु राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद (एन.सी.टी.ई.) की भूमिका

3.1 सामान्यतया पूर्व के अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों (बी.एड. और डी.एड.) में विषय ज्ञान को पर्याप्त स्थान नहीं दिया गया। तद्नुसार यह पाया गया

है कि अध्यापकों की तैयारी की प्रक्रिया में विषय का स्तरीय ज्ञान शैक्षणिक अधिगम को शायद ही प्रभावित करता है। ऐसी दशा में पाठ्यक्रमों के अध्ययन द्वारा अध्यापक निर्माण की प्रक्रिया में औपचारिक कमियों को दूर करने हेतु ज्ञान–मीमांसात्मक विवेचन को शिक्षक प्रशिक्षण में शामिल करना आवश्यक है।

3.2 अध्यापक शिक्षा के मौजूदा परिदृश्य के सम्यक् विश्लेषण के लिए कई बिन्दुओं पर ध्यान अपेक्षित है। यथा-शिक्षण व्यवसाय में प्रवेश लेने वाले अभ्यर्थियों की गुणवत्ता का गहन परीक्षण; पाठ्यक्रम के विषय वस्तु की गुणवत्ता; शिक्षक तैयार करने के तरीके की गुणवत्ता विशेष रूप में इसका संरचनात्मक पक्ष, अध्यापक-शिक्षकों की गुणवत्ता; पाठ्यक्रम क्रियान्विति तथा शिक्षण शास्त्रीय पक्ष; अध्यापक मूल्यांकन की गुणवत्ता आदि। इन सभी महत्वपूर्ण अनुक्षेत्रों में विविध स्तरों के अध्यापक शिक्षकों के सम्यक् एवं समुचित रूप में सशक्तिकरण की आवश्यकता है जिसके लिए राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद की भूमिका अहम् बन जाती है।

3.3 हमारे देश में अध्यापक शिक्षा को एक अत्यधिक महत्वपूर्ण विषय के रूप में पहचान प्राप्त है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि अध्यापक शिक्षा और विद्यालय शिक्षा एक दूसरे पर आश्रित है। यह कहा जा सकता है कि अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम के प्रवेशार्थियों की गुणवत्ता पर आधारित है। माननीय उच्चतम न्यायालय (वर्ष 2012) ने एक उच्च स्तरीय आयोग (जस्टिस वर्मा आयोग) का गठन किया जिसने अपने प्रतिवेदन– ''विजन ऑफ टीचर इन इंडियाः क्वालिटी एण्ड रेग्यूलेटरी पर्सपेक्टिव'' के माध्यम से अपनी संस्तुतियाँ दी। इसमें अध्यापक शिक्षा के विभिन्न पहलुओं पर गहनता से विचार कर, प्रवेशार्थियों की गुणवत्ता, अध्यापकों के पार्श्वचित्र (प्रोफील), अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम के अन्तर्गत विद्यालयी पाठ्यक्रम को गहराई में समझना आदि विषयक संस्तुतियों का समावेश है। इस आयोग ने हमारे कक्षा शिक्षण की व्यवस्थाओं में उपलब्ध कार्य पद्धति को प्रभावित करने हेतु नई शिक्षण-शास्त्रीय व्यवहारों के प्रश्न के साथ ही, इस बात का भी आकलन करने के लिए कि नवीन संकल्पना के अनुरूप अध्यापक शिक्षा की व्यवस्था सफल रही है या नहीं, पर भी गम्भीरता के साथ विचार किया है।

3.4 यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि अध्यापकों की गुणवत्ता का सीधा सम्बन्ध उनसे है जो उन्हें तैयार करते हैं। इस सन्दर्भ में अध्यापक प्रशिक्षकों की दक्षता, योग्यता और ज्ञान का स्तर अति महत्वपूर्ण है। इस आयोग द्वारा किये गये विचार–विमर्श तथा संस्तुतियों से यह स्पष्ट है कि अध्यापक शिक्षा, सेवा पूर्व अध्यापक शिक्षा की एक कमजोर कड़ी के रूप में चिन्हित रही है। इसीलिए अध्यापक प्रशिक्षण की छवि के मुद्दे पर

इसमें उन अग्रणी चिन्तकों के विचारों एवं सोच के प्रति जागरूक करने की आवश्यकता है जिन्होंने वैश्विक सन्दर्भ में अन्य देशों से भिन्न एक सांस्कृतिक लोकाचार के आविर्भाव में अवदान किया है।

3.5 इस दृष्टि से शिक्षक का व्यावसायिक विकास एवं उसके ज्ञान का नवीनीकरण एक अवश्यकरणीय की सूची में शामिल है। इससे वह शिक्षा के कथ्य एवं उसकी प्रक्रिया की सूक्ष्मताओं से सक्रिय रूप में जुड़ जाता है। साथ ही वह ऐसे विचारों एवं व्यवहारों के चिन्तक–अभ्यासकर्त्ता की भूमिका में अपने को ला देता है जो कक्षा गृह की कार्य प्रणाली को अवश्यमेव प्रभावित करती है।

3.6 ध्यातव्य है कि प्रारम्भिक एवं माध्यमिक दोनों ही स्तरों पर अध्यापक की तैयारी प्रविष्टि स्तर पर ही कई प्रकार की समस्याओं से जूझ रही है। उनमें से कुछ समस्यायें तो सामान्य हैं, किन्तु कुछ शिक्षा के विशेष स्तर पर ही लागू होती है। उदाहरणार्थ वर्तमान में चल रहे अध्यापक शिक्षा के कार्यक्रमों में शैक्षिक जानकारी को टुकड़ों में बाँटकर एक रस्म अदायगी के रूप में दी जा रही है जो न तो शिक्षा के व्यापक उद्देश्यों के अनुरूप है और न अनुशासनात्मक संज्ञान अथवा हमारे कक्षागत अभ्यासों के यथार्थ से संगति रखने की दृष्टि से ही। अध्यापक शिक्षा के वर्तमान पाठ्यक्रमों में कई प्रकार के ज्ञान-अनुक्षेत्र यथा-शिक्षा मनोविज्ञान, शिक्षा का समाजशास्त्र तथा शिक्षा दर्शन एक साथ रख दिए जाते हैं। ये विषय अनुभवों को खण्डित रूप में ही प्रस्तुत कर पाते हैं तथा ये न तो जीवन की परिस्थितियों एवं वास्तविकताओं से समन्वित होती हैं न ही उनसे जुड़ पाती है। दृष्टान्त के तौर पर छात्राध्यापक बच्चों के विकास के बारे में पढ़ते तो हैं किन्तु उनका यह ज्ञान खास विषयों के शिक्षण की विधियों से असंयोजित ही रह जाता है।

4. अध्यापक शिक्षा में प्रतिमानपरक बदलाव की आवश्यकता

4.1 विगत कतिपय दशकों विशेषतौर से राष्ट्रीय पाठ्यक्रम (एन.सी.एफ.) 2005 के बाद शैक्षिक संवादों में शिक्षक का विद्यार्थी के साथ संयोजन तथा विद्यार्थी का ज्ञान के साथ संयोजन की प्रकृति पर विशेष ध्यान देने की अपेक्षा मुखर हुई है। शिक्षण प्रक्रिया मात्र सूचनाओं एवं ज्ञान के संचरण का पर्याय नहीं है। इसके विपरीत शिक्षक का कार्य है विद्यार्थी को अपने प्रेक्षणों, अनुभवों, प्रयोगों, विश्लेषण एवं गहन–चिन्तन द्वारा ज्ञान के सृजन की प्रक्रिया एवं रचना को दृष्टिगत रखकर अधिगम को सुकर बनाना। शिक्षक के कार्य के बदलाव के पीछे यह मान्यता प्रभावी रही है कि बच्चों में ज्ञान की रचना करने, अर्थ निकालने, स्वतंत्र रूप में सोचने की सम्भावना विद्यमान होती है बशर्ते कि उन्हें एक उपयुक्त एवं चुनौतीपूर्ण शैक्षणिक परिवेश उपलब्ध कराया जाए।

4.2 इस प्ररिप्रेक्ष्य में शिक्षकों से कई अपेक्षाएँ हैं: उन्हें बच्चों की देखभाल के लिए तत्पर होना चाहिए, उनके साथ समय बिताने में सुख का अनुभव करें, उनके ज्ञान के आधार में व्यापकता एवं गहनता लाने का प्रयास करें, समाज के प्रति जिम्मेदारी को स्वीकारें, अधिगमकर्त्ताओं की समस्याओं के प्रति संवेदनशीलता विकसित करें, न्याय के प्रति दृढ़ प्रतिबद्धता रखें तथा सामाजिक पुनर्रचना के लिए खुली दृष्टि रखें। इसके साथ ही, शिक्षकों को चाहिए कि वे अधिगमकर्त्ताओं को अधिगम के लिए सक्रिय प्रतिभागी के रूप में, न कि केवल जानकारी ग्रहीता के रूप में देखें, उन्हें उनके ज्ञान रचना की क्षमता को प्रोत्साहित करें तथा यह भी सुनिश्चित करें कि सीखने की प्रक्रिया रटन्त की विधि से परे हो। इन बिन्दुओं को दृष्टिगत रखकर शिक्षकों के विशेष सशक्तिकरण एवं उनके समुचित अभिमुखीकरण की आवश्यकता है जिससे वे विद्यार्थी-केन्द्रित, क्रिया-आधारित, प्रतिभागितापूर्ण अधिगम-अनुभवों यथाः क्रीड़ा, योजनाएँ, परिचर्चा, संवाद, प्रेक्षण, भ्रमण, शैक्षणिक अधिगम का उत्पादक कार्य से एकीकरण आदि विकसित करने में अग्रसर हों।

4.3 वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अध्यापकों को नागरिकता की शिक्षा को मानवाधिकार एवं कर्त्तव्यों के सन्दर्भ में पुनरीक्षित करने की आवश्यकता है; इसके अतिरिक्त उन्हें महत्वपूर्ण शिक्षण सिद्धान्तों के उपागमों को लागू करने, पर्यावरण तथा इसकी सुरक्षा पर बल देने, स्वयं से, प्रकृति से, तथा सामाजिक परिवेश से सामंजस्यपूर्वक जीने, शान्ति को बढ़ावा देने, जीवन के प्रजातांत्रिक तरीकों को प्रोत्साहित करने, संवैधानिक मूल्यों–समता, न्याय, स्वतंत्रता एवं भ्रातृत्व, धर्मनिरपेक्षता, सम्प्रभुता, राजनीतिक प्रजातंत्र, राष्ट्रवाद, व्यक्ति का सम्मान एवं राष्ट्र की एकता व अखंडता आदि मुद्दों पर ध्यान देना आवश्यक है।

4.4 शिक्षकों पर किये गये विभिन्न अध्ययनों से यह तथ्य सामने आया है कि अध्यापकों को विद्यालयीय शिक्षा के विविध स्तरों पर जिन विषयों के शिक्षण की जिम्मेदारी दी गयी है, उनके बारे में उन्हें मौलिक ज्ञान नहीं होता है। एन.सी.पी.सी.आर. के एक अध्ययन में यह भी पाया गया है कि अध्यापक द्वारा शारीरिक दण्ड को एक सुधारात्मक उपाय के रूप में स्कूलों में प्रयोग किया जाता है। प्रायः शिक्षक बच्चों तथा उनके सीखने की प्रक्रिया– खासतौर से उपेक्षित समुदायों के बच्चों के सन्दर्भ में अपने दिन प्रतिदिन के व्यवहार में पूर्वाग्रहों एवं पक्षपातों को खुली छूट दे देते हैं। इसे दृष्टिगत रखकर संस्थागत और पाठ्यक्रम अभिकल्पना में विशिष्ट संरचनात्मक प्रबन्ध किये जाने की आवश्यकता है, जिससे शिक्षा और खासकर अध्यापक शिक्षा में बुनियादी बदलाव लाया जा सके।

5. विचारकों की श्रेणी में स्वामी विवेकानन्द की प्रथम प्रस्तुति–क्यों?

5.1 हमारे देश की बहुत सी उच्च स्तरीय संस्थाओं जिनमें नियामक संस्थाएँ भी सम्मिलित हैं, का ध्यान इधर व्यावसायिक मूल्यों एवं व्यावसायिक नैतिकता के मुद्दों को प्रोत्साहन देने की जिम्मेदारी के प्रति आकर्षित हो रहा है। अतः ये संस्थाएँ पहले से ही मानवीय मूल्यों, व्यावसायिक नैतिकता बोध एवं अन्य कई संदर्भित विषयों का प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से 'क्रेडिट' अथवा 'नान-क्रेडिट' आधारित पाठ्यक्रमों द्वारा मॉड्यूल के रूप में व्यावसायिक क्षमता के विकास हेतु पाठ्यक्रम सृजित करती रही हैं। राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद पूर्व में ही श्री अरविन्द एवं श्री माँ की श्रृँखला शिक्षक–प्रशिक्षकों हेतु प्रकाशित कर चुकी है। तभी से अग्रणी चिन्तकों के विचारों पर आधारित विशेष सामग्री निर्मित की जा रही है। अस्तु, वर्तमान श्रृँखला में सर्वप्रथम स्वामी विवेकानन्द को शामिल किया गया है। यह आशा की जाती है कि ऐसी श्रृँखलाएँ नव–व्यावसायिकों में मानवीय मूल्यों, व्यावसायिक नैतिकता आदि जो हमारी पारम्परिक एवं सांस्कृतिक विरासत है, को धारण एवं आत्मसात करने हेतु प्रेरित करेंगी।

5.2 ए.डी. पुसलकर ने जोरदार शब्दों में स्वामी विवेकानन्द को भारत में राष्ट्रीय आजादी हेतु अग्रधावक के रूप में माना है, उनकी दृष्टि में उनके गूढ़ एवं गरिमापूर्ण व्यक्तित्व में मानवता प्रेमी, विश्व धर्मगुरू, एक महान् देशभक्त एवं भारतीय जनमानस के मार्गदर्शक की छवि झलकती है। वास्तव में उन्हें आधुनिक भारत के राष्ट्रभक्त संत का दर्जा प्राप्त है, साथ ही मातृभूमि के सुसुप्त जागरूकता के प्रेरक के रूप में उन्होंने देश में नवोन्मेष एवं स्फूर्ति का संचार किया। उन्होंने राष्ट्रभक्त एवं संत का एक विलक्षण स्वरूप प्रस्तुत किया एवं देशभक्ति को उच्चतम देवत्व प्रदान कर जनसेवा को अपनी अर्चना का आधार बनाया।

5.3 ए.एल वैशम भी उसी तर्ज पर कहते हैं कि नरेन्द्र नाथ दत्त (कालान्तर में स्वामी विवेकानन्द) के जन्म के एक शताब्दी बाद भी विश्व इतिहास के पैमानों में उनके महत्व को मूल्याँकित करना काफ़ी कठिन है। उनके इस महत्व का आकलन भारतीय या पाश्चात्य इतिहासकारों की सामर्थ्य से परे था। समय बीतने के साथ एवं कई आश्चर्यजनक एवं अनपेक्षित घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में ऐसा प्रतीत होता है कि आने वाली शताब्दियों में उन्हें आधुनिक भारत के प्रमुख निर्माता के रूप में याद किया जाएगा।

चिन्तन हेतु

1. 'अधिगम समाज', 'अधिगम के लिए सीखना' तथा 'समावेशी शिक्षा' की अवधारणाओं के आलोक में प्रचलित बी. एड. तथा एम. एड. पाठ्यक्रमों में किस प्रकार के परिवर्तन अपेक्षित हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2. अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों में गुणवत्ता सुनिश्चित करने हेतु राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् के नियामक परिप्रेक्ष्यों को आगे किस प्रकार सुधारा जा सकता है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3. अध्यापक प्रशिक्षकों के सशक्तिकरण हेतु तीन विशिष्ट उपायों का उल्लेख करें?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

पठन एवं मनन हेतु
(स्वामी विवेकानन्द द्वारा उद्धृत शिक्षाप्रद कथा)

कुएँ का मेढक

एक कुएँ में काफी समय से एक मेढक रहता चला आया था। उसका जन्म, पालन पोषण सभी उसी कुएँ में ही हुआ था। फिर भी वह मेढक छोटा ही था।

एक दिन एक दूसरा मेढक जो समुद्र में रहता था उस कुएँ में आ गिरा।

उसे देख कुएँ वाले मेढक ने पूछा, 'तुम कहाँ से आये हो?' जिसके उत्तर में मेढक बोला, "मेरा निवास स्थान समुद्र है।"

"समुद्र! भला कितना बड़ा है? क्या वह मेरे कुएँ के बराबर है?"

"मेरे मित्र" समुद्री मेढक बोला, "तुम समुद्र से अपने कुएँ की तुलना कैसे कर सकते हो?"

इस पर कुएँ वाला मेढक एक छलांग लगाता हुआ बोला, "क्या तुम्हारा समुद्र इतना बड़ा है?"

अब तो समुद्र वाले मेढक ने कहा, "तुम समुद्र से कुएँ की तुलना कर कैसी मूर्खता का परिचय दे रहे हो।"

यह सुन कुएँ वाला मेढक बोला, "मेरे कुएँ से कुछ भी बड़ा नहीं हो सकता।" यह कह उसने समुद्री मेढक को झूठा करार देते हुए कुएँ से बाहर खदेड़ दिया।

यही कठिनाई सदैव रही है।

मैं हिन्दू हूँ। मैं अपने क्षुद्र कुएँ में बैठा यही समझता हूँ कि मेरा कुआँ ही सम्पूर्ण संसार है। ईसाई भी अपने क्षुद्र कुएँ में बैठे हुए यही समझता है कि सारा संसार उसी के कुएँ में है और मुसलमान भी अपने क्षुद्र कुएँ में बैठा हुआ उसी को सारा ब्रह्माण्ड मानता है। मैं आप अमेरिका वालों को धन्य कहता हूँ, क्योंकि आप हम लोगों के इन छोटे-छोटे संसारों की क्षुद्र सीमाओं को तोड़ने का महान् प्रयत्न कर रहे हैं और आशा करता हूँ कि भविष्य में परमात्मा आपके इस उद्योग में सहायता देकर मनोरथ पूर्ण करेंगे।

अभ्यास हेतु

1. अपने बी.एड./एम.एड. पाठ्यक्रम के 3-4 सदस्यों की दो दल गठित कर भारतीय शिक्षा शास्त्रियों के अवदान, उनके शिक्षा के लक्ष्य एवं प्रयोजन तथा अध्यापकों एवं छात्राध्यापकों की भूमिका सम्बन्धी दृष्टिकोण पर 15-20 मिनट की परिचर्चा करें।

2. राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् के पाठ्यक्रम परिप्रेक्ष्य 2009 से तीन वक्तव्यों का चयन कर यह बतायें कि बी. एड. पाठ्यक्रम को विविध शैक्षिक प्रवीणताओं की प्रोन्नति में सहायक बनाने की दृष्टि से, पुनः अभिविन्यासित करने हेतु उनका औचित्य क्या हैं?

अध्ययन एवं परामर्श हेतु

1. स्वामी विवेकानन्द : 'वर्तमान भारत' श्री रामकृष्ण–शिवानन्द–स्मृति ग्रन्थमाला (पुष्प 6) नागपुर, 2013.
2. स्वामी विवेकानन्द का शंखनाद : विवेकानन्द केन्द्र, हिन्दी प्रकाशन विभाग, जोधपुर, 2012.
3. स्वामी विवेकानन्द : 'पत्रावली' श्री रामकृष्ण–शिवानन्द–स्मृति ग्रन्थमाला (पुष्प 34) रामकृष्ण मठ, नागपुर, 2014.
4. स्वामी विवेकानन्द सार्धशती समारोह शृंखला : विश्वजीत पुस्तक माला (12) स्वामी विवेकानन्द सार्धशती समारोह समिति, नई दिल्ली, 2013.
5. स्वामी विवेकानन्द : 'हमारा प्रस्तुत कार्य' विवेकानन्द केन्द्र कन्या कुमारी, विवेकानन्द केन्द्र, हिन्दी प्रकाशन विभाग, जोधपुर, 2012.
6. स्वामी विवेकानन्द : (संक्षिप्त जीवनी) अद्वैत आश्रम, कोलकाता, 2013.
7. *Vision of Teacher Education in India: Quality and Regulatory Perspective*, JVC Volume 1, August 2013, MHR, Govt. of India.
8. *NCF 2005*, NCERT, New Delhi.
9. *NCFTE 2009*, NCTE, New Delhi.
10. *Teaching of Swami Vivekananda*, Advaita Ashram, Culcatta, 1997.
11. *Swami Vivekananda: Work and It's Secret*, Advaita Ashram, Culcatta, 2005.

सकारात्मक विचारों की शक्ति

"हमें सकारात्मक विचार देने चाहिए। नकारात्मक विचार मनुष्य को दुर्बल बनाते हैं। क्या आपने यह नहीं देखा है कि जहाँ माता-पिता अपने बच्चों को पढ़ने-लिखने तथा यह कहकर कि वे कुछ नहीं सीख सकेंगे, यहाँ तक कि उन्हें मूर्ख की संज्ञा भी दे देते हैं, वे बच्चे अधिकांश मामलों में अपने को वैसा ही बना लेते हैं। यदि आप उन्हें भले शब्दों से सम्बोधित करते हैं तथा प्रोत्साहन देते हैं, तो वे कालक्रमानुसार अवश्य सुधर जाते हैं। यदि आप उनमें सकारात्मक विचार भरते हैं तो वे स्वावलम्बी बनकर आगे प्रगति करते हैं। भाषा हो या साहित्य, कविता हो या कला, इन सभी में हमें अन्य की त्रुटियाँ, जो वे अपने विचारों एवं कार्यों द्वारा प्रकट करते हैं, की ओर संकेत नहीं करना चाहिए। इसके विपरीत, उन्हें यह बताना चाहिए कि, वे इन चीजों तथा कार्यों को और बेहतर ढंग से कर सकते हैं।"

मॉड्यूल्-2

स्वामी विवेकानन्द की शैक्षिक अवधारणा : अध्यापक प्रशिक्षकों के लिए संदेश

प्रस्तुत मॉड्यूल् में स्वामी विवेकानन्द के दर्शन तथा शैक्षिक अवधारणा पर विस्तारपूर्वक चर्चा प्रस्तुत है। उनके अनुसार शिक्षा आवश्यक रूप से मानव-निर्माण की प्रक्रिया है। इसे यहाँ कई महत्वपूर्ण संदर्भों के माध्यम से रेखांकित किया गया है जिसमें मुख्य हैं : कर्म तथा चरित्र, आदर्श नर एवं नारी, नेतृत्व के गुण, कर्तव्य के प्रति समर्पण, कर्तव्यनिष्ठा, एक स्वामी की भाँति कर्म करो, स्वदेश प्रेम तथा स्वातंत्र्य-बोध, व्यक्तित्व विकास के लिए शिक्षा, चरित्र निर्माणकारी शिक्षा, शांति एवं सौहार्द के लिए शिक्षा तथा समानता एवं उत्कृष्टता (श्रेष्ठता) के लिए शिक्षा। आज के वैश्विक युग में जिन व्यापक चिंताओं की ओर हमारा ध्यान जा रहा है, उनके संदर्भ में इन सारगर्भित मुददों के प्रति भारतीय समाज को समुचित रूप में तत्परता विकसित करनी है। इन विमर्शी आश्रयों से निःसृत शैक्षिक एवं सांस्कृतिक लोकाचार की स्थिति को अच्छी तरह समझने एवं आत्मसात् करने हेतु हमारे अध्यापक-प्रशिक्षकों के लिए एक सुनिश्चित अवलम्ब परमावश्यक हैं। इस उददेश्य को दृष्टिगत रखकर प्रस्तुत मॉड्यूल् करणीय बिन्दुओं के रूप में कतिपय सूत्र उपलब्ध कराता है, जिनसे इसके पाठक भी लाभान्वित हो सकते हैं।

संपादक

स्वामी विवेकानन्द की शैक्षिक अवधारणा: अध्यापक प्रशिक्षकों को संदेश

1. मानव निर्माणकारी शिक्षा

1.1 स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, "सूचनाओं की मात्रा, जो मस्तिष्क में डाल दी जाती है और तुम्हारें जीवन पर्यन्त बिना पचे वहाँ उथल पुथल मचाती है, वह शिक्षा नहीं है। हमारे पास जीवन निर्माणकारी, मानव निर्माणकारी, चरित्र निर्माणकारी, समावेशी विचारों की आवश्यकता है। स्त्री-पुरूष के अन्दर देवत्व को अनावृत्त करना ही शिक्षा है और पागल के साथ व्यवहार में/उपचार में, अपराधियों को दण्डित करने में और मानव जीवन के साथ जुड़ी प्रत्येक चीज में इसी देवत्व को देखा जाना चाहिए।"

1.2 एक राष्ट्र की विचार शक्ति ही है जो उसके नागरिकों के चरित्र का निर्धारण करती है। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, "विचार रह जाते है, वे दूरगामी होते है, अतः आप जो सोचते हैं उनके विषय में सजग रहें।"

1.3 स्वामी जी ने कहा कि शिक्षा को सृजनात्मकता, मौलिकता तथा श्रेष्ठता पर सही रूप से बल देना चाहिए। अच्छी शिक्षा उनके लिए मात्र वही है जो मनुष्य की अन्तर्निहित शक्तियों को प्रकट करती है। असली शिक्षा नम्रता के भाव को वर्धित करने की अपेक्षा रखती है। यही विनम्रता का भाव मनुष्य के चरित्र की बुनियाद है, एक सन्तुलित व्यक्तित्व का चिन्ह है।

1.4 किसी भी मनुष्य का चरित्र वास्तव में उसकी अन्तर्निहित प्रवृत्तियों का समुच्चय है, मानस का सार है। उसके चरित्र निर्माण में सुख और पीड़ा, कष्ट और आनन्द के तत्व समान रूप से उपस्थित हैं। महान् किरदारों के अध्ययन से यह पता चलता है कि सुख से अधिक दुःख ने उन्हें शिक्षित किया।

1.5 भारत को चाहिए–चरित्र और संकल्पशक्ति। इच्छाशक्ति सर्वशक्तिमान है। अगर कोई अपनी संकल्पशक्ति का अनवरत प्रयोग करे तो वह अवश्य ही ऊँचाइयों को प्राप्त करेगा। यह संकल्प शक्ति या चरित्र ही है जो कठिनाइयों के घेरों को भेद सकता है। "एक व्यक्ति को और उसकी सबसे आम गतिविधियों को देखो, वही तुम्हें महान् व्यक्ति के चरित्र के विषय में बतायेगी।"

❖ कर्म और चरित्र

1.6 मनुष्य स्वभाव में दो प्रकार की प्रवृत्तियाँ होती हैं, जिनमें एक आदर्श को जीवन के स्तर तक लाती है और दूसरी जीवन के आदर्श तक उन्नत करती है। मनुष्य का कर्म उसकी शिक्षा की गुणवत्ता निर्धारित करता है। स्वामी जी के अनुसार विश्व में मानव समाज के समस्त कार्य और गतिविधियाँ मात्र मानव की संकल्पशक्ति की अभिव्यक्ति हैं। समस्त वैज्ञानिक अविष्कार भी मानव की इच्छाशक्ति की अभिव्यक्ति है तथा यह 'इच्छाशक्ति' चरित्र से निर्मित होती है और चरित्र का निर्माण कर्म के द्वारा होता है। "मनुष्य के पास व्यवहार के लिए सबसे अधिक जो विस्मयकारी शक्ति उपलब्ध है वह है–चरित्र पर कर्म का प्रभाव।"

❖ आदर्श पुरूष/स्त्री

1.7 हर एक शिक्षित स्त्री/पुरूष का आदर्श शुद्ध निःस्वार्थ भावना होनी चाहिए। वह स्त्री/पुरूष आदर्श स्त्री/पुरूष में बदल जाता है, जब उसमें कुछ भी 'मै अथवा मेरा', कोई स्वत्व अथवा अहम् नहीं रह जाता। उस आदर्श की प्राप्ति केवल मात्र त्याग से हो सकती है। एक आम व्यक्ति उस मानसिक स्तर तक नहीं पहुँच सकता, पर वह उस आदर्श की पूजा कर वहाँ तक धीरे-धीरे पहुँच सकता है। पाशविक मानव को उसके इन्द्रियनिष्ठ जीवन से बाहरी सुख-सुविधा देकर नहीं, अपितु अति उच्च स्तर की दृष्टि तथा कार्य देकर निकालना ही वास्तविक सभ्यता की शक्ति है।

1.8 त्याग के बिना कोई भी महान कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता। किसी स्वार्थ प्रेरित उद्देश्य से किया गया कार्य कष्टकारी होता है। जहाँ स्त्री/पुरूष अपने मन के स्वामी बनकर कर्म करते हैं, तब वही कार्य अनासक्ति तथा परमानन्द ला सकता है। अतः वह स्त्री/पुरूष जिसका अपने मन पर पूर्ण अधिकार है, आदर्श व्यक्ति है, वास्तविक रूप से शिक्षित स्त्री/पुरूष है।

❖ नेतृत्व गुण

1.9 नई पीढ़ी में नेतृत्व के गुणों को प्रोत्साहित करने में एक अच्छी शिक्षा प्रणाली कभी भी असफल नहीं होती। अगुवाई करने वाले को इस बात पर सतर्क किया जाना है कि उसे हजारों विचारों को समायोजित करना होगा। उसके प्रयासों की सफलता उसके अपने साथियों के प्रति भावना पर पूर्णतः निर्भर होगी। एक पथ-प्रदर्शक का प्रेम, व्यक्तिगत स्तर पर नहीं होगा। पश्चिमी दुनिया में स्वतंत्रता के भाव के साथ ही आज्ञाकारिता की भावना भी समान रूप से सशक्त है। किन्तु भारत में सभी स्वयं में

महत्वपूर्ण हैं और इस दृष्टि के चलते कोई काम नहीं हो पाता। महत् कार्य को सम्पादित करने हेतु नायक के आदेश का निर्विवाद रूप से पालन होना चाहिए।

1.10 आज्ञाकारिता के गुण को आगे बढ़ाने में कोई अपने विश्वास का परित्याग न करे। किसी भी संगठन में नेता आदर्श चरित्र का होना चाहिए। "जहाँ नायक चरित्रवान नहीं है वहाँ कोई समर्थन /समर्पण सम्भव नहीं है तथा स्थायी समर्थन व भरोसा पूर्ण शुद्धता ही सुनिश्चित करती है।"

❖ कर्तव्यनिष्ठा

1.11 महान दूतों एवं पैगम्बरों ने सदा ही कर्तव्यनिष्ठा को महत्व दिया है। स्वामी विवेकानन्द मानते हैं कि कर्तव्य प्रेम के माध्यम से ही प्रिय होता है तथा स्वतंत्रता में ही केवल प्रेम प्रकाशित होता है। शिक्षित मस्तिष्क के लिए सभी कर्तव्य अच्छे हैं क्योंकि वहाँ किसी पुरस्कार की कामना नहीं होती।

1.12 गीता में संकेत है कि प्रत्येक कार्य अवश्यम्भावी रूप से अच्छे और बुरे का मिश्रण है। अच्छे और बुरे को अपना फल मिलेगा, लेकिन कार्य करने वाले को केवल अपने कार्य से लगाव होना चाहिए। "जो अच्छे कर्म में थोड़े बुरे का अंदेशा रखते हैं और बुरे में अच्छे का, उन्हें कर्म रहस्य समझ में आ गया है।"

❖ हस्तक्षेपहीनता

1.13 हस्तक्षेपहीनता का सिद्धान्त स्पष्ट करता है कि कर्तव्य और नैतिकता की अलग-अलग श्रेणियां होती हैं, कि एक प्रकार की परिस्थितियों के जीवन के कर्तव्य अन्य परिस्थितियों में सम्भव नहीं होते। प्रत्येक व्यक्ति को अपने-अपने आदर्श के चयन और सफलता से उसका अनुसरण करने में शिक्षा को मददगार होना चाहिए। अन्य किसी के आदर्श को जिसे वह कभी सम्पादित नहीं कर सकता, उसें अपनाने से उन्नति की राह बेहतर है। "किसी भी समाज में प्रत्येक स्त्री एवं पुरूष एक मानसिक शक्ति के नहीं होते या कार्य को सम्पादित करने के लिए एक बराबर ताकत नहीं रखते; उनके पास विभिन्न आदर्श होने चाहिए और उन आदर्शों की हँसी उड़ाने का हमें कोई अधिकार नहीं है।"

❖ एक स्वामी की भाँति कर्म

1.14 वेदान्त मनुष्य को सर्वप्रथम आत्मविश्वास जगाने की शिक्षा देता है। मनुष्य को स्वामीवत् कार्य करने में प्रवृत्त करना चाहिए, एक दास की तरह नहीं – यही शिक्षा का सर्वश्रेष्ठ उपहार हो सकता है। यदि कोई

दाता का स्थान लेता है और उसमें प्रसन्न होता है, तो उसके कार्य को उपासना समझा जाना चाहिए। मानव सभ्यताओं से मुकाबला करने हेतु शिक्षा द्वारा आत्मविश्वास की भावना जगायी जानी चाहिए। स्वामी जी के अनुसार मनुष्य का वास्तविक व्यक्तित्व, उसका असली प्रेम, उसे अपना काम आनन्द के साथ स्वामीवत् बना देता है। स्वामी जी की कामना थी, एक व्यक्ति को अपना कार्य सम्पादित करने हेतु पवित्र, सरल और पूर्णरूपेण ईमानदार होना चाहिए। हर शिक्षित मनुष्य में अत्यधिक सच्चाई और निष्कपटता होनी चाहिए और वही उसकी जिंदगी में सफलता का कारक है।

❖ स्वदेश प्रेम तथा स्वातंत्र्यबोध

1.15 स्वदेश प्रेम और स्वातंत्र्यबोध के विकास के लिए शिक्षा द्वारा तीन चीजें दी जानी चाहिए। वे हैं : (1) मातृभूमि के लिए प्रेम। (2) अशुभ को परास्त करने की अदम्य इच्छा, तथा (3) इच्छित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अटूट दृढ़ता। उनकी अनेक कविताओं में स्वदेश प्रेम तथा स्वतंत्र्यबोध सम्बन्धी दृढ़ विश्वास अति स्पष्ट रूप से झलकता है, खास करके 'सन्यासियों के गीत' के तीसरे पद में,

श्रृंखला तुम्हारे! बन्धन जो बांधे तुम्हें,
चमकते सुवर्ण के या मलिनतर, हीनतर धातुओं के,
प्रेम-घृणा, भला-बुरा और सारे द्वैत के घेरे,
जानो, दास है दास ही, पुचकारा गया हो या प्रताड़ित,
है आजाद नहीं,
क्योंकि सुवर्ण की श्रृंखला सोने की भी, है न कम ताकतवर,
अतः त्यजो उन्हें, निर्भय सन्यासी कहो-
"ऊँ तत् सत्, ऊँ।"

1.16 ये पंक्तियाँ स्पष्ट रूप से 19वीं सदी के भारत की सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक पतन की ओर संकेत करती हैं तथा स्वामी विवेकानन्द ने किस प्रकार भारतीयों को अपनी स्वाधीनता की प्राप्ति हेतु संघर्ष करने के लिए तैयार किया, यह बताती हैं।

2. व्यक्तित्व विकास में शिक्षा का योगदान

स्वामी जी के अनुसार, व्यक्ति का आभामण्डल, जिसका वह निर्माण करता है और दूसरों पर फैलाता है, व्यक्तित्व है। निम्नांकित प्रतिपादन एक विस्तृत प्रयास है जो स्वामी जी के, विकास हेतु व्यक्तित्व तथा शिक्षा के योगदान को दिखाता है।

2.1 हमारे चारों ओर जो हो रहा है, देखो! हमारी ऊर्जा का एक हिस्सा हमारे अपने शरीर की सुरक्षा में खप जाता है। उसके परे हमारी ऊर्जा का हर कण, दिन-रात दूसरों को प्रभावित करने में प्रयुक्त होता है। हमारे शरीर, हमारे सद्‌गुण, हमारी बौद्धिकता और हमारी आध्यात्मिकता– ये सारी चीजें अनवरत दूसरों पर प्रभाव डालती हैं; और उसी तरह विपरीत रूप से हम दूसरों से प्रभावित होते हैं। यह हमारे चारों तरफ हो रहा है। उदाहरण के लिए एक व्यक्ति जो प्रबुद्ध है, जिसकी भाषा सुन्दर है, आता है और तुम्हारे साथ घण्टो बातें करता है, पर कोई छाप नहीं छोड़ता। एक दूसरा व्यक्ति आता है, कुछ ही शब्द बोलता है, वे भी अव्यवस्थित और सम्भवतः व्याकरण के लिहाज से त्रुटिपूर्ण है, तथापि वह गहरा प्रभाव छोड़ता है। आप में से बहुतों ने ऐसा देखा है। तो यह स्पष्ट है कि शब्द मात्र ही प्रभाव उत्पन्न नहीं कर सकते। शब्द, यहाँ तक कि विचार प्रभावोत्पादन में मात्र एक तिहाई अंश की हिस्सेदारी करते हैं– व्यक्ति उसमें दो तिहाई की हिस्सेदारी करता है। जिसे तुम व्यक्तित्व का चुम्बकीय आकर्षण कहते हो, वही प्रभावित करता है।

2.2 समस्त शिक्षा, समस्त प्रशिक्षण का आदर्श मानव निर्माण होना चाहिए। लेकिन हम उसकी जगह मात्र बाहरी सतह को चमकाते रहते हैं। भीतर जब सार तत्व नही हैं तो बाहर चमकाने से क्या फायदा? हर प्रशिक्षण का अन्त और लक्ष्य मानव विकास होना चाहिए। वह व्यक्ति जो प्रभावित करता है, जो अपना करिश्मा अपने सहयोगियों पर छोड़ता है, वह ऊर्जा का एक शक्तिमापी के सदृश है और जब वह व्यक्ति तैयार है, तब वह कुछ भी जो वह चाहे, कर गुजर सकता है। ऐसा व्यक्तित्व होने पर कुछ भी किया जा सकता है।

2.3 योग विज्ञान दावा करता है कि उसने ऐसे नियमों का अविष्कार किया है, जिनके द्वारा ऐसा व्यक्तित्व गढ़ा जा सके और नियमों और तरीकों पर विशेष ध्यान देकर प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास तथा सशक्तिकरण कर सकता है। यह अत्यन्त व्यावहारिक चीज है और समस्त शिक्षा का मर्म है। इसका प्रयोग व्यापक हो सकता है। गृहस्थ का जीवन हो, दरिद्र का जीवन हो, अमीर, व्यापारी, आध्यात्मिक व्यक्ति का जीवन हो, प्रत्येक के जीवन हेतु व्यक्तित्व का सशक्त होना बहुत बड़ी बात है। नियम हैं– अच्छे हैं, जो भौतिक जीवन के आधार में है जैसा हमे मालूम है, शारीरिक जीवन, मानसिक जीवन, आध्यात्मिक जीवन की अलग-अलग सत्यता नहीं है। जो कुछ है वह एक है। हम कह सकते है कि यह सूक्ष्मतर होता हुआ अस्तित्व है। इसका स्थूल अंश यहाँ है– फिर यह सूक्ष्म होता है और सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होता जाता है। सूक्ष्मतम वह है जिसे हम मुख्य गुण कहते हैं, स्थूलतम हिस्सा शरीर है। जैसे यहाँ यह व्यष्टि में है वैसी ही समष्टि में है। हमारा ब्रहमाण्ड भी वैसा ही है।

वाह्यतः यह स्थूल है फिर सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होते हुए वह ईश्वर बन जाता है।

2.4 हम यह भी जानते हैं कि सर्वोच्च शक्ति सूक्ष्म में निहित रहती है, स्थूल में नहीं। एक व्यक्ति को हम विशाल बोझ उठाते देखते हैं, उसकी मांसपेशियाँ फूलती हुई दिखती हैं और उसके सम्पूर्ण शरीर पर परिश्रम के लक्षण दिखते हैं तथा हम सोचते हैं कि मांसपेशियाँ शक्तिशाली वस्तु हैं। लेकिन असल में वह धागे सा पतला चिन्ह स्नायु समूह ही है जो मांसपेशियों को ताकत देता है; एक क्षण जब एक भी धागा-स्नायु काट दिया जाये तो मांसपेशियाँ बिल्कुल कार्यक्षम नहीं रहतीं। ये सूक्ष्म तत्व भी सूक्ष्मतर वस्तु से शक्ति लेते हैं– वह है विचार इत्यादि। इसलिए जो सूक्ष्म है वही शक्ति का आधार है। वैसे हमें ये हरकतें स्थूल में ही दिखती हैं, लेकिन जब सूक्ष्म गतिविधियां होती हैं, उन्हें हम देख नहीं पाते। जब एक स्थूल वस्तु हिलती-डुलती है, हम उसे समझ लेते हैं और हम स्वभावतया गतिविधियों को स्थूल वस्तुओं के साथ जोड़ देते हैं। लेकिन सारी शक्ति वास्तव में सूक्ष्म में ही निहित है। हम सूक्ष्म में कोई गतिविधि नहीं देख पाते। शायद वह क्रिया इतनी तीव्र है कि हम उसको धारण नहीं कर पाते।

2.5 सभी महान् अवतार और पैगम्बर ऐसे ही लोग हैं; उन्होंने इस एक जीवन में पूर्णता हासिल की है। हम लोगों ने दुनिया के इतिहास में सदा ही ऐसे लोगों को जाना है। अभी हाल में ही एक ऐसे व्यक्ति हुए जिन्होंने पूरी मानव जाति का जीवन जीया और अन्त को प्राप्त किया– इसी जीवन में ही। विकास की यह त्वरित गति अवश्य ही नियमों के अन्तर्गत होगी। मान लो हम उन नियमों की छानबीन कर सकते हैं और उनका रहस्य समझ सकते हैं तथा अपने प्रयोजन में प्रयोग कर सकते हैं। हम अपने विकास को त्वरित कर सकते हैं, और हम इसी जीवन में पूर्णता प्राप्त कर सकते हैं। यह हमारे जीवन का उच्चतर अंश है और मन के अध्ययन का विज्ञान और उसकी वास्तविक शक्ति का अंतिम छोर इसी पूर्णता का है।

2.6 इस विज्ञान की उपयोगिता पूर्ण मानव के निर्माण में है, अब उसे सदियों तक स्थूल भौतिक दुनिया के हाथों खिलौना बनकर मत रहने दो, उसे बहते पानी में लकड़ी की तरह तरंगों में बहने और प्रक्षिप्त मत होने दो। यह विज्ञान चाहता है– तुम शक्तिशाली बनो, कार्य को अपने हाथों में लो, प्रकृति के हाथ में मत छोड़ो तथा इस छुद्र जीवन से ऊपर उठो।

3. चरित्र-निर्माणकारी शिक्षा

स्वामी विवेकानन्द ने, चरित्र निर्माण, जो समाज का सर्वाधिक पवित्र उद्देश्य होना चाहिए, पर अत्यधिक महत्व दिया। उनका तर्क था कि

अन्य समस्त सम्पदाओं की तुलना में मात्र चरित्र-धन ही ऐसा है जो एक समाज को खास पहचान देता है तथा उसके सदस्यों को बुनियादी शक्ति प्रदान करता है, ताकि वे कायम रहें। इस विषय पर स्वामी जी के विचार निम्नवत हैं:

3.1 एक व्यक्ति का चरित्र उसकी समस्त प्रवृत्तियों का समुच्चय है– उसके समग्र मस्तिष्क का सार है, सुख-दुःख गुजरते हुए उसकी आत्मा पर विभिन्न छाप छोड़ते हैं और इन्ही के प्रभावों का संयुक्त फल मानव चरित्र है। हम वही हैं जो हमारे विचार हमें बताते हैं। हमारे लौह पिण्डनुमा शरीरों पर हमारा प्रत्येक विचार जैसे एक हथौड़े सी छोटी मार सी है, जिसके द्वारा हम वह गढ़ते हैं जो हम उसे बनाना चाहते हैं। शब्द गौण हैं। विचार शाश्वत हैं, वे सुदूरगामी हैं। अतः विचारों के सन्दर्भ में सावधानी रखो।

3.2 चरित्र निर्माण में अच्छे बुरे दोनों की समान भागीदारी होती है और कुछ क्षेत्रों में सुख से अधिक कष्ट सिखाते हैं। विश्व के महान व्यक्तियों के जीवन के अध्ययन से यह पता चलता है कि सुख से ज्यादा दुःख ने, सम्पदा से अधिक दारिद्र्य ने, प्रशंसा से अधिक कष्ट के थपेड़ों ने उनके अन्दर की आग को प्रकाशित किया। भोग-विलास में पल कर, फूलों की सेज पर सोकर, बिना कष्ट के आँसू बहाकर, कोई महान बन पाया है? हृदय में जब तकलीफों की उथल-पुथल हो, जब चतुर्दिक कष्ट की आँधी चल रही हो, लगता है कि रोशनी कभी न छाएगी, जब आशा और हिम्मत जबाब दे चुके हों, तब ही उसी समय, इस आत्मिक झंझावत में मन में प्रकाश चमक उठता है।

3.3 मस्तिष्क की तुलना एक झील से करने पर उसकी हर लहर, हर तरंग जो उसमें उठती है, जब धीमी पड़ जाती है, पूर्णतः चली नहीं जाती है, बल्कि एक निशान छोड़ जाती है और छोड़ जाती है एक सम्भावना कि वह दाग फिर से उभर जाता है। हर कार्य जो हम करते हैं, शरीर की हर गतिविधि, हर चिन्तन, हमारे दिमाग पर चिन्ह छोड़ता है और जब सतह पर नहीं होता तब भी अवचेतना में भली-भाँति शक्तिशाली होकर कार्य करते हैं। इन प्रभावों की समष्टि ही हमको हर मुहूर्त निर्मित करती है। हर व्यक्ति का चरित्र इन्हीं प्रभावों का निचोड़ है। यदि अच्छे प्रभाव हावी रहें तो चरित्र अच्छा होता है, बुरे के रहने पर बुरा होता है। अनवरत यदि कोई व्यक्ति बुरे शब्द सुनता है, बुरा चिन्तन करता है, बुरा काम करता है; उसका दिमाग बुरे प्रभाव से भर जाएगा और उसके अनजाने में ही वे उसके विचारों और कार्यों को प्रभावित कर देगा। असल में, बुरे प्रभाव सदा ही सक्रिय रहते हैं। व्यक्ति के अन्दर ये बुरे प्रभाव बुरे कार्य करने की तीव्र प्रेरक शक्ति बन जाएँगे। प्रभावों के हाथों वह एक मशीन की तरह बन जाएगा। उसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति

अच्छा सोचता है, भला काम करता है, तो उनका निचोड़ अच्छा होगा और व्यक्ति को अच्छा करने हेतु प्रेरित करेगा। वह पूर्णतः सद् प्रवृत्तियों के प्रभाव में है। जब ऐसा होता है तब व्यक्ति का सत्चरित्र स्थापित हो जाता है, यदि तुम किसी के चरित्र को वास्तव में समझना चाहते हो तो उसकी बड़ी उपलब्धियों को मत देखो। व्यक्ति को आम जिन्दगी के छोटे-छोटे कार्य करते देखो, वही कार्य तुम्हें उस महान व्यक्ति के असली चरित्र के विषय में बताएँगे। बड़े मौके सामान्य लोगों को भी कुछ कर गुजरने के लिए प्रेरित करते हैं, लेकिन बड़ा वही होता है जिसका चरित्र सदा ही जहाँ भी रहे एक जैसा रहता है।

3.4 जब प्रभावों की एक बहुत बड़ी तादाद दिमाग पर रह जाती है तो वह घनीभूत होकर आदत बन जाती है। कहा जाता है "आदत व्यक्ति का दूसरा स्वभाव होता है।" यह पहला भी है और मनुष्य का समग्र स्वभाव भी। हम जो कुछ भी हैं आदतों का फल हैं। हम कभी भी इन्हें, यदि ये मात्र आदत हैं, बना या बिगाड़ सकते हैं– यह बात हमें सान्त्वना देती है। बुरी आदतों का तोड़ है– विपरीत आदतें। हर बुरी आदत को अच्छी आदत के द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है। अच्छा करते चलो, निरन्तर पवित्र विचारों को सोचो, बुरे प्रभावों को दबाने का एक मात्र यही उपाय है। किसी के लिए निराशा मत पालो क्योंकि वह आदतों की एक पोटली है और एक चरित्र को दर्शाता है, जिसे दूसरे नए और बेहतर चरित्र के द्वारा संयमित किया जा सकता है। चरित्र आदतों के दोहराने से बनता है और आदतों को दोहराने से चरित्र सुधरता है।

3.5 स्वयं का पुनरावलोकन करो– अमीबा के स्तर से इन्सान के स्तर का अवलोकन करो; किस ने यह सब बनाया? तुम्हारी अपनी इच्छा शक्ति ने। क्या तुम इसमें ईश्वर का खण्डन कर सकते हो? जिसने तुमको इस उच्च स्तर तक पहुँचाया, वही तुम्हें और उच्चतर स्थिति तक पहुँचा सकता है। तुम्हें आवश्यकता है मात्र चरित्र की और इच्छा शक्ति को बलशाली बनाने की।

4. शांति और सौहार्द के लिए शिक्षा

यदि शिक्षा मानवीय विध्वंस से बचाव का एकमात्र उपाय है, तो शांति शिक्षा की आत्मा है, जो पृथ्वी पर मानव प्रजाति की रक्षा हेतु एक कवच है। यह केवल शांति शिक्षा के माध्यम से ही संभव है कि मानव मस्तिष्क में चल रहे युद्ध के प्रतिरोधक के रूप में शांति की भावना स्थापित की जाए। निम्नांकित विश्लेषणात्मक प्रस्तुति में स्वामी जी के विचारों को सभी में सकारात्मक सोच विकसित करने के प्रयोजन से समेकित किया गया है। वर्तमान संदर्भ में नया शिक्षण-विज्ञान ढूंढ निकालने की अनुभूत

आवश्यकता को ध्यान में रखकर अध्यापक प्रशिक्षकों के लिए यह सामग्री विशेष रूप से उपयोगी है।

4.1 शांति को 'हिंसा की अनुपस्थिति' के रूप में परिभाषित किया गया है। किन्तु यह एक संकीर्ण एवं नकारात्मक प्रतिपादन है। स्वामी विवेकानन्द के दर्शन के अनुरूप, शांति का तात्पर्य, युद्ध की अनुपस्थिति मात्र नहीं अपितु सभी क्षेत्रों में हिंसा का निषेध है। जैसे– संघर्ष, जान से मारने की धमकी, सामाजिक अधःपतन, भेदभाव, उत्पीड़न, शोषण, गरीबी, अन्याय आदि। जब तक सामाजिक व्यवस्था में विध्वंसक संरचनाएँ विद्यमान रहेंगी, तब तक शांति की धारा प्रवाहित नहीं हो सकती। क्योंकि यह स्वाभाविक होगा कि इस प्रकार की संरचनाएँ लोगों को विध्वंसक कार्यों की ओर प्रेरित करें। उदाहरणार्थ– समाज में संसाधन वितरण की एक अनुचित व्यवस्था उन लोगों में कुण्ठा का भाव भरेगी जो किसी तरह वंचित हैं या जिन्हें कम लाभ मिल रहा है। लोगों की यह हताशा हिंसा में परिवर्तित हो सकती है। ऐसे बाधक एवं उनके प्रतीकात्मक कारकों को नकारात्मक कहा जा सकता है।

4.2 हिंसा की अनुपस्थिति के अर्थ में शांति से तात्पर्य है– हाथापाई की स्थिति, गोलीबारी, अनवरत बमबारी या परमाणु हथियारों के प्रयोग की स्थितियों का न पाया जाना। लेकिन यह अपने आप में अपर्याप्त है।

4.3 शांति एक मनोदशा है। स्वामी जी के विचारों से प्रेरणा लेते हुए यूनेस्को के संविधान की प्रस्तावना के अधोलिखित अभिकथन अत्यंत सुंदर ढंग से वर्णित है–

> *'चूंकि युद्धों का प्रारंभ मनुष्य के मन में होता है, शांति की सुरक्षा भी मनुष्य के मन में ही निर्मित करनी होगी।'*

4.4 मान्यताओं, दृष्टिकोणों, संस्कृतियों एवं सांस्कृतिक परंपराओं में विभेद के फलस्वरूप हिंसा उत्पन्न होती है। अस्तु, शांति से तात्पर्य-केवल 'हिंसा न होने' की स्थिति से कहीं अधिक है। यह सहिष्णुता, परस्पर अवबोध, भिन्नताओं के प्रति आदर तथा प्रेम का परिचायक है। यह केवल अपनी चिंता की अपेक्षा दूसरों की चिंता से जुड़ा हुआ है, जिसे स्पष्ट करने हेतु यूनेस्को संविधान की प्रस्तावना में दिए गए वक्तव्य से दिशा-निर्देश एवं प्रेरणा ली जा सकती है–

> *"यह कि, संपूर्ण मानव इतिहास इस बात का साक्षी है कि तौर-तरीकों, और पद्धतियों के विषय में अज्ञान इस बात का समान कारण रहा है, जिसमें दुनिया भर के*

लोगों में परस्पर संदेह एवं अविश्वास का भाव पैदा हुआ है और इस प्रकार के भेदभाव युद्ध में परिवर्तित हुए।

यह कि, सबसे बड़ा एवं भयानक विश्व-युद्ध जो देखने को मिला है, उसका मूल कारण रहा है-लोकतंत्र के सिद्धान्तों, यथा-मानव गरिमा, समानता एवं परस्पर आदर के भाव की उपेक्षा और इसके स्थान पर अज्ञान, पूर्वाग्रह तथा मनुष्य व मानव जातियों में गैर-बराबरी के सिद्धांत का प्रचार-प्रसार।

यह कि, मानवीय गरिमा के लिए संस्कृति का व्यापक प्रसार तथा न्याय, स्वतंत्रता व शांति के लिए मनुष्य को शिक्षित करना परमावश्यक है। यह एक पवित्र कर्तव्य है, जिसे सभी देशों में परस्पर सहयोग एवं चिन्ता की भावना को जगाकर करना है।

... यह कि, फलतः मनुष्य की बौद्धिक एवं नैतिक आधार भूमि पर शांति की स्थापना होनी चाहिए, जिससे हम असफलता का मुंह न देख सकें।"

4.5 भारतीय धर्मग्रंथों के अनुसार, जैसा कि स्वामी विवेकानन्द ने संकेत दिया है, हिंसा के तीन प्रकार हैं– मानसिक, वाचिक एवं कायिक।

- *मानसिक* – दूसरों को प्रताड़ित करने के लिए सोचना, जैसे– 'मेरी इच्छा है कि मैं उसे जोर से मारूँ,' मानसिक हिंसा है। यद्यपि यह मात्र एक इच्छा थी और इसमें किसी प्रकार की शारीरिक हिंसा नहीं की गई। दूसरों के विषय में बुरा सोचना भी एक प्रकार की हिंसा है।

- *वाचिक* – दूसरों के लिए कठोर वचन बोलना, जो दूसरों को दुःख पहुँचाए, एक अन्य प्रकार की हिंसा है। संस्कृत में एक उक्ति है, शिक्षक द्वारा शिष्य को सुझाव है– सत्य बोलो, मधुर बोलो। वह सत्य मत बोलो जो अप्रिय हो। (सत्य ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्, न ब्रूयात् सत्यं अप्रियम्) इस उक्ति का तात्पर्य है– वाणी से भी होने वाली हिंसा को रोकना।

- *कायिक* – शारीरिक शक्ति के द्वारा दूसरों को क्षति पहुँचाना। यह सामान्य रूप से मान्यताप्राप्त हिंसा का एक रूप है जिसे व्यक्तियों, समूहों, समुदायों एवं राष्ट्रों के मध्य देखा जा सकता है।

4.6 इस त्रि-स्तरीय हिंसा के पीछे एक महत्वपूर्ण समझदारी निहित है और यह संयुक्त राष्ट्र संघ की घोषणा में प्रस्तुत विचार से साम्य रखती है। इन तीनों प्रकार की हिंसाओं में कारण-कार्य संबंध दिखाई देता है। अनुचित भाषा या वाचिक हिंसा की उत्पत्ति मस्तिष्क में छिपी हिंसक सोच से होती है। जबतक कोई दूसरे के विषय में बुरा नहीं सोचता है, वह हिंसक या अपमानजनक शब्द का प्रयोग नहीं कर सकता। वस्तुतः हिंसक शारीरिक कार्य का कारण व्यक्ति के विचार एवं उसकी भाषा होती है। यह सामान्य रूप से देखा जा सकता है कि वास्तविक रूप में घटित शारीरिक हिंसा के पूर्व कोई न कोई उग्र वादविवाद या विध्वंसक बातचीत अवश्य होती है।

4.7 अतः जिस प्रकार हिंसा या युद्ध का विचार मानव मन में होता है, मनुष्य के मन में ही शांति एवं सौहार्द के विचार भरे जाने चाहिए।

4.8 पुनः, हिंसा या शांति की अनुपस्थिति के अनेक सामाजिक आकार या स्वरूप हैं, यथा :

- वैयक्तिक (दो व्यक्तियों के मध्य संघर्ष),
- समूह (गुटों का संघर्ष),
- समुदाय (जातीय संघर्ष और साम्प्रदायिक हिंसा),
- राष्ट्र (दो राष्ट्रों के मध्य युद्ध),
- संस्कृतियाँ (विश्व युद्ध एवं अफगानिस्तान, इराक में समकालीन आंग्ल-अमेरिकी युद्ध आदि)।

4.9 जैसे-जैसे संघर्ष की स्थिति व्यक्ति से संस्कृति की ओर बढ़ती है, विनाश का क्रम भी एक साथ दूरगामी प्रभाव एवं एक व्यापक निहितार्थ के रूप में आगे बढ़ता है।

4.10 शांति को हिंसा का अभाव इस रूप में परिभाषित न कर, इसकी वास्तविक अवधारणा को स्वामी विवेकानन्द के विचारों में खोजना अधिक लाभकारी होगा, जो मूलतः वेदांत की परंपरा पर आधारित है। स्वामी जी के अनुसार शांति का विश्वसनीय एवं ठोस आधार व्यक्ति के भीतर का संतोष है।

4.11 आमतौर से संतुष्ट होने का तात्पर्य है – इच्छाओं की संतुष्टि। परंतु यह रेगिस्तान में मृग मरीचिका की भांति है। इच्छाएँ अनंत हैं। एक इच्छा की तुष्टि, संतुष्टि के भाव की अपेक्षा, दूसरी बड़ी इच्छा की ओर ले जाती है। एक गरीब व्यक्ति एक साइकिल की अपेक्षा करता है। जब वह साइकिल खरीदता है तब वह संतुष्टि महसूस करता है, लेकिन जब वह किसी को स्कूटर की सवारी करते देखता है तब वह भी स्कूटर लेना

चाहता है। यह इच्छा क्रमशः इसी रूप में बढ़ती जाती है। भौतिक इच्छाओं की प्राप्ति में असफलता क्रोध को बढ़ाती है, सभी प्रकार की हिंसाओं (मानसिक, वाचिक एवं कायिक) का बीज-वपन करती है। इसकी अपेक्षा, शांति की दृष्टि से, संतुष्टि के भाव का तात्पर्य है– इच्छाओं पर नियंत्रण। यदि इच्छाएँ नियंत्रण में हैं तो ऐसी दशा में असफलता-जनित क्रोध का शमन होगा। इस संबंध में गीता के उस महत्वपूर्ण कथन का स्मरण करना उचित होगा, जिसे स्वामी जी प्रायः उद्धृत करते थे, कि मानवाधिकार का तात्पर्य पेट भरने की आवश्यकता मात्र तक अनुसीमित है। यदि कोई इससे अधिक चाहता है तो वह एक चोर है, वह दण्ड का भागी है। जो संतुष्ट है वह आवश्यकता से अधिक नहीं चाहेगा। उसे चोर की श्रेणी में डालकर न तो दण्डनीय और ना ही हिंसा की ओर उन्मुख किया जा सकता है। आचार्य विनोवा भावे ने स्वामी जी के विचारों में निहित संकेत को बहुत ही सुंदर ढंग से व्याख्यायित किया है। उन्होने संतुष्टि के भाव के विचार को तीन शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। वे हैं –

- *प्रकृति* – एक व्यक्ति को जब भूख लगती है तो वह खाता है। यह स्वाभाविक एवं सामान्य है।
- *विकृति* – एक व्यक्ति जो तब भी खाता है, जब उसका पेट भरा होता है और भूखा नहीं है। यह मनुष्य की विकृति और गिरावट है।
- *संस्कृति* – वह जो अपना भोजन दूसरे भूखे व्यक्ति को दे देता है, अपनी भूख को स्थगन में रखकर अपना भोजन दूसरे को दे देता है, संस्कृति है।

4.12 इस प्रकार, हिंसा का प्रारंभ या शांति की अनुपस्थिति व्यक्ति की कामना (जिससे तात्पर्य है– दूसरों की संपत्ति, राष्ट्रों आदि पर विजय की महत्वाकांक्षा) से सम्बन्धित होती है। इसीसे दो पक्षों के बीच संघर्ष छिड़ते हैं, चाहे वे व्यक्ति हों, समूह हों, समुदाय हों, देश हों या संस्कृति हों। इसी से असंतोष पनपता है। अस्तु, इच्छाओं, कामनाओं पर नियंत्रण के माध्यम से संतोष के भाव को संवर्धन प्रदान करने से ही शांति सुनिश्चित की जा सकती है।

4.13 हिंसा आदि के मूल में दूसरा कारक है– विभिन्न धर्मिक विश्वासों, भाषाओं, सामाजिक रीति-रिवाजों, व्यवहारों आदि के प्रति असहिष्णुता।

4.14 प्रतिस्पर्धा हिंसा का एक अन्य महत्वपूर्ण स्रोत है। किसी अन्य को दबाकर अपने आप को श्रेष्ठ साबित करना, प्रतिस्पर्धा का एक अवांछनीय आधार है। निःसंदेह प्रतिस्पर्धा की यह प्रकृति प्रभुत्व या साधनों को हड़प लेने की प्रबल कामना में सन्निहित होती है।

4.15 अतः, सार रूप में यह कहा जा सकता है कि शांति की भावना इच्छाओं पर नियंत्रण के लिए मस्तिष्क के प्रशिक्षण, योग्यता एवं कामना के बीच संतुलन, विविधताओं के प्रति सम्मान एवं सहिष्णुता, तथा दूसरों के प्रति चिंता एवं प्रेम के भाव और प्रतिस्पर्धा से सहयोग की ओर उन्मुखता द्वारा संवर्धित की जा सकती है। शांति की भावना लाने के लिए एक ऐसी शिक्षा अपेक्षित है जो सहकारी एवं परस्पर सहयोग की प्रवृत्ति तथा स्वंय की अपेक्षा दूसरों के प्रति गहन चिंता के भाव को विकसित करे। इसके लिए एक ऐसे प्रशिक्षण की आवश्यकता है, जिसमें व्यक्ति की इच्छा-शक्ति एवं उसके प्रवाह को नियंत्रण में रखते हुए उसे फलदायिनी बनाया जा सके।

4.16 इसी प्रकार शांति को सकारात्मक रूप में भी व्याख्यायित किया जा सकता है। शांति के कुछ प्रमुख तत्व हैं– प्रसन्नता, स्वास्थ्य, संतुष्टि एवं अच्छी अर्थव्यवस्था, सामाजिक न्याय और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तथा सभी स्तरों पर व्यक्तिगत विकास हेतु सृजनात्मक अवलंब प्रदान करना। इसे ही शांति का सकारात्मक पक्ष कहा जा सकता है।

4.17 शांति एवं सौहार्द के सभी प्रारूप, सभी अर्थ; स्वामी विवेकानन्द द्वारा अनुभूत तीन आधारभूत बिंदुओं के अर्न्तगत आ जाते हैं। ये हैं– आंतरिक शांति, सामाजिक शांति और प्रकृति के साथ शांति। इन्हें निम्नांकित बिंदुओं के अर्न्तगत विश्लेषित किया जा सकता है :

- *आंतरिक शांतिः* आंतरिक शांति वह है जिसमें व्यक्ति स्वंय में शांति का अनुभव करे। यह एक प्रकार की आत्म-संतुष्टि है। इसमें व्यक्ति का मन दुःखों से विचलित नहीं होता, उसमें सुखों के प्रति चाह लुप्त हो जाती है और वह अनुराग, भय एवं क्रोध से मुक्त होता है, आंतरिक शांति प्राप्त कर लेने वाले व्यक्ति के व्यवहार में जो लक्षण दिखाई देते हैं, वे हैं उदाहरणार्थ– स्वंय के प्रति शांति एवं सौहार्द, उत्तम स्वास्थ्य का होना एवं आंतरिक द्वन्दों का अभाव, प्रसन्नता की अभिव्यक्ति, स्वतंत्रता का भाव, सूझ-बूझ, आध्यात्मिक शांति, दयाशीलता, करूणा व संतोष तथा कला के प्रति सराहना का भाव आदि।

- *सामाजिक शांतिः* मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह अलग-थलग नहीं रह सकता। आज के युग में सामुदायिक जीवन का चित्रपट पहले के समजातीय, सांस्कृतिक, भाषाई एवं धार्मिक उपवर्गों से वैश्विक समुदाय के रूप में द्रुत रूप से परिवर्तित हो रहा है। यह विश्व समुदाय एक बहु-सांस्कृतिक, बहु-भाषाई एवं बहु-धार्मिक रूप धारण कर चुका है। इसमें एक अर्थपूर्ण एवं समृद्ध जीवन जीने के लिए

विविधता के प्रति सहिष्णुता के साथ जीवन जीने की अपेक्षा होती है। सामाजिक शांति के लिए विविधता के प्रति सहिष्णु होना ही पर्याप्त नहीं है। इसके विपरीत, इसके लिए आवश्यक शर्त है– विविधता के प्रति आदर एवं प्रेम। इस प्रकार सामाजिक शांति से अभिप्राय है– मानवीय संबंधों में सौहार्द, संघर्ष का समाधान एवं सामंजस्य, मैत्री, प्रेम, एकता, परस्पर अवबोध, सहयोग, भाईचारा, विभिन्नताओं के प्रति सहिष्णुता, लोकतंत्र, सामुदायिक संगति, मानवाधिकार तथा नैतिकता आदि।

- *प्रकृति से शांतिः* पृथ्वी ग्रह मानवीय सभ्यता का धारक है। प्रतीक रूप में इसे 'धरती मां' की संज्ञा दी जाती है। वस्तुतः 'प्रकृति से शांति' का तात्पर्य है– पर्यावरणीय एवं पारिस्थितिकी क्षरण एवं शोषण के माध्यम से धरती माँ की प्रतिष्ठा पर हो रहे अतिक्रमण एवं आघात पर प्रभावी रूप से रोक लगाना। इस प्रकार 'प्रकृति से शांति' मे निहित असली भाव है– प्राकृतिक परिवेश एवं धरती मां से सौहार्द एवं सांमजस्य।

4.18 इस परिप्रेक्ष्य में स्वामी विवेकानन्द के मूल चिंतन को अधोलिखित रूप में सारांकित किया जा सकता है :

> *''शांति वह व्यवहार है जो लोगों में अपने बोलने, सुनने एवं दूसरे से संवादपरक अन्तर्क्रिया हेतु सौहार्द को प्रोत्साहन देता है तथा ऐसे कार्य जो दूसरों को आघात पहुँचाते हैं तथा दूसरों को नष्ट करते हैं, उन्हें निरूत्साहित करता है।''*

4.19 यह अत्यन्त समीचीन है कि इस प्रकार की चिंता को प्रबलित करने हेतु विश्व में प्रतिवर्ष 21 सितंबर को 'अंतर्राष्ट्रीय शांति दिवस' के रूप में मनाया जाता है। संयुक्त राष्ट्र की आम सभा ने इस दिवस को प्रत्येक देश एवं राष्ट्रों के नागरिकों में शांति के आदर्श को बल प्रदान करने वाला दिवस घोषित किया है।

4.20 इस वक्तव्य में निहित वास्तविक भावना को समझने के लिए राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के उन शब्दों को स्मरण करना होगा, जिसके माध्यम से उन्होंने कहा था, *''मैं बहुत सारे निमित्तों के लिए अपने जीवन की आहुति देने के लिए तैयार हूँ, किंतु किसी ऐसे निमित्त के प्रति नहीं जिसमें मैं किसी दूसरे को मार डालने के लिए उद्यत रहूँ।'*

4.21 संयुक्त राष्ट्र संघ की आम सभा ने अपने 15 जून 2007 को पारित प्रस्ताव में 2 अक्टूबर, गांधी जयंती (महात्मा गांधी का जन्मदिन) को अंतर्राष्ट्रीय अहिंसा दिवस के रूप में मनाने का विनिश्चय किया है,

जिससे अहिंसा का संदेश, जिसमें आम जनता की शिक्षा एवं जागरूकता भी सम्मिलित है, का प्रसार हो। इस प्रस्ताव में पुनः इस बात पर बल दिया गया है कि अहिंसा के सिद्धान्त की सार्वभौम प्रासंगिकता स्वीकारी जाए तथा शांति की संस्कृति, सहिष्णुता, परस्पर अवबोध एवं अहिंसा प्राप्ति के संकल्प को बलवती बनाया जाए।

5. समानता एवं उत्कृष्टता के लिए शिक्षा

शैक्षिक अवसर की समानता एक समतावादी, लोकतांत्रिक एवं समाजवादी समाज द्वारा परिकल्पित सर्वोत्तम युक्ति है। यद्यपि इस अवधारणा पर विशेष ध्यान वर्तमान समाज में दिया गया है तथापि समानता के विचार की जड़ें मानव सभ्यता के आदिकाल से ही जुड़ी हुई हैं। स्वामी विवेकानन्द के चिंतन द्वारा आत्मसात् एवं व्याख्यायित वेदांत दर्शन 'समता' एवं 'शैक्षिक अवसर की समानता' को एक ठोस आधार प्रदान करता है। इससे घनिष्ठ रूप में जुड़ी उत्कृष्टता (श्रेष्ठता) की अवधारणा भी है, जिसकी स्वामी जी अपने विचारों एवं कार्यों के माध्यम से एक वास्तविक प्रतिमूर्ति थे। हमारा समाज महान् तभी बन सकता है जब कई स्तरों पर समाज के व्यक्ति निष्पादन के उच्च मानदण्डों को स्वीकार करें तथा अपनी सीमाओं के तहत उन मानदण्डों तक पहुँचने का प्रयास भी करें। हमारी शैक्षिक परिस्थितियों में इन दोनो ही अवधारणाओं की विद्यमानता को भली प्रकार समझने के लिए आगे प्रस्तुत विमर्श-बिन्दु शिक्षकों के लिए सामान्यतः तथा अध्यापक-प्रशिक्षकों के लिए विशेष तौर पर सहायक होंगे।

5.1 समानता एक गणितीय अवधारणा है जिसका अर्थ है कुछ अंशों या पक्षों या दो से अधिक पक्षों में समरूपता जोकि निश्चित रूप से मापनीय होती है। अतः शैक्षिक अवसरों की समानता का अभिप्राय है शिक्षा के अनुक्षेत्रों में सभी के लिए समान अवसरों को सृजित करना, लेकिन क्या यह संभव या वांछनीय भी है? इस मुद्दे पर एक लम्बी बहस हुई है। एक प्रकार के तर्क का यह आधार है कि शिक्षा एक मानव निधि है, मनुष्य को तथा उसके मूल्य या उसकी संभावनाओं को परिमाणात्मक रूप में मापित नहीं करना चाहिए। इसके विपरीत, समानताओं के प्राविधानों की तुलना समाज की मूल्य-प्रणाली के परिप्रेक्ष्य में करनी चाहिए। परिणामतः समानता मापित अनुरूपता होते हुए भी शैक्षिक अवसर की समानता व्यक्तियों की तुलना करने में गहरी नैतिक अभिज्ञता को आवश्यक मानती है। नैतिक अभिज्ञता के आधार को समाज की समाजशास्त्रीय, राजनीतिक, आर्थिक एवं दार्शनिक प्रणाली से जोड़ना चाहिए। यह 'शैक्षिक अवसरों की समानता' के सम्प्रत्यय को एक सापेक्ष सम्प्रत्यय बनाता है जो एक समाज से दूसरे समाज में भिन्नता की अपेक्षा से जुड़ा होता है।

5.2 शैक्षिक अवसरों की समानता के प्राविधान हेतु उसमें सम्मिलित आयामों पर एक समग्र दृष्टि के लिए निम्नलिखित दो अभिकथनों पर विचार करना चाहिए :

- शैक्षिक अवसर की समानता का तात्पर्य है सही शिक्षकों द्वारा सही बालकों को सही शिक्षा प्राप्त कराना जो राज्य के अर्न्तगत उपलब्ध साधनों के व्यय सामर्थ्य के अनुसार हो तथा जो बालकों को अपने प्रशिक्षण से अधिकाधिक लाभ देने में सहायक हो।
- शैक्षिक अवसर की समानता के प्राविधान हेतु समान विद्यालय प्रणाली की रचना अपेक्षित है जो बालक को बिना किसी सामाजिक भेदभाव के एक स्तर से दूसरे स्तर पर ले जाती है और प्रत्येक को उनकी योग्यताओं के अनुसार सामान्य और व्यावसायिक शिक्षा उपलब्ध कराती है।

  उपरोक्त अभिकथनों को निम्नलिखित तीन मुद्दों के सन्दर्भ में परीक्षण करें–

  (i) शिक्षा की अभिगम्यता में समानता
  (ii) शिक्षा की उपयोगिता में समानता
  (iii) शैक्षिक निष्पत्तियों से उत्पन्न सामाजिक प्रस्थिति की समानता

5.3 भारतीय सन्दर्भ में उपर्युक्त मुद्दों पर विचार करते समय शैक्षिक अवसरों की समानता को एक समान बनाने हेतु हमें शिक्षा व्यवस्था के वितरण के सम्बन्ध में अधोलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देना चाहिए।

- प्रत्येक भारतीय को न्यूनतम स्तर की जो गुणवत्तापूर्ण भी हो शिक्षा प्राप्त होनी चाहिए।
- शैक्षिक अवसरों के वितरण में, छात्रों की नैसर्गिक योग्यताओं और क्षमताओं के विकास को मुख्य मानदण्ड मानना चाहिए।
- समान विद्यालयीय प्रणाली के स्थान पर भारत में समीपवर्ती विद्यालयीय व्यवस्था होनी चाहिए और समान पाठ्यक्रम के स्थान पर आवश्यकता एवं प्रासंगिकता आधारित पाठ्यक्रम होना चाहिए जो अधिगमकर्ताओं में दक्षताओं का अधिकाधिक विकास कर सके।
- यदि छात्र शिक्षा पर होने वाले व्यय का वहन नहीं कर पाते तो उन्हें छात्रवृत्ति या ऋण के रूप में छात्रवृत्ति के द्वारा शैक्षिक अवसरों को उपलब्ध कराने में सहायता प्रदान करनी चाहिए।
- शैक्षिक अवसरों की उपलब्धता के साथ-साथ शैक्षिक योग्यता को उपयुक्त व्यवसाय या जीवन में उपयुक्त स्थान प्राप्त करने के साधन के रूप में अंगीकृत करना होगा।

चिन्तन हेतु

1. मानव निर्माण शिक्षा का सम्बन्ध अधिगमकर्त्ता के विकास के विभिन्न आयामों से किस प्रकार सम्बन्धित है– चरित्र, बुद्धि/व्यक्तित्व?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2. शिक्षा के द्वारा शांति और सौहार्द को समुन्नत बनाने के लिए क्या विशिष्ट प्रक्रिया होनी चाहिए?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3. अपनी शिक्षा प्रणाली के द्वारा हम किस प्रकार समानता और उत्कृष्टता के उद्देश्यों को जोड़ सकते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

पठन एवं मनन हेतु
(स्वामी विवेकानन्द द्वारा उद्धृत शिक्षाप्रद कथा)

सिंह शावक तथा भेड़ों के सान्निध्य की व्यथा

एक गभर्वती सिंहनी अपना शिकार ढूंढने निकली; भेड़ों के एक झुंड को देख उसने उन पर छलांग लगा दी, अपने इस प्रयास में उसकी मुत्यु हो गई मगर इससे पहले उसने एक शावक को जन्म दिया। इस शावक की देख भाल भेड़ों ने की, वह इन्हीं भेड़ों के साथ पलने लगा और घास फूस ही उसका भोजन बन गया। वह भेड़ों की भाँति ही मिमियाना भी सीख गया। समय आने पर वह तरूण हुआ, परन्तु वह अपने आप को सिंह न समझ एक भेड़ ही समझता रहा।

एक सिंह शिकार की तलाश में उधर आया, और भेड़ों के झुंड में एक शेर को देख आश्चर्य चकित रह गया, जो भय से उन भेड़ों के संग भाग रहा था। तब उस शेर ने उसके समीप जा यह बताने की चेष्टा की कि वह भेड़ न होकर एक शेर है। परन्तु वह बेचारा तो भय से भागता ही गया। किसी अन्य दिन शेर को वह भेड-शेर सोता हुआ मिला। तब वह उसके समीप जाकर बोला, "तुम तो शेर हो।" उसके उत्तर में वह मिमयाते हुए बोला, "नहीं मैं भेड़ हूँ।" शेर उसे घसीटते हुए एक तालाब तक ले गया और बोला, "इसमें अपनी तथा मेरी परछाइयों को देखो" तब जाकर उसे अपने शेर होने पर विश्वास हुआ। उसकी मिमियाहट वहीं समाप्त हो गई और वह पहली बार एक सिंह की भाँति दहाड़ उठा।

मेरे मित्रों, तुम भी शेर हो, तुम्हे यह मिमियाना शोभा नहीं देता, तुम तो निर्मल अजर अमर आत्मा हो। तुम जन्म तथा मृत्यु दोनों से परे हो, तुम्हारे अन्दर कोई रोग या दुर्बलता नहीं है। तुम तो उस अनंत आकाश की तरह हो, जहां भाँति-भाँति के रंगीन बादल आकर थोड़ी देर बाद चले जाते है; परन्तु आकाश वही अनन्त, लीनवर्णीय ही बना रहता है।

अभ्यास हेतु

1. कौशल विकास कार्यक्रम के माध्यम से छात्राध्यापकों के दक्षता विकास की योजना के सम्बन्ध में किन्हीं 5 केन्द्रिक शिक्षण कौशलों का चयन कर लिखें।

2. सेवापूर्व बी0एड0 प्रशिक्षार्थियों के लिए विचारावेश प्रक्रिया आधारित सत्रों का निम्नलिखित के सन्दर्भ में संचालन करें:

   - चरित्र विकास की क्रियाओं एवं सकारात्मक दृष्टि विकास के सन्दर्भ में
   - व्यक्तित्व निर्माण की योजनाएं

3. बी0एड0 तथा एम0एड0 के प्रशिक्षुओं के लिए निम्नांकित में से किसी एक शीर्षक पर आधारित वाद-विवाद सत्र का संचालन करें:

   विषय वस्तु **I**: 'क्या हम एक साथ समान और श्रेष्ठ हो सकते हैं ?'
   विषय वस्तु **II**: 'सामाजिक शान्ति के लिए विविधता की सहिष्णुता पर्याप्त नहीं है।'

अध्ययन एवं परामर्श हेतु

1. स्वामी विवेकानन्द : *ज्ञानयोग,* श्रीरामकृष्ण-शिवानन्द-स्मृति ग्रन्थमाला (पुष्प 41), रामकृष्ण मठ, नागपुर, 2007.
2. स्वामी विवेकानन्द : *वेदान्त,* श्रीरामकृष्ण-शिवानन्द-स्मृति ग्रन्थमाला (पुष्प 67), रामकृष्ण मठ, नागपुर, 2007.
3. स्वामी विवेकानन्द : *संचयन,* श्रीरामकृष्ण-शिवानन्द-स्मृति ग्रन्थमाला (पुष्प 64), रामकृष्ण मठ, नागपुर, 2010.
4. स्वामी विवेकानन्द : 'शिक्षा का आदर्श' श्री रामकृष्ण-शिवानन्द-स्मृति ग्रन्थमाला (पुष्प 185) रामकृष्ण मठ, नागपुर, 2013.
5. स्वामी विवेकानन्द : 'पत्रावली' श्री रामकृष्ण-शिवानन्द-स्मृति ग्रन्थमाला (पुष्प 34) रामकृष्ण मठ, नागपुर, 2014.
6. स्वामी विवेकानन्द सार्धशती समारोह शृंखला : विश्वजीत पुस्तक माला (12) स्वामी विवेकानन्द सार्धशती समारोह समिति, नई दिल्ली, 2013.
7. स्वामी विवेकानन्द : (संक्षिप्त जीवनी) अद्वैत आश्रम, कोलकाता, 2013.

8. T.S. Avinashilingam, *Education: Compiled from the Speeches and Writings of Swami Vivekananda*, Sri Ramkrishna Math, Madras, 2014.
9. Swami Vivekananda, *Realisation and Its Methods*, Advaita Ashram, Culcatta, 2007.
10. Swami Budhananda, *Can One Be Scientific and Yet Spiritual?*, Advaita Ashram, Culcatta, 2005.
11. *Swami Vivekananda*, Advaita Ashram, Culcatta, 1997.
12. T.G.K. Murthy, *Swami Vivekananda – An Intuitive Scientist*, Sri Ramkrishna Math, Chennai, 2012.

एकाग्रता : ज्ञान प्राप्ति का एकमात्र उपाय

"शिष्यों की आवश्यकता के अनुसार उपदेशों (शिक्षण) में बदलाव लाना आवश्यक है। पिछले जन्मों के फलस्वरूप संस्कार गठित हुए हैं और इस प्रकार शिष्य की प्रवृति के अनुसार उसे शिक्षित किया जाय। जो जहाँ पर है उसे वहीं से आगे बढ़ाया जाय। ज्ञान प्राप्त करने का एकमात्र उपाय है एकग्रता।"

मॉड्यूल-3

पाठ्यक्रम और शिक्षण पद्धतियां : स्वामी विवेकानन्द का परिप्रेक्ष्य

क्या पढ़ाया जाना चाहिए, यह प्रश्न एक अन्य गम्भीर प्रश्न से सम्बन्धित है और वह यह है कि वे कौन से उद्देश्य हैं जो शिक्षा द्वारा प्राप्त होने योग्य हैं- क्षमताओं एवं मूल्यों के बारे में वह दृष्टि जो प्रत्येक व्यक्ति के पास होनी चाहिए। यह केवल एक उद्देश्य नहीं अपितु उद्देश्यों का एक पुंज है। इसलिए अन्तर्वस्तु का चयन इस प्रकार हो कि वह सम्पूर्ण उद्देश्य पुंज तथा साथ ही समाज के लिए उसकी सामाजिक-राजनैतिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि के लिए न्याय संगत हो तथा व्यापक एवं संतुलित हो। पाठ्यक्रम के तहत ऐसे अनुभव प्रावधानित हों जो उत्तरोत्तर रूप में क्षमताओं को सवंर्धित कर सकें यथा तर्कपूर्ण चिन्तन की क्षमता, इस दुनिया को सौन्दर्यबोध कराने वाले विषयों के माध्यम से समझने, दूसरों के प्रति संवेदनशील होने तथा आर्थिक प्रगति के लिए कार्य एवं प्रतिभाग कर सकें। इस परिप्रेक्ष्य में पाठ्यक्रम क्षमता विकास की एक योजना है जो शैक्षिक उद्देश्यों को प्राप्त करने में मदद करता है और शैक्षणिक पद्धतियां उनके अनुरूप अनुभवों को सृजित करना सुनिश्चित करती हैं। स्वामी जी का विचार है– "शिक्षा व्यक्ति में अन्तर्निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति है।" यह मुख्य मुद्दा है कि इस स्वीकृत उद्देश्य को कैसे प्राप्त किया जाय। यह मॉड्यूल प्रत्यक्षतः उन मुद्दों एवं चिन्ताओं को मुखर करने से सम्बन्धित है जो नवीन सन्दर्भों में प्रासंगिक हैं। समीक्षात्मक विमर्श हेतु इसमें कई सूत्र प्रस्तुत हैं जो स्वामी जी की शिक्षा एवं शिक्षा की क्रियाविधि के बारे में व्याख्यायित विचारों के अनुरूप हैं।

संपादक

पाठ्यक्रम और शिक्षण पद्धतियाँ : स्वामी विवेकानन्द का परिप्रेक्ष्य

1. पाठ्यक्रम अभिकल्प उपागम

1.1 परम्परागत उपागम में शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर पाठ्यवस्तु का चयन विवादास्पद एवं प्रतिस्पर्धात्मक रहा है। विशिष्ट अन्तर्वस्तु के चयन में निश्चित मूल्यों, शैक्षिक उद्देश्यों एवं विशिष्ट वैचारिकी का अनुसरण निहित होता है। माध्यमिक शिक्षा के आगे वाली शिक्षा-व्यवस्थाओं में किसी विषय में पढ़ाये जाने वाला सूचनाओं का परास ही इसका शैक्षिक-परिक्षेत्र बन जाता है। इस प्रकार पाठ्यक्रम को तथ्यात्मक ज्ञान के रूप में अभिकल्पित करने के प्रति विशेष दबाव रहता है। यह अभिकल्पन विद्यार्थियों के लाभ को न दृष्टिगत रखकर बल्कि वे जो इसे पढ़ायेंगे या क्रियान्वित करेंगे उनकी दृष्टि से प्रायः किया जाता है।

1.2 इस प्रकार के दबाव में शैक्षणिक ज्ञान का वर्गीकरण स्पष्ट, कठोर तथा असमावेशी बन जाता है। परिणामस्वरूप एक पाठ्यक्रम के भीतर भी विद्यार्थियों को जो जानकारी मिलती है, वह पृथक्-पृथक् टुकड़ों के समूह रूप में होती है। वे अपने विषय के प्रति ही निष्ठा विकसित कर पाते हैं तथा अन्य विषयों से सम्बन्ध जोड़ने अर्थात् अन्तःअनुशासनात्मक सोच के प्रति प्रोत्साहित नहीं हो पाते।

1.3 पारम्परिक विषयों में सामान्यतया ऐसा प्रतीत होता है कि इसे पढ़ाने वाले के पास अकादमिक ज्ञान उसकी सम्पदा बन जाती है। उच्च मूल्य युक्त ज्ञान और शोध पद्धतियों की पहुँच स्नातकोत्तर एवम् शोध विद्यार्थियों तक प्रतिबन्धित होती है। ज्ञान का स्तरीकरण स्थापित हो जाता है। इससे एक अधिक्रमिकता निर्मित हो जाती है। इस अधिक्रम के सहारे जो ज्ञान प्राप्त करते हैं तथा आगे बढ़ते हैं उनके लिए ज्ञान तक पहुँच एक प्रतिष्ठा सूचक उपलब्धि बन जाती है।

1.4 इस प्रकार विषयों की सीमा रेखाएँ उनसे जुड़े लोगों की श्रेणीबद्ध संगठनात्मक संरचना के माध्यम से समर्थित होती हैं तथा नीचे के स्तरों पर अध्यापकों द्वारा समवर्ती सम्प्रेषण शायद ही हो पाता है। लेकिन विभागाध्यक्षों के स्तर पर एक गहरा समवर्ती कार्यपरक सम्बन्ध प्रायः परिलक्षित होता है।

1.5 इस दृष्टि से परम्परागत पाठ्यक्रमों में शैक्षिक ज्ञान के अनुभागों एवं सीमा रेखाओं को प्रभावित करने वाले पाँच अलग-अलग कारक हैं, जिन पर अध्यापक को ध्यान देना चाहिए।

- *सामान्य रूचियां:* अध्यापकों और शोधकर्ताओं की विशिष्ट रूचियां हो सकती हैं। इसमें अनुसंधान विधियां और निश्चित सूचनाओं में रूचियां अथवा इनका प्रयोग सम्मिलित हो सकता है।

- *संस्थात्मक कारक:* इसमें विषय-आधारित अकादमिक विभाग तथा उसके परिणामस्वरूप विषय का अफसरशाहीकरण, प्रशासनिक सुविधा, अध्यापकों की वृत्तिक संरचना जहाँ यह विशिष्ट विशेषज्ञ के सन्दर्भ में परिभाषित होता है। छोटे सामाजिक समूहों की आवश्यकताएं जिसे पहचाना जाता है और ज्ञानखण्ड का निर्माण होना जब समय सारिणी में विषय को उपविभाजित किया जाता है आदि सम्मिलित हैं।

- *प्रासंगिक समागम:* बहुधा अध्ययन में ज्ञान के एक आयाम पर केन्द्रण होता है जिससे दूसरे विषयों का परिहार हो जाता है। जब किसी विषय में गहनता से अध्ययन किया जाता जाता है तो ध्यान आवश्यक रूप से ज्ञान के अप्रासंगिक पक्ष से अलग हो जाता है। इसके विपरीत, ज्ञान के समान अंश निश्चित हो जाने पर उसकी सीमा रेखाएँ सामान्य प्रयोग के आधार पर तय हो जाती हैं। इस प्रकार ज्ञान के विशिष्ट क्षेत्र विकसित होते हैं।

- *व्यावसायिक वर्गीकरण:* व्यावसायिक संगठन भी ज्ञान की व्यवस्था को प्रभावित करते हैं। यह कार्य वे प्रायः मूल्यांकन हेतु ज्ञान को उपवर्गों में बाँटकर तथा व्यावसायिक भूमिकाओं का निर्धारण करते समय विद्यार्थियों की समझ एवं अभीप्साओं को वर्गीकरण की परिधि में लाकर करते हैं।

- *एकीकरण की अवधारणाएँ:* ज्ञान के कतिपय अनुक्षेत्रों में एक केन्द्रवर्ती एवं एकीकरण की अवधारणा के आधार पर भेद किया जा सकता है।

1.6 इस प्रकार ज्ञान के अनुक्षेत्रों में पाई जाने वाली अस्पष्टता अध्यापकों एवं परीक्षकों को अपनी प्रयुक्त विधियों एवं सामान्य उपागमों के चुनने की आजादी देती है। अन्य उपागमों की तुलना में यह अपेक्षाकृत कम रूप में स्पष्ट होने के कारण कम सार्वजनिक हो पाती है जिससे अध्यापक की प्रभाविता निरीक्षण के दायरे में कम हो जाती है। अध्यापक प्रायः भ्रमवश ऐसा सोच सकते हैं कि वे ऐसी स्थिति में अधिकांश उद्देश्यों को प्राप्त

कर सकते हैं, किन्तु विषय को व्यापक बनाने के आग्रह से वे केवल सूचना स्तर पर ही सीमित होकर अपने शैक्षणिक प्रतिपादन को सतही बना देते हैं। ज्ञान का विस्फोट विषय-वस्तु के सतही प्रतिपादन एवं रटन्त पर आधारित पाठ्यक्रम के विकास को बढ़ावा देता है। पुनश्च, पाठ्यक्रम विद्यार्थी को यह नहीं बता पाता कि उसके पूरा हो जाने पर उसे क्या प्राप्त करना है, फिर भी इसके लिए उन्हे कुछ करना तो है ही। इस दृष्टि से सम्पूर्ण पाठ्यक्रम शीर्षकों की एक नीरस सूचीमात्र बन जाता है जिसका विद्यार्थी के लिए कोई विशेष प्रयोजन नहीं होता।

1.7 यही कारण है कि परम्परागत उपागम अभी भी सामान्य रूप से प्रयुक्त होता है।

(अ) विषय-केन्द्रित पाठ्यक्रम

1.8 परम्परागत पाठ्यक्रम और संगठित ज्ञान आधारित पाठ्यक्रम की आलोचना बहुत समय से होती रही है। क्योंकि वे उस प्रक्रिया को नहीं सिखाते थे जिससे विषय ज्ञान का अन्वेषण किया जा सके, उसे सम्प्रेषित किया जा सके और उसे व्यवहार में लाया जा सके।

1.9 विषयों के अधिगम से सम्बन्धित मानसिक प्रक्रियाओं पर दिया जाने वाला आज के सन्दर्भ में बल पूर्ववर्ती धारणाओं जिनमें यह माना जाता था कि उच्चस्तरीय दक्षताओं के सीखने से पहले निम्नस्तरीय दक्षताओं का सीखना आवश्यक है, से भिन्न है।

1.10 समस्या समाधान संज्ञानात्मक क्रियाकलाप का सर्वोच्च मंजिल है। इस प्रक्रिया के द्वारा यह देखा जा सकता है कि विद्यार्थी निष्क्रिय अभिग्राही बनने की अपेक्षा ज्ञान के प्रति क्रियाशीलता के साथ जुड़ता है।

(ब) विद्यार्थी-केन्द्रित पाठ्यक्रम

1.11 अधिगम की विषय-वस्तु, अनुक्रम तथा प्रक्रिया को वैयक्तिक स्वरूप देने के प्रयासों के फलस्वरूप विद्यार्थी-केन्द्रित पाठ्यक्रम की अवधारणा विकसित हुई है। ऐसा करने से पाठ्यक्रम की रचना में प्रयुक्त विधियाँ एवं मान्यताएँ सुस्पष्ट हो जाती हैं तथा वे पाठ्यक्रम का हिस्सा बन जाती हैं। इस दृष्टि से पाठ्यक्रम एक ऐसा उपकरण है जो अध्यापकों द्वारा विद्यार्थियों के लिए अभिकल्पित किया गया है, न कि विद्यार्थियों के सहयोग द्वारा।

1.12 पाठ्यक्रम अभिकल्पन हेतु अनेक प्रयास किए गए हैं जो विषय-केन्द्रित होने की अपेक्षा विद्यार्थी-केन्द्रित अधिक हैं। कतिपय मामलों में विद्यार्थियों

के अध्ययन कार्यक्रम को उनकी रूचि एवं आवश्यकतानुसार एक सतर्क निर्देशन के आधार पर संगठित करने अपेक्षा की गयी है।

1.13 एक अन्य उपागम के तहत विषय-वस्तु अथवा अधिगम विधि पर जोर न देकर मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं के विकास पर ही विशेष ध्यान दिया जाता है। ऐसी व्यवस्थाओं में केवल संज्ञानात्मक कौशलों यथा सृजनात्मकता, मौलिकता, समस्या-समाधान, सम्प्रेषण, निर्णय लेना आदि के विकास को ही प्रमुख ध्येय न मानकर भावात्मक क्षमताओं यथा मूल्यन, देख-रेख, सहयोग, प्रतिबद्धता तथा व्यक्तिगत सम्बन्ध बनाने आदि के प्रति भी विशेष आग्रह होता है।

1.14 पाठ्यक्रम का परिप्रेक्ष्य उन लोगों की सोच को दर्शाता है, जो इसका अभिकल्पन करते हैं। अतः शैक्षिक पाठ्यक्रम के तथाकथित 'तथ्य' पूर्णतः पूर्वाग्रह रहित नहीं हो पाते। अन्तःअनुशासनपरक पाठ्यक्रमों के लिए इसका महत्वपूर्ण निहितार्थ है।

1.15 अस्तु, ऐसे पाठ्यक्रम की संरचना की आवश्यकता है जो विद्यार्थियों की व्यक्तिगत एवं विशेष आवश्यकताओं के अनुसार भिन्नता प्रदर्शित करें। वह पद्धति जिसमें विद्यार्थी को अपनी इच्छानुसार कक्षाओं के चयन करने की आजादी हो, मध्ययुगीन विश्वविद्यालयों का स्मरण कराती है। इस प्रकार अध्यापकों द्वारा एक स्थिर एवं स्थायी पाठ्क्रम बनाने की अवधारणा को संशोधित करना होगा। उस स्थिति में जबकि प्रत्येक विद्यार्थी के लिए अलग-अलग पाठ्यक्रम होगा, अधिगम विधि में प्रयुक्त शैली महत्वपूर्ण हो जाती है तथा यह बुनियादी तौर पर शिक्षण अधिगम की परिस्थितियों में विषयवस्तु एवं प्रक्रिया के मुद्दे से सम्बन्धित है जिसके बारे में आगे के अनुभाग में चर्चा की गई है।

2. अन्तर्वस्तु और प्रक्रिया

2.1 प्रारम्भ में ही इस बात का उल्लेख करना उचित होगा कि विषयवस्तु एवं क्रियान्वयन-प्रक्रिया पर अध्यापक शिक्षा में विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। विषयवस्तु एवं उसके अधिग्रहण की प्रक्रिया में ये अवश्य ही एक महत्वपूर्ण कड़ी हैं। इसका श्रेय रचनावादी उपागमों को दिया जाता है। रचनावादी विषयवस्तु सम्बन्धी ज्ञान के बारे में आधारभूत अवबोध को चुनौती देता है। साथ ही, यह अध्यापक के लिए अधिक सशक्त शिक्षण विधियों तथा छात्रों द्वारा विकसित किये जाने वाले अवबोध के बारे में महत्वपूर्ण अन्तर्दृष्टि प्रदान करता है, ऐसा शोध साक्ष्यों से भी प्रकाश में आया है।

2.2 अध्यापक शिक्षा एक प्रवर्धक प्रभाव लाती है। अध्यापक शिक्षा में जब ऐसे प्रतिमानों का प्रयोग किया जाता है जिनमें विषयवस्तु एवं प्रक्रिया को ज्ञान का अविछिन्न पक्ष माना जाता है तो विषय के बारे में सूझ-बूझ गहन बनती है तथा छात्राध्यापक ऐसी कुशलताओं एवं परिप्रेक्ष्यों को अर्जित कर लेते हैं जिनसे शिक्षण प्रक्रिया सार्थक एवं प्रभावी रूप ग्रहण कर लेती है। रचनावादी उपागम यह बताता है कि विषयवस्तु एवं प्रक्रिया कोई दो अलग युग्म नहीं है।

2.3 हम उस दुनिया में रह रहे हैं, जिनमें सूचनाएँ तेज रफ्तार से बढ़ रही है तथा वर्तमान जानकारी को इतनी सहजता से चुनौती प्राप्त हो रही है कि हम अपने बच्चों को सर्वोच्च प्रकार की शिक्षा तभी सुनिश्चित कर पायेंगे जब हम उन्हें यह सिखायें कि कैसे सीखना है। अब वे सूचनाओं को रटकर ही नहीं काम चला सकते। सूचनाओं के जानने से कहीं अधिक आवश्यकता है उन्हें किस दृष्टिकोण से देखा जाए तथा उनका अनुप्रयोग कैसे किया जाए। यही जीवनपर्यन्त अधिगमकर्त्ता के लिए वास्तविक कौशल है।

2.4 उपर्युक्त प्रतिपादन, जो कथ्य एवं प्रक्रिया के बारे में प्रस्तुत किया गया है स्वामी जी के शैक्षिक दर्शन का महत्वपूर्ण सिद्धान्त प्रतिबिम्बित करता है तथा इक्कीसवीं सदी के परिप्रेक्ष्य में प्रत्यक्ष निहितार्थ रखता है।

3. शैक्षिक विधियाँ – प्रत्यक्ष और परोक्ष

3.1 प्रत्यक्ष अनुदेशन शिक्षण का एक सामान्य रूप से प्रयुक्त एवं जाना-पहचाना तरीका है। इसके अन्तर्गत अधिगम का दायित्व विद्यार्थी की अपेक्षा अध्यापक के कंधे पर अधिक होता है। वह अध्यापक जो इस शिक्षण की विधि का प्रयोग करता है वह ऐसे वाक्यों से अपनी प्रस्तुति प्रारम्भ करता है– "कृपया अपनी पुस्तक का पृष्ठ 63 खोलिए"।

3.2 एक पुरानी उक्ति है जिसमें यह कहा जाता है– "आप मुझे बतायें और मैं भूल जाऊँगा, आप मुझे दिखायें मैं याद रखूँगा, आप मुझे कार्य में लगा दें और मैं समझ जाऊँगा"। अवधारणाएँ, पृच्छा एवं समस्या समाधान ये परोक्ष अनुदेशन के भिन्न-भिन्न प्रकार हैं। इनसे अधिगमकर्त्ता ज्ञान की रचना करते समय प्रश्नों एवं मुद्दों के समाधान ढूंढ़ने की ओर अग्रसर हो जाते हैं। इस प्रकार परोक्ष अनुदेशन शिक्षण एवं अधिगम के प्रति एक ऐसा उपागम है जिसमें (i)–पृच्छा एक प्रक्रिया होती है (ii)–विषयवस्तु का स्वरूप सम्प्रत्ययों के रूप में होता है, तथा (iii)–सन्दर्भ जिसमें शिक्षण-अधिगम का कार्य जो हो रहा है वह समस्या आधारित होता है।

❖ प्रत्यक्ष एवं परोक्ष अनुदेशन की तुलना

3.3 परोक्ष अनुदेशन, शिक्षण अधिगम का वह उपागम है जिसके अन्तर्गत सम्प्रत्ययों, स्वरूपों एवं अमूर्तताओं के बिन्दुओं को अवधारणात्मक अधिगम, पृच्छा एवं समस्या समाधान पर बल देने वाली रणनीतियों से जोड़ा जाता है।

3.4 परोक्ष अनुदेशन के तहत अधिगमकर्त्ता उद्दीपकों के रूपान्तरण के माध्यम से सूचनाएं अर्जित करता है तथा इस रूपान्तरण की प्रक्रिया को वह एक ऐसी अनुक्रिया का स्वरूप दे देता है जिसमें उद्दीपक सामग्री पुनःव्यवस्थित एवं विस्तारित हो जाती है।

❖ समस्या समाधान, पृच्छा और संकल्पना संप्राप्ति युक्तियों के दृष्टान्त

3.5 सामान्यीकरण एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा अधिगमकर्ता समरूप ढंग से विभिन्न उद्दीपकों के प्रति अनुक्रिया करता है जिससे दृष्टान्तों के उस परास में वृद्धि होती है जो विशेष तथ्यों, नियमों और अनुक्रमों पर प्रयुक्त होता है।

3.6 विभेदीकरण एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा अधिगमकर्ता स्वीकार करने लायक उदाहरणों को चयनात्मक ढंग से अनुसीमित कर लेता है। इस प्रक्रिया में वह ऐसे उदाहरणों का परित्याग कर देता है जो सन्दर्भित सम्प्रत्यय के सदृश हैं, किन्तु महत्वपूर्ण आयामों की दृष्टि से भिन्नता रखते हैं।

3.7 सामान्यीकरण तथा विभेदीकरण की प्रक्रियाएं संयुक्त रूप में प्रयुक्त होकर स्पष्टतः भिन्न प्रतीत होने वाले उद्दीपकों को उसी संवर्ग में रख देती हैं तथा यहाँ सम्प्रत्ययों की महत्वपूर्ण विशेषताएं चुम्बकीय रूप में काम करती हैं जिससे सम्प्रत्यय के सभी उदाहरण एक साथ वर्गीकृत हो जाते हैं तथा अधिगमकर्त्ता से उन्हें रटने या अलग से देखने की अपेक्षा नहीं होती है।

3.8 परोक्ष विधि में प्रयुक्त अनुदेशनात्मक युक्तियों के कतिपय उदाहरण निम्नवत् हैं –

(i) अग्रिम व्यवस्थापकों का अनुप्रयोग

(ii) सम्प्रत्ययात्मक गति–आगमन और निगमन

(iii) सकारात्मक एवं नकारात्मक उदाहरणों का अनुप्रयोग

(iv) अन्वेषण एवं खोज के निर्देशन के लिए प्रश्नों का अनुप्रयोग

(v) विद्यार्थियों के विचारों का अनुप्रयोग

(vi) विद्यार्थियों द्वारा स्वमूल्यांकन

(vii) सामूहिक परिचर्चा का अनुप्रयोग

❖ अन्तर्वस्तु संगठन

3.9 एक अग्रिम व्यवस्था अधिगमकर्ता को अध्यापक की अपनी प्रस्तुतियों से सम्बन्धित सम्प्रत्ययात्मक पूर्वदृष्टि प्रदान करती है तथा विषयवस्तु के धारण करने एवं उसके भावी उपयोग को दृष्टिगत रखकर उसके संचयन, नामकरण एवं संग्रहण में मदद देती है।

3.10 अन्तर्वस्तु को संगठित करने एवं अग्रिम-व्यवस्थापकों की रचना हेतु प्रायः तीन उपागम प्रयुक्त होते हैं– सम्प्रत्यय अधिगम, पृच्छा और समस्या-समाधान उपागम।

❖ सम्प्रत्ययात्मक गति : आगमन और निगमन

3.11 आगमन की शुरूआत सीमित प्रदत्तों के विशिष्ट प्रेक्षण से होती है और अन्त एक अपेक्षाकृत व्यापक सन्दर्भों के बारे में सामान्यीकरण से होता है।

3.12 निगमन, सिद्धान्तों या सामान्यीकरण से प्रारम्भ होता है तथा विशिष्ट सन्दर्भों में उनके अनुप्रयोग से इसका अन्त होता है।

❖ सकारात्मक दृष्टान्तों एवं नकारात्मक दृष्टान्तों का अनुप्रयोग

3.13 सही सामान्यीकरण के लिए अपेक्षित आवश्यक एवं अनावश्यक विशेषताओं को परिभाषित करने में सकारात्मक एवं नकारात्मक उदाहरण सहायक होते हैं।

3.14 सकारात्मक एवं नकारात्मक उदाहरणों के अनुप्रयोग में निम्नांकित सोपान सम्मिलित हैं:

(i) एक से अधिक उदाहरण देना,

(ii) सम्प्रत्यय को परिभाषित करने में ऐसे उदाहरणों का प्रयोग जो परिभाषित किए जाने वाले सम्प्रत्यय के लिए असंगत हैं,

(iii) ऐसे नकारात्मक उदाहरण प्रस्तुत करना जो सम्प्रत्यय के संगत पक्षों को शामिल करते हैं, और

(iv) यह बताना कि जो नकारात्मक उदाहरण हैं, उनके कुछ अंश सकारात्मक उदाहरण की कतिपय विशेषताओं जैसे क्यों प्रतीत हो रहे हैं।

❖ अन्वेषण एवं खोज के निर्देशन में प्रश्नों का प्रयोग

3.15 परोक्ष अनुदेशन में प्रश्नों की भूमिका मुख्य रूप से इस प्रकार होती है: समस्या के नवीन आयामों को ढूँढ़ निकालने में विद्यार्थियों का मार्गदर्शन करना अथवा किसी असमंजस की स्थिति का नए प्रकार से समाधान प्राप्त कर लेना।

3.16 परोक्ष निर्देशन के मध्य प्रश्नों के अनुप्रयोग में निम्नलिखित का समावेश होता है:

(i) पुनः केन्द्रण,

(ii) विरोधाभासिक तत्वों जिनका हल प्राप्त करना है, को प्रस्तुत करना,

(iii) सम्यक् एवं गूढ़ अनुक्रिया के लिए तलाश,

(iv) नए अनुक्षेत्रों की ओर ले जाना, और

(v) कक्षा को दायित्व प्रदान करना।

❖ अधिगमकर्त्ता के अनुभव तथा उनके विचारों का उपयोग

3.17 विद्यार्थियों के विचारों का इस्तेमाल उनकी रूचि सवंर्धित करने, उनकी समस्याओं के आस-पास विषय-वस्तु के व्यवस्थित करने, प्रत्येक विद्यार्थी के अनुरूप प्रतिपुष्टि प्रदान करने तथा विषय के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण को बढ़ावा देने के लिए किया जा सकता है। चूँकि ये लक्ष्य अपने आप में अन्तिम साध्य नहीं हैं, समस्या समाधान, पृच्छा एवं सम्प्रत्यय अधिगम को प्रोत्साहित करने के प्रयोजन से विचारों के अनुप्रयोग हेतु एक योजना एवं संरचना होनी चाहिए।

3.18 विद्यार्थी-केन्द्रित अधिगम जिसे कभी-कभी अनिर्देशित खोज अधिगम के नाम से भी पुकारा जाता है, विद्यार्थी को अधिगम अनुभव के स्वरूप और सार दोनों के चयन करने की अनुमति देता है। यह स्वतंत्र रूप में किए गए प्रयोग, शोध परियोजना और विज्ञान मेला परियोजना एवं प्रदर्शनों के सन्दर्भ में उपयुक्त होता है। फिर भी, अन्तर्वस्तु की पूर्व व्यवस्था सदैव यह निश्चित करने के लिए आवश्यक है कि विद्यार्थी के विचारों का प्रयोग पाठ्यक्रम के उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक हो।

❖ विद्यार्थी स्वमूल्यांकन

3.19 परोक्ष निर्देशन के दौरान विद्यार्थी अपनी अनुक्रिया का स्वमूल्यांकन करता है। विद्यार्थी बहुत आसानी से अपना मूल्यांकन विद्यार्थी से विद्यार्थी, विद्यार्थी से अध्यापक विनिमय के सन्दर्भ में कर सकता है जिससे आप विद्यार्थी को टिप्पणी करने के लिए प्रोत्साहित कर सकते हैं और उसे अपनी तथा दूसरों की अनुक्रियाओं की स्वीकार्यता परखने में मदद पहुँचा सकते हैं।

❖ समूह परिचर्चा का अनुप्रयोग

3.20 समूह परिचर्चा में छात्रों के मध्य विचारों का आदान-प्रदान होता है जो क्रमशः अधिकाधिक विद्यार्थियों को अन्तर्क्रिया के आधार पर सक्रिय बना देता है। इस प्रकार के आदान-प्रदान में अध्यापक का हस्तक्षेप यदा कदा ही होता है तथा उसका उद्देश्य केवल सारांश प्रस्तुत करने या पुनरावलोकन तक ही सीमित होता है अथवा वह विद्यार्थियों के साथ सावधिक रूप में अन्तर्क्रिया सुनिश्चित कर सकता है जिससे वह समूह की प्रगति का मूल्यांकन कर सके एवं आवश्यकतानुसार परिचर्चा को सार्थक रूप में मोड़ सके।

3.21 परिचर्चा के लिए सर्वाधिक ऐसे शीर्षकों को सम्मिलित करना चाहिए जो निर्धारित पाठ्यपुस्तकों या अभ्यास पुस्तिकाओं द्वारा औपचारिक रूप में विहित नहीं है तथा जिसके लिए विद्यार्थियों में अधिक सीमा तक मतैक्य नहीं है।

3.22 परिचर्चा के दौरान अध्यापक के नियमन प्रकार्यों में अधोलिखित का समावेश होता है :

(i) परिचर्चा के उद्देश्य की ओर छात्रों को उन्मुख करना;

(ii) आवश्यकतानुसार नवीन अथवा अधिक यथार्थपरक सूचना प्रदान करना;

(iii) पुनरावलोकन करना, संक्षेपीकरण तथा अभिमत व्यक्त करना और तथ्यों को जोड़ना; और

(iv) परिचर्चा के उद्देश्यों के अनुसार सूचनाओं और विचारों के प्रवाह को पुनः निर्देशित करना।

3.23 अन्ततः उल्लेखनीय है कि प्रत्यक्ष एवं परोक्ष अनुदेशन की विधियों को प्रायः साथ-साथ प्रयोग में लाया जाता है। ऐसा एक ही पाठ के अन्तर्गत भी किया जा सकता है। अध्यापक को शिक्षण विधियों के इन दोनों प्रतिमानों को एकांतिक रूप में नहीं लेना चाहिए। प्रत्येक शिक्षण प्रतिमान

में तथ्यों, नियमों, अनुक्रमों, समस्या समाधान, अवधारणाओं के बारे में पूछताछ करने तथा सीखने हेतु प्रयुक्त शिक्षण में कई युक्तियों का प्रयोग अपेक्षित है जिससे वे प्रभावी एवं कुशल स्वरूप धारण कर सकें।

3.24 उपर्युक्त विवरण में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष शिक्षण विधियों के सम्बन्ध में जो विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है वे स्वामी विवेकानन्द के चिन्तन में एक सर्वांगिक परिप्रेक्ष्य से जुड़ जाती हैं, जब वे शिक्षा की एकमात्र विधि के बारे में कहते हैं।

शिक्षा की एकमात्र पद्धति

ज्ञान प्राप्त करने की एकमात्र पद्धति है, और वह है एकाग्रता। मन की एकाग्रता ही शिक्षा का मूल है। चाहे वह अति सामान्य व्यक्ति हो या उच्चतम योगी हो, सभी को ज्ञान प्राप्ति हेतु यही पद्धति अपनानी होगी...

जितनी अधिक एकाग्रता होगी उतना ही अधिक ज्ञान प्राप्त होगा...

प्रशिक्षित व्यक्ति अथवा मस्तिष्क कभी त्रुटि नहीं करते...

कर्म के किसी भी क्षेत्र में सफलता इसी का परिणाम है। ललित कलाओं, संगीत आदि में महान् उपलब्धियाँ एकाग्रता का परिणाम है...

ज्ञान के सम्पदा-भण्डार में प्रवेश की एकमात्र कुंजी एकाग्रता है...

मेरे लिए शिक्षा का मूल तत्व मन की एकाग्रता है न कि तथ्यों का संकलन। यदि मुझे एक बार पुनः शिक्षा प्राप्त करना हुआ, तो मैं तथ्यों का कदापि अध्ययन न करूँगा, मैं एकाग्रता की शक्ति तथा निर्लिप्त भाव को विकसित करूँगा और तब एक उत्तम उपकरण द्वारा इच्छानुसार तथ्यों का संकलन करूँगा।

4. सूचना और सम्प्रेषण प्रौद्योगिकी (आई.सी.टी.) की भूमिका

4.1 शिक्षा में सूचना एवं सम्प्रेषण प्रौद्योगिकी हमारे समाज के उन प्रयासों में से एक है जिसके द्वारा आज के नागरिकों एवं नई पीढ़ी को गणना एवं सम्प्रेषण, 'साफ्टवेयर' तथा उनके आधार पर अनुप्रयोग तथा प्रबन्धतंत्र के बारे में महत्वपूर्ण ज्ञान एवं कौशल सिखाने हेतु प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है।

4.2 सूचना सम्प्रेषण एवं इसकी तकनीकी जटिल और द्रुतपरिवर्तनशील है और यह अनेक लोगों के लिए भ्रामक भी है। यह आधुनिक जगत में

इतना व्यापक है कि प्रत्येक के पास इसके बारे में कुछ समझ है, किन्तु यह समझ प्रायः निरंकुश रूप में भटकाने वाली भी है।

4.3 आई.सी.टी. शिक्षा के कई महत्वपूर्ण आकार-प्रकार हैं, जिनमें :

- सूचना एवं सम्प्रेषण प्रौद्योगिकी/आंकिक साक्षरताः आज प्रत्येक व्यक्ति को एक अच्छे विद्यार्थी के रूप में, कार्यकर्त्ता के रूप में या नागरिक के रूप में सूचना एवं सम्प्रेषण प्रौद्योगिकी के विषय में बुनियादी समझ विकसित करने तथा उसे उपयोगी रूप में इस्तेमाल में ला सकने की कुशलता आवश्यक है। अपने शैक्षणिक एवं वृत्तिक जीविका में सफलता तथा तकनीकी समाज में कुशल प्रतिभाग हेतु अच्छे आई. सी. टी. प्रयोगकर्त्ता बनाने के लिए लोगों को शिक्षित करना होगा।

- सूचना एवं सम्प्रेषण प्रौद्योगिकीः इसकी प्रवीणताएँ अधिकांश लोगों के लिए आज महत्वपूर्ण बनती जा रही हैं, चाहे जो भी भूमिका हो। आंकिक साक्षरता या सभी के लिए अपेक्षित सूचना एवं सम्प्रेषण की प्रौद्योगिकी से जुड़ी प्रवीणताओं के बारे में आम सहमति बन जाने पर चाहे वह किसी भी कार्य स्थल से सम्बन्धित भूमिका का निर्वाह हो, अध्यापक शिक्षा की संस्थाओं को चाहिए कि अधिगम-संवर्धन के प्रयोजन से वे सूचना एवं सम्प्रेषण की प्रौद्योगिकी की सम्भावनाओं का उपयोग करें।

- सूचना सम्प्रेषण प्रौद्योगिकी की आधारभूत संरचना एवं समर्थन देने वाली प्रयुक्त प्रौद्योगिकीः बुनियादी उपयोगकर्त्ता की प्रवीणताओं से परे हमारे समाज को ऐसे जानकार तथा सक्षम, योग्य व्यक्तियों की आवश्यकता है जो सूचना एवं सम्प्रेषण प्रौद्योगिकी के उपकरणों, 'साफ्टवेयर' तथा व्यवस्थाओं को सम्यक् ढ़ंग से प्रयोग में ला सकें तथा उनका प्रबंधन तथा रख-रखाव सुनिश्चित कर सकें। सभी महत्वपूर्ण संस्थाओं में ऐसी जानकारी रखने वाले लोग अधिसंख्य रूप में होने चाहिए जो 'कम्प्यूटर' तथा सम्प्रेषण माध्यमों, 'हार्डवेयर', 'साफ्टवेयर' तथा उनके अनुप्रयोग, 'नेटवर्क' से जुड़ी हुई व्यवस्था, 'ऑनलाईन' द्वारा सूचना का आदान–प्रदान तथा उससे सम्बन्धित व्यावसायिक प्रक्रियाओं को प्रबन्धित कर सकें।

- विशिष्ट उद्योगों तथा उद्यमों में सूचना एवं सम्प्रेषण प्रौद्योगिकी का अनुप्रयोग– आज लगभग सभी उद्योगों एवं उद्यमों के क्षेत्र में सूचना एवं सम्प्रेषण प्रौद्योगिकी का उपयोग अत्यंत महत्वपूर्ण रूप में किया जा रहा है। ऐसी अधिकांश संस्थाओं ने इसके लिए एक विशिष्ट प्रणाली विकसित कर ली है तथा बहुतों के पास विशिष्ट विधिक

एवं नियामक अपेक्षाएँ भी हैं यथाः गुणवत्ता नियंत्रण तंत्र, शोध उपकरण एवं व्यवस्थाओं का उत्पादन के साथ एकीकरण, सुरक्षा की अपेक्षाएँ तथा साफ्टवेयर के रूप में अनुप्रयोग।

- सूचना एवं सम्प्रेषण प्रौद्योगिकी आधारित स्रोत तथा विकास कार्यों से जुड़े वैज्ञानिकः सूचना एवं सम्प्रेषण प्रौद्योगिकी में सतत विस्तार एवं सुधार लाने हेतु निरन्तर दबाव पड़ रहा है। हमें ऐसे लोगों की आवश्यकता है जो सूचना एवं सम्प्रेषण प्रौद्योगिकी में निहित विज्ञान एवं प्राविधिकी को अच्छी तरह समझते हैं तथा जो इस क्षेत्र को आगे विकास की ओर ले जा सकते हैं।

❖ शिक्षक और विद्यार्थी के मध्य सम्प्रेषण

4.4 आज के सन्दर्भ में अध्यापक एवं विद्यार्थी के मध्य सम्प्रेषण– चाहे कक्षा शिक्षण की परिस्थिति हो, या सजीव परिस्थिति हो, समकालिक हो या आनलाइन हो, यह एक निश्चित समय तथा स्थान की सीमा रेखा के तहत सम्पन्न होता है। ये सीमा रेखायें विद्यालय की समय–तालिका के आधार पर निर्धारित होती हैं।

- कक्षा-अवधि को व्याख्यान अथवा प्रदर्शन के रूप में विभाजित करना (एक प्रकार का एकाकी प्रसारण); प्रत्येक विद्यार्थी से व्यक्तिगत रूप में लगातार संवाद जिसमें कक्षा के अन्य विद्यार्थियों का ध्यान हो सकता है और नहीं भी हो सकता है; तथा कक्षा के अन्य विद्यार्थियों का प्रतिभाग।

- स्कूल के भीतर तथा बाहर के समय में एक विशेष प्रकार का पृथकत्व पाया जाना जिसमें प्रत्यक्ष सम्प्रेषण आवश्यक नहीं माना जाता।

4.5 बहुत से अध्यापक आधारभूत त्रुटि यह करते हैं कि सूचना एवं सम्प्रेषण प्रौद्योगिकी का प्रयोग करते समय वे प्रायः उसे अपने समकालिक तौर तरीकों के चश्मे से देखते हैं तथा इस प्रश्न की ओर अधिक चिन्ता व्यक्त करते हैं कि इन प्रौद्योगिकी प्रविधियों का प्रयोग 'मैं जो कर रहा हूँ उनमें सुधार के लिए कितनी गुंजाइश है' न कि यह प्रश्न कि मैं सूचना एवं सम्प्रेषण प्रौद्योगिकी का उपयोग जहाँ नहीं हो रहा है वहाँ कैसे करूँ? ध्यातव्य है कि सूचना एवं सम्प्रेषण प्रौद्योगिकी की प्रविधियाँ स्वभाव से ही नवाचारी होती हैं। हमें विद्यार्थियों और अध्यापकों के लिए नए परिप्रेक्ष्य विकसित करने की दृष्टि से प्रौद्योगिकी क्षमताओं का अधिकाधिक अनुप्रयोग सुनिश्चित करना होगा।

4.6 इसके साथ ही, शिक्षण के पारम्परिक तरीकों एवं प्रतिमानों तथा अतीत के उन विचारों जिनका समूह विद्यालयों में क्रियान्वयन नहीं हो सका है किन्तु मूल्यवान थीं उनकी उपेक्षा करने में कोई बुद्धिमानी नहीं है। अस्तु, इस दृष्टि से हमें उन्हीं बातों से शुभारम्भ करना है जिन्हें हम पूर्व में करते आ रहे हैं। किन्तु हमें उन्हें नए रूप में स्वीकारना है।

4.7 वस्तुतः आगामी कल के विद्यालयों को हमें आज के विद्यालयों के माध्यम से देखना होगा।

❖ समान्तरित अधिक्रमता और परिवर्तनशील शिक्षणविधा

4.8 स्वामी विवेकानन्द के विचारों के परिप्रेक्ष्य में नई शिक्षण विधा परम्परागत रूप में प्रचलित प्राचीन अधिक्रमिता के विरूद्ध है। इसे समान्तरित अधिक्रमता का नाम दिया जाता है जिसके अन्तर्गत एक ऐसी व्यवस्था का बोध होता है जिसमें प्रत्येक कार्यकारी अंश या अभिकर्त्ता सभी से समान रूप में शासित होता है। इसका आशय यह है कि अधिगम के दौरान ये अभिकर्त्ता एक दूसरे से सम्प्रेषण या बातचीत करते हैं, तथा सम्बन्धित सूचनाओं से परिपूर्ण संदेशों का आदान–प्रदान करते हैं। इस व्यवस्था में कार्य एवं कारणों की साधारण रेखीय कड़ी नहीं होती। इसके विपरीत इनमें अधिक से अधिक परस्पर सम्बन्धित घेरे तथा फन्दे होते हैं।

❖ रचनावाद

4.9 रचनावाद इस बात पर बल देता है कि विद्यार्थी द्वारा अर्जित ज्ञान अध्यापक के माध्यम से सद्यः रूप में निर्मित उत्पाद की तरह नहीं प्राप्त होना चाहिए। जिस विशेष जानकारी की जरूरत होती है, बच्चे स्वंय सृजित कर लेते हैं न कि किसी अन्य के द्वारा क्या जानना है इसके बारे में निर्देश प्राप्त कर। जब बच्चे किसी बाह्य अथवा साझा करने लायक कार्य में लगे होते हैं जैसे : रेत का महल बनाना, पुस्तक या मशीन या 'कम्प्यूटर प्रोग्राम' तो उनके द्वारा ऐसे कार्य आनन्दपूर्वक किए जाते हैं। ऐसी क्रियाओं में अधिगम का वह प्रतिमान प्रतिबिम्बित होता है जिसमें वाह्य के अभ्यान्तरीकरण का चक्र चलता है न कि आन्तरिक का वाह्यकरण।

❖ संयोजितावाद

4.10 सहयोग पर आधारित कार्य करने का तरीका संयोजितावाद या साहचर्यवाद या ज्ञान की सम्बन्धवादिता की ओर अग्रसर होता है।

4.11 प्रयोजनबद्ध अधिगम के अन्तर्गत पूर्व में विद्यमान मानसिक तत्वों में सम्बन्ध निर्मित किया जाता है। इसमें नए मानसिक तत्व अत्यन्त सूक्ष्म

रूप में अस्तित्व में आते है जिनपर पूर्ण अभिज्ञतापूर्वक नियंत्रण नहीं हो पाता। इससे अधिगम को प्रोत्साहन देने वाली एक युक्ति विकसित होती है जिसमें अधिगम परिवेश में सम्बन्धवादिता को उन्नत कर व्यक्ति की अपेक्षा संस्कृतियों पर ध्यान दिया जाता है।

4.12 इस प्रकार का उपागम परम्परागत शिक्षण एवं अनुदेशन तथा रचनावादी एवं संयोजितावादी स्वायत्त अधिगम के मध्य पाये जाने वाले द्वन्द्व को सुलझाता है। इस रूप में, सूचना एवं सम्प्रेषण प्रौद्योगिकी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। स्वामी जी की दृष्टि में जानने का अर्थ है, अव्यक्त को व्यक्त करना। ज्ञान मनुष्य में निहित होता है, कोई ज्ञान बाहर से नहीं आता। यह अन्तर्वर्ती होता है तथा इसे प्रभावी रूप में फलीभूत किया जा सकता है। वे इस बात को दृढ़ता से कहा करते थे कि एक मनुष्य जो कुछ 'सीखता है' वह अपनी आत्मा के ऊपर लगे हुए परत को हटाकर 'अन्वेषण द्वारा सीखता है'। यह आत्मा अनन्त ज्ञान की खान है। दुनिया ने जो कुछ ज्ञान प्राप्त किया है वह मस्तिष्क से ही आता है। ब्रह्माण्ड का अनन्त पुस्तकालय व्यक्ति के मस्तिष्क में ही निहित है। वाह्य जगत तो केवल एक सुझाव है, एक अवसर है जो व्यक्ति को अपने मस्तिष्क का अध्ययन करने के लिए प्रेरणा देता है।

चिन्तन हेतु

1. 'विषयवस्तु' और 'अनुभव' आधारित पांठ्यक्रम अभिकल्प उपागमों में प्रमुख अन्तर क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2. अध्यापक और अधिगमकर्त्ता की भूमिकाएँ पाठ्यक्रम के रचनावादी उपागम को स्वीकार करने में किस प्रकार पुनः विचारणीय हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3. पाठ्यक्रम में उद्देश्यों, विषयवस्तु और मूल्यांकन के मध्य किस प्रकार से समनुरूपता लायी जा सकती है ? ऐसा न होने की स्थिति में क्या समस्यायें उत्पन्न होती हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

पठन एवं मनन हेतु
(स्वामी विवेकानन्द द्वारा उद्धृत शिक्षाप्रद कथा)

सीप समान बनो

मोती की सीप के समान बनो। एक बड़ी सुन्दर भारतीय कथा है कि यदि स्वाती नक्षत्र में वर्षा की एक बूँद भी उस सीप में पड़ जाती है तो वह मोती बन जाती है। सीप यह बात जानती है, अतः वह स्वाती नक्षत्र के चमकते ही जल की सतह पर आ जाती है और उस मूल्यवान वर्षा की बूँद को पाने के लिए प्रतीक्षा करती रहती है। जैसे ही कोई बूँद मुख में प्रवेश करती है, वह सीप तुरंत अपना मुंह बन्द कर लेती है और डुबकी लगाकर समुद्र के तल पर पहुंच जाती है। वहां वह धैर्यपूर्वक बूँद को मोती का रूप दे देती है।

हम भी वैसे ही बनें। पहले सुनो, तब मनन करो, और अंत में सब दुविधा छोड़कर अपने अंतःकरण को वाह्य प्रभावों की ओर से बंद कर लो और अपने अंदर उस सत्य के पोषण में लग जाओ।

अभ्यास हेतु

1. आप जिस विद्यालय से सम्बद्ध हों, उसके अध्यापकों की सहायता से एक विमर्शी सत्र का आयोजन कर प्रचलित विद्यालयीय पाठ्यक्रम के गुणों और अवगुणों पर उन्हें (अध्यापकों) अपना विचार स्पष्ट करने हेतु निर्देशित करें।

2. कक्षा कक्ष में विद्यार्थियों की सक्रिय सहभागिता में सुधार लाने हेतु एक से दो सप्ताह की अवधि का क्रियात्मक शोध परियोजना निर्माण करें।

3. दस मिनट की अवधि का युग्मीय विमर्श सत्र इस चर्चा हेतु आयोजित करें कि विद्यार्थीगण सार्वजनिक स्थलों, जैसे कि सामुदायिक सभागार, विद्यालय व्यायामशाला, खेल का मैदान, 'बस स्टैण्ड', 'सिनेमाघर' आदि, पर स्वास्थ्यकारी सरोकारों के निर्वहन में अच्छे नागरिकता की भूमिका को किस प्रकार प्रदर्शित करते हैं?

अध्ययन एवं परामर्श हेतु

1. स्वामी विवेकानन्द, : *राजयोग,* श्रीरामकृष्ण-शिवानन्द-स्मृति ग्रन्थमाला (पुष्प 11), रामकृष्ण मठ, नागपुर, 2008.
2. स्वामी विवेकानन्द : *प्रेमयोग,* श्रीरामकृष्ण-शिवानन्द-स्मृति ग्रन्थमाला (पुष्प 12), रामकृष्ण मठ, नागपुर, 2006.
3. स्वामी विवेकानन्द : *ज्ञानयोग,* श्रीरामकृष्ण-शिवानन्द-स्मृति ग्रन्थमाला (पुष्प 41), रामकृष्ण मठ, नागपुर, 2007.
4. स्वामी विवेकानन्द : *ध्यान,* श्री रामकृष्ण-शिवानन्द-स्मृति ग्रन्थमाला (पुष्प 154), रामकृष्ण मठ, नागपुर, 2007.
5. स्वामी विवेकानन्द : 'शिक्षा का आदर्श' श्री रामकृष्ण–शिवानन्द–स्मृति ग्रन्थमाला (पुष्प 185) रामकृष्ण मठ, नागपुर, 2013.
6. स्वामी विवेकानन्द : 'ज्ञानयोग पर प्रवचन' श्री रामकृष्ण–शिवानन्द–स्मृति ग्रन्थमाला (पुष्प 68), 2013.
7. स्वामी विवेकानन्द : 'पत्रावली' श्री रामकृष्ण–शिवानन्द–स्मृति ग्रन्थमाला (पुष्प 34) रामकृष्ण मठ, नागपुर, 2014.
8. स्वामी विवेकानन्द सार्धशती समारोह शृंखला : विश्वजीत पुस्तक माला (12) स्वामी विवेकानन्द सार्धशती समारोह समिति, नई दिल्ली, 2013.
9. स्वामी विवेकानन्द : (संक्षिप्त जीवनी) अद्वैत आश्रम, कोलकाता, 2013.
10. T.S. Avinashilingam, *Education: Compiled from the Speeches and Writings of Swami Vivekananda*, Sri Ramkrishna Math, Madras, 2014

11. *Rousing Call to Hindu Nation*, compiled by Eknath Ranade, Vivekananda Kendra Prakashan, Chennai, 2013.
12. *The Complete Works of Swami Vivekananda*, Volume 1-3, Advaita Ashram, Culcatta, 2013.
13. T.G.K. Murthy, *Swami Vivekananda: An Intuitive Scientist*, Sri Ramkrishna Math, Chennai, 2012.
14. Alexy Semenow et al., *Information and Communication Technologies in Schools – A handbook for teachers*, UNESCO, 2005.
15. Donald A. Bligh et al., *Methods and Techniques in Post-Secondary Education*, UNESCO, 1980.
16. *Report of the National Knowledge Commission*, Government of India, New Delhi, 2009.

साधन को दोष रहित बनायें, साध्य स्वयमेव ठीक होगा।

"सच्चे आचार्य ही अपने शिष्य की प्रवृत्ति के अनुसार अपनी सारी शक्ति का प्रयोग कर सकते हैं। सच्ची सहानुभूति के बिना हम कभी भी सही शिक्षा नहीं दे सकते।

हम साधन को दोष रहित बनायें, साध्य स्वयमेव ठीक होगा।

मेरे जीवन की महानतम सीखों में से एक सीख है कि कार्य के साधनों पर उतना ही ध्यान देना चाहिए, जितना की साध्य पर।"

मॉड्यूल्-4

साध्य और साधन

नए ज्ञान समाज में आदेशों के यन्त्रवत् अनुपालन पर कम बल देने तथा अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्र एवं उत्तरदायी व्यवहार की अपेक्षा होती है। समृद्धि तथा कभी-कभी अस्तित्व में बने रहने के लिए भी लोगों को अपने जीवन की नई और अप्रत्याशित परिस्थितियों में जिम्मेदारीपूर्ण निर्णय लेने की आवश्यकता होती है, किन्तु इससे कहीं अधिक, उन्हें जीवन पर्यन्त सीखते रहने की भी आवश्यकता होती है। इस परिप्रेक्ष्य में आज व्यक्ति को अपनी व्यक्तिगत प्रोन्नति, सृजनात्मकता एवं खुशहाली, उपभोग एवं सम्पदा के लिए सूचना एवं सम्प्रेषण प्रौद्योगिकी के प्रभावी उपयोग के तरीके भी जानने होंगे। इस क्रम में उसे जनसंचार द्वारा उपलब्ध सूचनाओं को एक समीक्षात्मक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित करने के साथ ही उसका उत्पादक ढंग से उपयोग करने की भी नितान्त आवश्यकता है।

इन निजी आवश्यकताओं के तहत जो ज्ञान एवं प्रवीणताएँ अपेक्षित हैं उनमें से विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं– सूचनाओं की तलाश करना, उनका विश्लेषण, संश्लेषण, मूल्यांकन, निर्देशीकरण तथा उन्हें दूसरों तक प्रस्तुत करना, साथ ही द्रुत रूप में परिवर्तनशील घटनाओं के बारे में भावी कथन करने, उनके सम्बन्ध में संरचना विकसित करने तथा उनपर नियंत्रण रखने हेतु सही निर्णय ले सकने की क्षमता। ये प्रवीणताएँ सूचना एवं सम्प्रेषण के प्रौद्योगिकी से समर्थित या असमर्थित अधिगम हेतु अपरिहार्य हैं। प्रस्तुत मॉड्यूल् में शिक्षा के क्षेत्र में साध्य तथा साधन के बारे में महत्वपूर्ण बिन्दुओं का गहनता के साथ परीक्षण किया गया है, जो शिक्षक एवं विद्यार्थी के मध्य समुचित सम्बन्ध के आधार हैं। इस दृष्टि से नैतिकता का मुद्दा इस तथ्य से जुड़ा हुआ है कि अध्यापक शिक्षा से जुड़े प्रशिक्षक अपने छात्राध्यापकों को किस नजरिये से देखते हैं तथा किस सीमा तक इन सम्बन्धों के आधार पर वे व्यावसायीकरण का आधार सृजित कर पाते हैं। मॉड्यूल् में प्रभावी अध्यापक-प्रशिक्षक बनने के लिए अपेक्षित परिप्रेक्ष्य पर भी विचार किया गया है।

संपादक

साध्य और साधन

1. वैश्विक सन्दर्भ और शिक्षा के उद्देश्य

1.1 21वीं शताब्दी के लिए शिक्षा विषय पर जैक्स डेलर्स के यूनेस्को प्रतिवेदन 'लर्निंग द ट्रेज़र विदिन' में बहुत ही व्यापक तौर पर शिक्षा के लक्ष्य को प्रस्तुत किया गया है। इस प्रतिवेदन में आजीवन शिक्षा के लिए अधिगम के चार स्तम्भों की पहचान की गई है।

1.2 'ज्ञान के लिए अधिगम' या सीखने के लिए सीखना, ताकि जीवन पर्यन्त मिलने वाले शैक्षिक अवसरों का लाभ उठाया जा सके; 'करने के लिए अधिगम' जिसमें केवल व्यावसायिक कौशलों को न सीखकर व्यापक तौर पर जीवन की विभिन्न परिस्थितियों के लिए अपेक्षित व्यवहार तरीकों और समूह में कार्य करने के तरीके पर बल दिया गया है; 'साथ-साथ रहने के लिए अधिगम' तब सम्भव होगा जब हम एक दूसरे को समर्थन दें तथा परस्पर सहयोग एवं आत्मनिर्भरता की भावना को विकसित करें; और 'आत्मसिद्धि के लिए अधिगम' ताकि एक व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का बेहतर विकास कर सके तथा वह अपनी पूरी क्षमता, स्वतंत्रता तथा जिम्मेदारी के साथ निर्णय लेते हुए कार्य कर सके और सार रूप में अपनी सम्भावनाओं को सर्वाधिक अभीष्ट रूप में प्राप्त कर सके।

1.3 यहाँ ए0 पी0 जे0 अब्दुल कलाम के उस कथन की चर्चा करना उपयुक्त होगा जिसमें उन्होने बहुत बल देकर यह उजागर किया है कि प्रत्येक राष्ट्र ने अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए संघर्ष किया है। भावी पीढ़ी का जीवन बेहतर बनाने के लिए प्रत्येक पीढ़ी अपना सर्वोत्तम देती है। इसमें कोई रहस्यात्मक और गूढ़ बात नहीं है, प्रयास का कोई विकल्प नहीं होता है, तथापि हम विजय-पथ से भटक जाते हैं। इसके लिए बाहरी समस्याएँ जैसे– भूमण्डलीयकरण, मन्दी, मुद्रास्फीति, घुसपैठ, अस्थिरता आदि की अपेक्षा मैं उस अकर्मण्यता की भावना के प्रति चिन्तित हूँ जिसने राष्ट्र मानस को जकड़ लिया है, वह है हार की मानसिकता। मैं यह मानता हूँ कि जब हम अपने उद्देश्यों में दृढ़ विश्वास रखते हैं जिन्हें हम सपनों से सच्चाई में बदल सकें तब परिणाम प्राप्त होते हैं। प्रज्ज्वलित मस्तिष्क हमें पीछे ले जाने वाले अपराध बोध को हमसे दूर करता है।

1.4 यह सदैव माना जाता रहा है कि शिक्षार्थी की संज्ञानात्मक, सांस्कृतिक और भाषायी विशेषताएं प्रभावी रूप से अधिगम को प्रभावित करती हैं। आज के कक्षा शिक्षण में यह मान्यता और बलवती हो जाती है जहाँ भाषा और संस्कृति की बढ़ती हुई विविधता शिक्षण तथा अधिगम दोनो को प्रभावित करती है। इस प्रकार अध्यापक को सभी विद्यार्थियों के लिए

अधिगम की विशेष युक्तियों का जानकार होना आवश्यक है। इसमें एक तरफ व्यक्तिगत भिन्नता और दूसरी तरफ संस्कृति से प्रभावित चर एवं अधिगम से उत्तम सम्बन्ध शामिल होता है। विशेष रूप से, इस तरह की सांस्कृतिक एवं भाषायी भिन्नताएं कक्षागत परिवेश में भिन्न भाषिक समुदाय के माध्यम से प्रस्तुत होती हैं। इन्हें मूलभूत मान्यताओं में शामिल करना होगा जिनके आधार पर शैक्षिक समाधान ढूँढने होंगे। पुनश्च, अधिगमकर्त्ता की मूल्य प्रणाली, संदर्भ परिप्रेक्ष्यों, संस्कृति, भाषा तथा अन्य में जो भिन्नतायें अन्तर्भूत होती हैं उन्हे महत्व देना चाहिए एवं भली प्रकार रेखांकित भी करना चाहिए।

2. सामंजस्य की स्थापना में अध्यापक प्रशिक्षक की भूमिका

2.1 जब अध्यापक अपने विद्यार्थियों के पसन्द की सीखने की शैली के प्रति अधिक संवेदनशील रहते हुए शिक्षण की युक्तियों में अनुरूपता बनाएं रखते हैं, तो वांछित शैक्षिक परिणाम प्राप्त हो जाते हैं। साथ ही, अध्यापकों को यह भी चाहिए कि वे अपने विद्यार्थियों को कई अन्य विधियों से भी सीखने हेतु प्रशिक्षित करें। यह अधिगम कार्य की प्रकृति के अनुरूप होना चाहिए तथा इसे पाठ्यक्रम एवं कक्षागत क्रियाकलापों में आवश्यक हेर-फेर लाकर तथा सभी विद्यार्थियों के लिए प्रभावी सीखने के अवसरों को बढ़ावा देकर किया जाना चाहिए।

2.2 अधिगम-शैलियों के बारे में प्रचुर साहित्य उपलब्ध है। इनमें शोधकर्त्ताओं ने इस बात को समझने पर विशेष बल दिया है कि संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं की प्रकृति अधिगम को किस रूप में प्रभावित करती है। यद्यपि, कुछ शोध प्रयास विविध सन्दर्भों में अधिगम शैलियों का पता लगाने हेतु आकर्षित हुए हैं, तथापि और अधिक शोध यह समझने के लिए होने चाहिए कि अधिगमकर्त्ता के विशिष्ट भाषायी एवं सांस्कृतिक चरों के परिप्रेक्ष्य में अधिगम कैसे घटित होता है। इसी प्रकार विविध सांस्कृतिक एवं भाषायी समूहों से जुड़े व्यक्तियों के सीखने में विविधता के अनुसार अपेक्षित शिक्षण-शैलियों पर केन्द्रित शोध भी कम ही हुए हैं।

2.3 चूँकि सांस्कृतिक विभिन्नता वाली कक्षाओं में शिक्षण अधिगम शैलियों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है तथा इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती, इस मॉड्यूल के अन्तर्गत संस्कृति-प्रभावित अधिगम शैलियों की भूमिका तथा अध्यापकों एवं अध्यापक-प्रशिक्षकों के लिए उनके निहितार्थ पर बल दिया गया है। अध्यापकों को अपने विद्यार्थियों की विविध अधिगम आवश्यकताओं के अनुरूप अधिगम-परिवेश सृजित करने में मदद देने के प्रयोजन से इसमें उनसे सम्बन्धित मुद्दों को भी तलाशा गया है। इस सम्बन्ध में अनुरूपता लाने के सम्भव तरीकों को भी इंगित किया गया है।

3. अध्यापक-प्रशिक्षक तथा छात्राध्यापक के मध्य सम्बन्ध

3.1 स्वामी जी ने गुरू शिष्य सम्बन्ध के प्रतिमान और उनकी भूमिकाओं पर बहुत ही गम्भीर विचार प्रस्तुत किए हैं, जिनका सविस्तार इस प्रकार है –

"शिक्षा पर मेरा विचार गुरू गृहवास का है। अध्यापक के व्यक्तिगत जीवन बिना, कोई शिक्षा नहीं हो सकती। किसी को बाल्यावस्था से ही ऐसे व्यक्ति के साथ रखना जिसका चरित्र अत्यन्त प्रकाशमान हो तथा जिसके सामने सदैव जीवन्त उदाहरण के रूप में उच्चतम शिक्षण हो।

भारत में शिक्षा के पुराने तरीके आधुनिक तरीकों से अलग थे। छात्रों को शिक्षा की कीमत नहीं चुकानी पड़ती थी। शिक्षा को इतना पवित्र माना जाता था कि कोई भी उसे बेच नहीं सकता था। ज्ञान बिना किसी मूल्य के और स्वतंत्रता के साथ दिया जाना चाहिए था। अध्यापक न केवल विद्यार्थियों को मुफ्त की शिक्षा देते थे बल्कि उनमें से कई अपने विद्यार्थियों को भोजन तथा वस्त्र भी देते थे। इन अध्यापकों की सहायता, धनी परिवार उपहार द्वारा करते थे जिसके बदले में उन्हें छात्रों की देखभाल करनी होती थी।

छात्र एवं अध्यापक दोनों के बीच कुछ निश्चित पूर्व शर्तें आवश्यक हैं। छात्रों के लिए आचरण की शुद्धता, ज्ञान के प्रति वास्तविक प्यास और अध्यवसाय आवश्यक है। मन, वचन और कर्म में पवित्रता अति आवश्यक है। यह एक पुराना नियम है कि जिसमें ज्ञान की जितनी ही प्यास होती है, वह उतना सब कुछ प्राप्त कर लेता है।

अध्यापक के सम्बन्ध में, हमें यह देखना चाहिए कि वह शास्त्रों के मर्म को समझता हो... जो अध्यापक अधिक शब्दों का व्यवहार करता है, और मस्तिष्क को शब्दों के बोझ से लाद देता है, वह आत्मा को खो देता है। केवल शास्त्रों के मर्म का ज्ञान ही है जो सच्चे अध्यापक का निर्माण करता है। दूसरी शर्त जो अध्यापक के लिए आवश्यक है, वह है, पवित्रता। यह प्रश्न बहुधा उठता है कि हम अध्यापक के व्यक्तित्व और चरित्र को क्यों देखें? यह सही नहीं है। जिस सत्य का ज्ञान किसी को स्वंय प्राप्त करना है अथवा किसी और को प्रदान करना है, वह है हृदय और आत्मा की पवित्रता। अध्यापक को पूर्णतः शुद्ध होना चाहिए तभी उसके शब्दों का मूल्य होता है। सचमुच एक अध्यापक का कार्य कुछ बौद्धिक या सूक्ष्म ज्ञान को छात्र के मस्तिष्क तक स्थानान्तरित कर देना मात्र नहीं है। इस परिप्रेक्ष्य में तीसरी शर्त प्रयोजन को लेकर है। अध्यापक को किसी परवर्ती स्वार्थपूर्ण प्रयोजन जैसे– धन, नाम अथवा

यश के लिए शिक्षण नहीं करना चाहिए। उसका कार्य मानव जाति के लिए, प्रेम तथा विशुद्ध प्रेम से है।

शिष्य बनना आसान नहीं है। पहला प्रतिबन्ध यह है कि जो विद्यार्थी सत्य को जानना चाहता है वह इसके लिए अपनी अन्य सभी इच्छाओं का त्याग कर दे। सत्य, प्रेम और निःस्वार्थता केवल नैतिक सुभाषित नहीं हैं अपितु वे हमारे उच्चतम् आदर्श का निर्माण करते हैं, क्योंकि उनमें इस प्रकार की शक्ति का प्रत्यक्षीकरण सन्निहित होता है। आत्म-संयम सभी बाह्य क्रियाओं से बढ़कर बेहतर शक्ति का प्रत्यक्षीकरण है।

दूसरा प्रतिबन्ध यह है कि शिष्य को इस योग्य होना चाहिए कि वह आन्तरिक और वाह्य इन्द्रियों पर नियंत्रण रख सके। कठोर अभ्यास के द्वारा वह उस स्थिति में पहुँच जाता है जहाँ प्रकृति के निर्देशों के मुकाबले अपनी बुद्धि के निश्चय को स्थापित कर सकता है।... यदि मस्तिष्क अस्थिर और अनियंत्रित हो तो कोई भी आध्यात्मिक ज्ञान संभव नहीं है। शिष्य को मन पर नियंत्रण रखना अवश्य सीखना चाहिए।

साथ ही, शिष्य को धैर्य की महान् शक्ति भी धारण करनी चाहिए।

अगला प्रतिबन्ध जो शिष्य को अवश्य पूरा करना चाहिए वह है– मुक्ति प्राप्त करने की उत्कृष्ठ इच्छा।

हमारा मुख्य उद्देश्य होना चाहिए– सर्वोच्च सत्य को जानना। हमारा लक्ष्य ऊँचा होना चाहिए... जितना ही तुम स्वयं को प्रकाशमान अमर आत्मा के रूप में चिन्तन करते हो उतना ही तुममें जड़-जगत, शरीर और इन्द्रियों से पूरी तरह मुक्त हो जाने की तीव्र उत्कंठा जागेगी। यही मुक्ति की तीव्र उत्कंठा है।

यहां कुछ प्रतिबन्ध हैं जिनका पालन शिष्य बनने की इच्छा रखने वाले व्यक्ति को करना चाहिए, अन्यथा वह सच्चे गुरू के सम्पर्क में आने से वंचित रह जायेगा। अध्यापक को छात्र पर अपनी सारी क्षमता का प्रयोग करना चाहिए। वास्तविक सहानुभूति के अभाव में हम अच्छी प्रकार शिक्षा नहीं दे सकते। किसी व्यक्ति के विश्वास में व्यवधान डालने का प्रयास मत करो। यदि तुम कुछ कर सकते हो तो उसे कुछ बेहतर दो पर उसके पास जो है उसे नष्ट मत करो। मात्र सच्चा अध्यापक वह है जो हजारों लोगों के बीच भी क्षण भर में परिस्थितियों के अनुसार स्वयं को बदल ले अर्थात् तुरन्त ही छात्रों के स्तर तक आ जाए और अपनी आत्मा को छात्र की आत्मा में स्थानान्तरित करके उसकी आँखों से देखे और उसके दिमाग से सोचे। ऐसा अध्यापक ही वास्तव में अध्यापक होगा और कोई नहीं।

4. प्रभावी अध्यापक शिक्षा के लिए सेवा-पूर्व और सेवा-रत परिप्रेक्ष्य

4.1 कक्षागत अभ्यास का उस ढंग से नजदीकी सम्बन्ध है जिसमें अध्यापक अपने शिक्षण को एक व्यावहारिक एवं सामाजिक क्रिया के रूप में सम्बद्ध करना सीख लेते हैं। फिर भी, दो महत्वपूर्ण पक्षों में भारतीय विद्यालयीय अध्यापक शिक्षा पद्धति विगत 50 वर्षों से अपरिवर्तित रही है : स्कूल के अध्यापक के लिए संस्थानिक बौद्धिक अलगाव और मात्र तकनीक के रूप में सीमित शिक्षण विधा का अनुप्रयोग। अध्यापक-शिक्षा का संस्थान सुपरिचित एवं नियत रूढ़ियों की व्यवस्था के रूप में काम करता है जिसमें अध्यापक तैयार करने हेतु 'रूढ़ियों' और 'रीति-रिवाजों' के द्वारा सामाजिक अन्तर्क्रिया एवं सोचने की घिसी-पिटी आदतों का पुनरूत्पादन सम्मिलित है। ये रीति-रिवाज या पूर्व निश्चित क्रियायें हैं सुबह की प्रार्थना, नारे, प्रतीक, मुद्राएँ, 'आज का विचार' आदि का प्रदर्शन, शिक्षण सहायक सामग्री के तौर पर 'चार्ट', 'मॉडल' आदि का प्रयोग, एक निश्चित प्रारूप के अनुसार पाठ योजनाओं की संरचना में किया जाना। ये रीति-रिवाज क्रमशः नियमों तथा निर्देशात्मक प्रवृत्ति के रूप में मान्य हो जाते है।

4.2 भारत में सेवा पूर्व अध्यापक शिक्षा की संस्थागत संस्कृति उच्च शिक्षा व्यवस्था में उसे प्रदत्त स्थान का परिणाम है। अधिकांश माध्यमिक अध्यापक शिक्षा संस्थायें विश्वविद्यालय परिसर के बाहर बी0एड0 से सम्बन्धित कार्यक्रम प्रस्तुत करते हैं। अध्यापक शिक्षा संस्थायें जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान सहित डी0एड0 कार्यक्रम प्रस्तावित करती है जो विश्वविद्यालयों से संबद्ध नहीं है। अध्यापाकों को प्रशिक्षित करने के एक मात्र अधिदेश के साथ अध्यापक शिक्षा संस्थायें एक 'बंद परिसर' के रूप में कार्य करती हैं। ये ऐसे नवयुवकों की सहभागिता सुनिश्चित नहीं कर पाती जो परास्नातक अथवा शोध के माध्यम से शैक्षिक मुद्दों से जुड़कर अध्ययन करना चाहते हैं। प्रचलित व्यवस्था में अध्यापक होने के लिए एक मात्र मार्ग यहीं से शिक्षा प्राप्त करना है।

❖ अध्यापक तैयार करने की प्रणाली में गुणवत्ता

4.3 'शिक्षा के अधिकार' के दायित्व को पूरा करने हेतु विहित योग्यता मानकों के अनुसार अध्यापकों की भर्ती के दृष्टिगत बढ़ते दबाव के कारण अधिक संख्या में व्यावसायिक दक्षता युक्त अध्यापकों के माँग को पूरा करने के लिए कई राज्यों ने दूरस्थ अधिगम कार्यक्रमों को लागू किया है।

4.4 अतः, अध्यापकों का प्रारम्भिक प्रशिक्षण एक उपाधिहीन कार्यक्रम बन जाने से पृथकत्व, निम्नपार्श्वचित्र तथा दृष्टि से ओझल हो जाने वाली समस्या से आच्छादित है। व्यावसायिक चर्चाओं में अध्यापक शिक्षा को बी0एड0 तथा डी0एड0 पाठ्यक्रमों के सन्दर्भ से जोड़कर एकल, अविभेदित संवर्ग में रखा जाता है। अबतक जो भी पाठ्यक्रम परिप्रेक्ष्य विकसित हो सके हैं, वे ऐसे दिशा निर्देश देते हैं जो अत्यन्त सामान्य हैं तथा शिक्षा की अवस्था विशेष को ध्यान में रखकर अध्यापकों की व्यावसायिक आवश्यकताओं को संतुष्ट नहीं कर पाते।

4.5 अध्यापक-शिक्षा में चल रही व्यवस्थाओं के विश्लेषण से यह पता चलता है कि शिक्षण-अभ्यास सामान्यतः पांच से छः सप्ताह के लिए होता है और वह भी निरन्तरता के साथ न होकर खण्डों में चलाया जाता है। इस अवधि में प्रशिक्षण के प्रारम्भ में प्रदत्त आधारभूत एवं कौशल परक प्रस्तुतियों को समन्वित करने तथा उनका अनुप्रयोग करने की अपेक्षा होती है। समय कम होने के कारण विषयवस्तु एवं उनकी व्यवस्था पर वस्तुतः बिना विशेष ध्यान दिए ही पाठ-योजनाएं तैयार की जाती हैं। इस दृष्टि से अध्यापक शिक्षा के लिए जो निहितार्थ निकलते हैं, वे इस प्रकार हैं : शिक्षण एवं अनुदेशन में विषय-वस्तु या सिद्धान्त-उन्मुखता के स्थान पर समस्या-उन्मुखता लाना, अध्यापकों के व्यावसायिक विकास हेतु व्यष्टि-अध्ययन, अनुरूपण, भूमिका-निर्वाह तथा क्रियात्मक शोध की पद्धतियाँ अपेक्षाकृत अधिक समीचीन होंगी, अनुदेशन में इस बात पर बल देना कि विषय को रटने की अपेक्षा विद्यार्थी कार्यों को पूरा करें तथा अन्तर्दृष्टि एवं कुशलता विकसित करें। उन्मुक्त गतिविधियाँ एवं प्रश्न पूछने की प्रवृत्ति भावी अध्यापकों के अनुभवों में व्यापकता लाने के साथ ही, उनमें ज्ञान, अधिगम तथा अधिगमकर्त्ताओं के 'व्यक्तिगत सिद्धान्तों' के सूक्ष्म परीक्षण एवं विश्लेषण में भी सहायक होगी।

कार्यक्रमों की अवधि को बढ़ाने के अलावा एन.सी.टी.ई. द्वारा अपने मान्यता मानकों में पाठ्यक्रम क्रियान्वयन के निम्नलिखित पक्षों को भी सम्मिलित करना आवश्यक है :

i) प्रत्येक सिद्धान्त और प्रयोग पाठ्यक्रम के तहत छात्राध्यापकों की भाषा में अध्येय ग्रन्थों की विवरणिका का प्रस्तुत करना। वर्तमान में अध्यापकों को 'गाईड्स' और 'पासबुक्स' के रूप में सुलभ निम्नस्तरीय पठन सामग्री के माध्यम से शिक्षित किया जा रहा है। यह संकल्पनात्मक दृष्टि से भ्रमित और परिप्रेक्ष्य की दृष्टि से प्रतिगामी है।

ii) प्रायोगिक पाठ्यचर्याओं के लिए व्यष्टि सामग्रियों के उपयोग के साथ.साथ सम्यक्, सुपरिभाषित कार्य और दत्त कार्य का समावेश हो।

iii) सम्यक् रूप में अभिकल्पित दत्त कार्य जिनमें व्यक्तिगत लेखन के साथ समूह एवं प्रतिभाग आधारित कार्य का भी समावेश हो।

iv) काम के दौरान ही व्यवस्थित रूप में आयोजित ऐसी गतिविधियां जिनमें पाठ्यपुस्तकों, पाठ्यक्रमों और पाठ्यचर्याओं का विश्लेषण तथा कक्षाओं के लिए गतिविधियों का चुनाव और निर्माण सम्मिलित हो।

❖ सेवापूर्व अध्यापक शिक्षण संस्थानों की पुनर्रचना

4.6 अध्यापकों को तैयार करने के लिए अपेक्षित संस्थागत क्षमता को बढ़ाने के साथ ही सेवा-पूर्व कार्यक्रमों में पाठ्यक्रमों एवं संस्थागत अभिकल्प की दृष्टि से मूलभूत बदलाव की आवश्यकता है। अध्यापक शिक्षा की जो संस्थाएँ इस समय विद्यमान हैं वे मूलतः अलग-थलग संस्थाएँ हैं।

4.7 अतः सेवापूर्व अध्यापक शिक्षा के कार्यस्थल को एक पृथक् संस्थागत व्यवस्था से बदलकर उच्च शिक्षा के अध्ययन केन्द्रों की संस्थागत व्यवस्थाओं के साथ एकीकृत करना होगा। इसका निहितार्थ यह होगा कि शैक्षिक मापदण्डों एवं प्रक्रियाओं पर आधारित उपयुक्त मानकों तथा मानदण्डों को सृजित करना जैसे पाठ्यक्रम के प्रारूप, उनके साथ संस्तुत अध्येय ग्रन्थों तथा क्रियान्वयन की पद्धति आदि जिसमें मिश्रित (ब्लेन्डेड) अधिगम सामग्री का अनुप्रयोग। यह भारतीय संविधान के अनुच्छेद 51 अ, परिच्छेद 'एच' के सामंजस्य में होगा जिसमें यह कहा गया है कि "वैज्ञानिक चेतना, मानवतावाद, खोजी भावना और सुधार की चेतना विकसित करना" मुख्य ध्येय है।

❖ अध्यापक शिक्षा के कार्यक्रमों का पुनःअभिकल्पन

4.8 अध्यापकों का व्यावसायिक विकास समकालीन भारतीय समाज के सामाजिक.सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक सन्दर्भों में किया जाना चाहिए। इस प्रयोजन हेतु अध्यापक शिक्षा के सेवापूर्व कार्यक्रमों में अन्तःअनुशासनात्मक क्रियान्वयन भारतीय समाज के समकालीन मुद्दों के परिप्रेक्ष्य में किये जाने की अपेक्षा है।

❖ सेवारत अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता

4.9 अन्य व्यावसायिकों की भाँति अध्यापक को भी जीवनपर्यन्त अपने व्यवसाय की अपेक्षाओं के अनुसार अपना स्तरोन्नयन करते रहना चाहिए। ऐसा न

होने पर वह अपने व्यावसायिक प्रभाविता के मानदण्ड के निचले स्तर पर जाने के लिए विवश होंगे। व्यावसायिक विकास से तात्पर्य है व्यक्ति का अपने व्यावसायिक ज्ञान और गुणवत्ता में सतत् अभिवृद्धि करना तथा अपने कौशलों को समुन्नत बनाना। व्यावसायिकों को सामान्यतः इस तरह के व्यावसायिक विकास के कार्यक्रम स्व-अध्ययन, संगोष्ठियों, कार्यशालाओं तथा सम्मेलनों में प्रतिभाग करना आदि, अपने प्रेक्षणों, अनुभवों एवं प्रयोगों के आधार पर पत्रकों की प्रस्तुति, अध्ययन केन्द्रों, अथवा व्यावसायिक संगठनों की बैठकों में प्रतिभाग करना, नियोक्ताओं द्वारा अथवा अध्यापकों या अध्यापकों के संगठनों द्वारा आयोजित पुनश्चर्या एवं अभिविन्यास कार्यक्रमों में प्रतिभाग करना है।

4.10 वर्तमान में सेवारत अध्यापकों की शिक्षा राज्य द्वारा संचालित कार्य है जो विशिष्ट संस्थाओं द्वारा एक निर्धारित अवधि के लिए आयोजित किया जाता है। ये कार्यक्रम कक्षा शिक्षण की भाँति आयोजित किए जाते हैं जिसमें अध्यापकों को अधिगमकर्त्ताओं की भूमिका में तथा प्रशिक्षकों या विषय विशेषज्ञों को अध्यापक की भूमिका में रखा जाता है। ध्यातव्य है कि अध्यापकों की सेवारत शिक्षा में अधोलिखित उद्देश्य निहित है :

i) अध्यापक जिन विषयों को पढ़ाते हैं, तत्विषयक ज्ञान का उच्चीकरण;

ii) सेवारत अध्यापकों की शिक्षण दक्षताओं एवं योग्यताओं में परिष्कार लाना;

iii) नवाचारी, बालकेन्द्रित शिक्षण अधिगम की युक्तियों जिनका उद्देश्य विद्यार्थियों को सीखने के लिए सीखना, ज्ञान की संरचना अपने स्वंय के प्रेक्षणों, अनुभवों, विश्लेषण एवं संश्लेषण के आधार पर करना। इस प्रकार के कार्यक्रम अधिकांशतः प्रेरक प्रशिक्षण के रूप में संचालित किये जाने चाहिए; और

iv) शिक्षा के क्षेत्र में आधुनिकतम विकास एवं चिन्तन के बारे में अभिज्ञता उत्पन्न करना तथा ज्ञान एवं ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया को गहनता के साथ लेने की आवश्यकता को रेखांकित करना।

5. साधन एवं साध्य

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार 'साधन एवं साध्य' पूर्णतः सम्बन्धित हैं। दोनों को समान अधिकार देना चाहिए। इस विषय पर स्वामी जी की विस्तृत अभिव्यक्ति निम्नलिखित है :

मैंने अपने जीवन में एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात सीखी कि जितना ध्यान अपने कार्य के साधनों को दें उतना ही उसके साध्यों को भी देना चाहिए। जिनसे मैंने यह सीखा है वह एक महान व्यक्ति थे, और उनका

स्वयं का जीवन इस सिद्धान्त का प्रत्यक्ष उदाहरण था। इस मूल सिद्धान्त से मैंने हमेशा ही महान शिक्षाएं प्राप्त की हैं और यह मुझे ऐसा प्रतीत होता है जैसे सफलता के सारा रहस्य यही है; जितना ध्यान साध्य को दे उतना ही साधन को भी।

हमारे जीवन की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि हम अपने आदर्शों की ओर इतना खिचे हुए हैं, जबकि हमारा उद्देश्य इतना मोहक और ज्यादा आकर्षक, हमारे मानसिक स्तर से इतना ऊपर है कि हम उसे पूरी तरह विस्तृत रूप से देखने की शक्ति खो देते हैं।

जहाँ कारण है, वहाँ कार्य की कोई चिन्ता या परेशानी नहीं, कार्य प्रकट होने के लिए बाध्य है। जब हम कारण की जिम्मेदारी लेते हैं तो कार्य स्वयं अपनी जिम्मेदारी लेता है। आदर्श का प्रत्यक्षीकरण ही कार्य है। साधन कारण हैं : इसलिए साधन पर ध्यान देना जीवन का महान् रहस्य है।

इसलिए वास्तविक सफलता का, वास्तविक आनन्द का यह रहस्य है कि एक व्यक्ति जो लाभ के लिए नहीं सोचता, पूर्णरूप से निःस्वार्थ है वही सर्वाधिक सफल है। यह एक विरोधाभासी उक्ति लगती है। क्या हम नहीं जानते जो व्यक्ति निःस्वार्थ होता है, वह जीवन में छला जाता है, दुःखी होता है? स्पष्ट रूप से, हाँ। "ईसा निःस्वार्थी थे, फिर भी उन्हें सूली पर लटका दिया गया।" सत्य है, लेकिन हम यह जानते हैं कि उनकी निःस्वार्थता ही उनकी महान विजय का कारण है, जिसमें सैकड़ों-हजारों लोगों को जीवन का उपहार सच्ची सफलता के आशीर्वाद के साथ मिला।

हम सदैव अपने बचपन से अपने से परे किसी अन्य व्यक्ति या वस्तु पर, दोष लगाते हैं। हम हमेशा दूसरों को सुधारने के लिए खड़े रहते हैं पर अपने आप को नहीं। जब हम दुखी होते हैं तब हम कहते है कि यह दुनिया शैतान की दुनिया है। अगर हम इतने ही अच्छे हैं तो फिर हम इस दुनिया में क्यों है ? अगर यह शैतानों की दुनिया है तो हम भी अवश्य ही शैतान हैं, फिर हमें यहाँ क्यों होना चाहिए ? " आह! संसार के व्यक्ति कितने स्वार्थी हैं!" बहुत ठीक; अगर हम दूसरों से अच्छे हैं तो हमें इस जनसमूह में क्यों होना चाहिए ? इसके बारे में एक बार सोचिए!

हमें केवल वही मिलता है जिसके हम पात्र होते हैं। यह एक झूठ है जब हम कहते हैं कि दुनिया बहुत बुरी है और हम अच्छे हैं। ऐसा कभी नहीं हो सकता। यह एक भयानक असत्य है, जिसे हम अपने आपसे कहते हैं। यह पहली शिक्षा है जो सीखनी है : दृढ़ संकल्पी बनें, किसी बाहरी को कोसें नहीं, किसी पर दोष न लगायें। बल्कि एक इंसान बनें, खड़े

हो, दोष को स्वयं पर आरोपित करें। तुम पाओगे कि यह हमेशा सही है। स्वयं अपने को नियंत्रित करो।

स्वामी जी के शैक्षिक दर्शन का एक स्पष्ट निहितार्थ जो 'साधन और साध्य' की प्रस्तुति से निःसृत होता है, वह यह है कि अध्यापकों के प्रशिक्षण में प्रयुक्त विषयवस्तु में एक सामर्थ्य हो जो उन्हें अपनी प्रदत्त भूमिकाओं को प्रभावी रूप में निभाने के लिए सज्जित करे। चूँकि अध्यापकों को तरह-तरह के कार्य एवं जिम्मेदारियों का निर्वहन करना पड़ता है उनके प्रशिक्षण की आवश्यकताएँ भी भिन्न-भिन्न होंगी जिसके लिए विशेष प्रयोजनों से विशेष प्रकार के मॉड्यूल तैयार करने होंगे। इसका तात्पर्य यह है कि प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक विद्यालयों के अध्यापकों के लिए अलग-अलग मॉड्यूल बनाने होंगे। इसी प्रकार प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालयों, पर्यवेक्षकों तथा विद्यालय के पुस्तकालय कर्मियों के लिए भी अलग से मॉड्यूल बनाये जाने चाहिए।

यद्यपि भिन्न-भिन्न विषयों के पढ़ाने वाले अध्यापकों एवं शैक्षिक अभिकर्मियों को भिन्न-भिन्न कार्य करने पंड़ते हैं तथापि शिक्षा विषय (अनुशासन) का आधार एक होने के फलस्वरूप अपनी व्यावसायिक अन्तर्दृष्टि एक जैसी विकसित करनी होगी। अपने क्षेत्र विशेष में विशेषज्ञता विकसित करने के साथ उन्हें शिक्षा के बारें में समान्य रूप से तथा विद्यालयीय शिक्षा के बारे में विशेष रूप से पाई जाने वाली चिन्ताओ, नीतियों, कार्यक्रमों तथा उदीयमान प्रवृत्तियों के बारे में परीक्षण, विश्लेषण एवं गहन चिन्तन करने की क्षमता अपेक्षित है। इस दृष्टि से प्रशिक्षण की विषयवस्तु प्रत्येक शैक्षिक अभिकर्मी को ध्यान में रखकर दो मुख्य घटकों के आधार पर निर्मित होनी चाहिए– विषय या कार्य-विशिष्ट विषयवस्तु तथा सामान्य शिक्षा। यह वांछनीय होगा कि विषय-विशिष्ट विषयवस्तु तथा सामान्य शिक्षा के घटकों में महत्वपूर्ण रूप से अन्तर करते हुए समुचित अधिभार प्रदान किया जाए। अध्यापकों के व्यावसायिक विकास में निरन्तरता लाने के लिए कतिपय महत्वपूर्ण बिन्दु जिनपर विचार करना होगा वे हैं : ज्ञान मीमांसात्मक पक्षों के प्रति अपेक्षित चिन्ता दर्शाने हेतु विमर्श, विषयवस्तु का गहन अध्ययन, शिक्षाशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य विकसित करना, दक्षताओं के समुच्चय विकसित करना, अधिगमकर्त्ताओं एवं सन्दर्भों का अवबोध, व्यक्तिगत आकांक्षाएं एवं प्रवृत्तियां विकसित करना आदि। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि सेवारत शिक्षा कार्यक्रमों में इन बिन्दुओं एवं पक्षों को प्रमुखता से रेखांकित करना होगा।

चिन्तन हेतु

1. अध्यापक शिक्षा के ध्येयों तथा उनके प्राप्ति के साधनों के बीच सामंजस्य स्थापित करने में अध्यापक प्रशिक्षकों की क्या भूमिका है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2. छात्राध्यापकों एवं अध्यापक प्रशिक्षकों के बीच सम्बन्ध विषयक तीन नीतिपरक सिद्धान्तों का सुझाव दें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3. हमारे देश में सेवापूर्व/सेवारत अध्यापक शिक्षा क्यों नहीं प्रभावी सिद्ध हो पा रही है? तीन कारणों का उल्लेख करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

पठन एवं मनन हेतु
(स्वामी विवेकानन्द द्वारा उद्धृत शिक्षाप्रद कथा)

तुम जो भी मांगोगे मिलेगा

एक शिष्य एक दिन, अपने गुरू के पास जाकर बोला, "महोदय मुझे ईश्वर चाहिए।" गुरू इसे सुन शिष्य की ओर देख और मौन बने रहे। अब वह नौजवान प्रति दिन आकर ईश्वर प्राप्ति की जिद करने लगा। एक दिन जब बहुत गरमी पड़ रही थी तो गुरू ने उस नौजवान से नदी तट पर चलकर डुबकी लगाने के लिए कहा। जब उस युवक ने डुबकी लगाई तो गुरू ने बलपूर्वक उसे पानी से ऊपर नहीं आने दिया। युवक के बहुत प्रयास करने के उपरान्त उसके गुरू ने उसे छोड़ा और तभी वह पानी से बाहर निकल पाया। तब गुरू ने उससे प्रश्न किया कि जब वह पानी के भीतर था तो उसके अन्दर किस इच्छा की चाह सर्वाधिक थी। "साँस लेने की" शिष्य ने उत्तर दिया। तब गुरू बोले "क्या तुम्हारी ईश्वर को पाने की इच्छा भी उतनी तीव्र है? यदि हो तो वह तुम्हे एक क्षण में मिल जायेगा। जब तक तुम्हारे भीतर वैसी ही प्यास और इच्छा नहीं होगी, तब तक तुम ईश्वर की प्राप्ति में असमर्थ बने रहोगे, चाहे तुम अपनी बुद्धि पर कितना ही बल दो या पुस्तकों का अध्ययन करो।

अभ्यास हेतु

1. बी0एड0/एम0एड0 के दस छात्राध्यापकों के एक समूह का गठन कर, निम्नांकित विषय.वस्तुओं में से किसी एक विषय पर एक संक्षिप्त विमर्शी परिचर्चा का आयोजन करें:

   ✓ हम अपने बच्चों को क्यों शिक्षित करें?

   ✓ प्रशिक्षण और मतारोपण से शिक्षण किस भाँति भिन्न है?

   ✓ क्या सीखना और जीविकोपार्जन दोनो एक साथ सम्भव हैं?

   ✓ क्या हमें कार्य के साधन के समान ही उसके साध्य पर भी ध्यान देना चाहिए?

अध्ययन एवं परामर्श हेतु

1. स्वामी विवेकानन्द : *कर्मयोग,* श्रीरामकृष्ण-शिवानन्द-स्मृति ग्रन्थमाला (पुष्प 14), रामकृष्ण मठ, नागपुर, 2007.
2. स्वामी विवेकानन्द : 'शिक्षा का आदर्श' श्री रामकृष्ण–शिवानन्द–स्मृति ग्रन्थमाला (पुष्प 185) रामकृष्ण मठ, नागपुर, 2013.
3. स्वामी विवेकानन्द : 'पत्रावली' श्री रामकृष्ण–शिवानन्द–स्मृति ग्रन्थमाला (पुष्प 34) रामकृष्ण मठ, नागपुर, 2014.
4. स्वामी विवेकानन्द सार्धशती समारोह शृंखला : विश्वजीत पुस्तक माला (12) स्वामी विवेकानन्द सार्धशती समारोह समिति, नई दिल्ली, 2013.
5. स्वामी विवेकानन्द : (संक्षिप्त जीवनी) अद्वैत आश्रम, कोलकाता, 2013.
6. T.S. Avinashilingam, *Education: Compiled from the Speeches and Writings of Swami Vivekananda*, Sri Ramkrishna Math, Madras, 2014.
7. *The Complete Works of Swami Vivekananda*, Volume 4-6, Advaita Ashram, Culcatta, 2013.
8. Jacques Delors, *Learning - The Treasure Within*, UNESCO, 1996.
9. A.P.J Abdul Kalam, *Ignited Minds*, Penguin Books India, New Delhi, 2003.
10. *Teaching of Swami Vivekananda*, Advaita Ashram, Calcutta, 1997.
11. *Report of the National Commission on Teachers in Higher Education*, New Delhi, 1995.

...हम निश्चित ही प्रकाश देखेंगे!

"हमारे दायित्वों का निर्धारण एक वृहद सीमा तक हमारी इच्छाओं के द्वारा होता है, जिसे हम करने के इच्छुक होते हैं। प्रतिस्पर्धा से ईर्ष्या उत्पन्न होती है, और उससे हृदय की दयालुता नष्ट हो जाती है। एक शिकायती व्यक्ति के लिए सभी दायित्व अरूचिकर होते हैं, उसे कुछ भी कभी भी संतुष्ट नहीं कर सकता, और उसके पूरे जीवन में नाकामयाबी प्रमाणित होना निश्चित है। हमें आगे बढ़ना चाहिए, इस कार्य में जो भी घटित हो वह हमारे दायित्व हैं, और (इसके) पहिये को कंधा लगाने के लिए हमें सदैव तत्पर रहना चाहिए। तब, हम, निश्चित ही प्रकाश देखेंगे।"

मॉड्यूल्-5

अध्यापक प्रशिक्षक एवं नैतिक आचार

इक्कीसवीं सदी के विश्व की सबसे महत्वपूर्ण चिंताओं में से एक नैतिकता और नैतिक मूल्यों से संबंधित है। यह उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है कि मूल्य और नैतिकता शिक्षा के सभी स्तरों पर पाठ्यक्रम का अभिन्न अंग हैं। अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम और इसकी विषय वस्तु निर्विवाद रूप से नैतिक मूल्यों और नैतिकता पर आधारित होनी चाहिए। यह जानकारी उन सभी से संबंधित है, जो प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से शिक्षक-शिक्षा पाठ्यक्रमों को लागू करने अथवा योजना बनाने से जुड़े हैं। अतः, शिक्षक-शिक्षा के क्षेत्र में मूल्यों और नैतिकता का व्यवहार, ज्ञान और शिक्षण-शास्त्र पर एक व्यापक दृष्टिकोण रखते हुए होना चाहिए; जिससे सारा ध्यान उसकी व्याख्या करने वाले वैज्ञानिक ज्ञान और सिद्धान्तों पर न होकर उस सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश पर भी हो, जिसमें शैक्षिक कार्यक्रम लागू करने हैं। यह मॉड्यूल् शिक्षा के प्रावधानों में निहित उद्देश्यों तथा उनके आलोक में अध्यापक शिक्षा में अपेक्षित नैतिक आचार एवं व्यावसायिक मूल्यों को अन्तर्भूत बनाने हेतु उपयोगी अन्तर्दृष्टि प्रस्तुत करता है।

संपादक

अध्यापक प्रशिक्षक एवं नैतिक आचार

1. नैतिक शिक्षा : मुद्दे एवं परिप्रेक्ष्य

❖ शिक्षा आवश्यक रूप से विद्यार्थी को जीवन जीने के लिए उसके अन्दर मूल्यों को सम्वर्द्धित करने की प्रक्रिया है। एक ऐसा जीवन जो कि सामाजिक आदर्शों एवं मूल्यों के अनुसार व्यक्ति को जीने की प्रेरणा प्रदान करता है। हमारे देश के दार्शनिकों, आध्यात्मिक नेताओं तथा शिक्षाविदों ने शिक्षा की भूमिका पर बल देते हुए कहा है कि यह चरित्र निर्माण के लिए, छिपी क्षमताओं, अन्तर्निहित गुणों एवं व्यक्ति और समाज के कल्याण के लिए अति आवश्यक है। जो भी शब्द प्रयुक्त किया जाए, वह भारतीय सभ्यता एवं सांस्कृतिक विरासत, जिनका अस्तित्व शताब्दियों से है, के भाव को निखारना शिक्षा का उद्देश्य मानें। हम अत्यधिक भाग्यशाली हैं कि हमने अपनी विभिन्नताओं वाली सांस्कृतिक विरासत को उत्तराधिकार में विभिन्न तरह से प्रतीकात्मक रूप में प्राप्त किया है, जो कि हमारे मूल्यों को सम्वर्द्धित करने में अत्यधिक सहायक है। हमारे संतो, ऋषियों, दार्शनिकों, व्यक्तियों तथा समुदायों का जीवन आत्मानुशासन, सादगी, भौतिक संसाधनों के अभाव में जीवन यापन, सरलता, बिना हिंसा के द्वन्द्वों के समाधान और सरल लेकिन विचारों द्वारा बेहतर ढंग से रहने जैसे मूल्यों का उदाहरण है।

❖ मूल्यपरक शिक्षा के प्रति लगाव समय–समय पर हमारे प्रमुख नीतिगत दस्तावेजों में बीज रूप में परिलक्षित होता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952–53) चरित्र निर्माण को शिक्षा के परिभाषित लक्ष्य के रूप में स्थापित करने में महत्वपूर्ण मील का पत्थर साबित हुआ। शिक्षण प्रक्रिया का सर्वोच्च लक्ष्य विद्यार्थियों में ऐसे व्यक्तित्व एवं चरित्र का प्रशिक्षण होना चाहिए जिससे वे अपनी पूर्ण क्षमता को पहचान सकें और समुदाय के सर्वांगीण विकास में अपना योगदान कर सकें।

❖ विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948) के प्रतिवेदन में कहा गया है कि यदि हम अपने संस्थानों से आध्यात्मिक प्रशिक्षण को हटा देते हैं तो यह हमारे पूरे ऐतिहासिक विकास के संदर्भ में असत्य साबित होगा। इस प्रतिवेदन में नैतिक या धार्मिक शिक्षा के अतिरिक्त राष्ट्रीय विश्वास विकसित करने तथा धर्म पर भारतीय दृष्टिकोण आधारित सभी रस्मों, रूढ़ियों, और दबावों से मुक्त एक राष्ट्रीय मार्ग प्रशस्त करने की बात भी कही गई है। 1964–66 के शिक्षा आयोग ने "शिक्षा और राष्ट्रीय विकास" विषय पर चर्चा करते हुए यह

चिन्हित किया है कि, "शिक्षा में सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों के प्रावधान के अभाव" को पाठ्यक्रम में एक गंभीर दोष के नजरिये से देखा जाना चाहिए।

- आयोग ने सुझाव दिया है कि इन मूल्यों को जहाँ तक सम्भव हो महान् धर्मों के नैतिक उपदेशो की सहायता से सिखाया जाना चाहिए। श्री प्रकाश समिति के प्रतिवेदन से सहमति जताते हुए इसमें प्रत्यक्ष नैतिक अनुदेशन की सिफारिश की गई है, जिसके लिए विद्यालय की समय-सारिणी में सप्ताह में एक या दो कक्षा अवधियों का प्रावधान होना चाहिए।

- राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) ने समाज में आवश्यक नैतिक मूल्यों के क्षरण और समाज में बढ़ती हुई एक प्रकार की सनक पर चिंता व्यक्त करते हुए अपने विचारों को प्रस्तुत किया। इसने अपना पक्ष रखते हुए वर्तमान शिक्षा को सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों को सम्वर्द्धित करने का महत्वपूर्ण औजार माना है। 1992 के कार्यक्रम क्रियान्वयन में माध्यमिक शिक्षा सहित विद्यालयीय शिक्षा के सभी स्तरों के पाठ्यक्रम में मूल्य शिक्षा के विभिन्न घटकों को एकीकृत करने का प्रयत्न किया गया। भारत सरकार द्वारा संसद के दोनों सदनों में प्रस्तुत मूल्य आधारित शिक्षा के प्रतिवेदन (चह्राण समिति का प्रतिवेदन, 1999) में शिक्षा के मूल्य उन्मुखीकरण पर फिर से कार्य करने के लिए प्रोत्साहित किया गया।

- विद्यालयीय शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यक्रम के प्रारूप (2000), में राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) के प्रावधानों को दुहराते हुए आवश्यक सामाजिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों के क्षरण एवं समाज में सभी स्तरों पर बढ़ती हुई सनक पर खेद जताया गया है। इस पृष्ठभूमि में यह प्रारूप मूल्य शिक्षा को पाठ्यक्रम में जोड़ने का आग्रह करते हुए इस बात पर बल देता है कि, "विद्यालयों को लोगों में एकता और अखण्डता की ओर उन्मुख सार्वभौमिक और शाश्वत मूल्यों को बनाये रखने का सतत प्रयास करना चाहिए, जिससे वे अपने अंदर मौजूद क्षमताओं को पहचानने में सक्षम हो सकें।" इस पाठ्यक्रम में यह भी कहा गया है कि, "सम्पूर्ण शैक्षिक प्रक्रिया इस तरह की होनी चाहिए जिसमें इस देश के बालक और बालिकाओं में अच्छा देखने, अच्छे को पसन्द करने तथा अच्छा करने की क्षमता विकसित हो सके एवं वे परस्पर सहिष्णु नागरिकों के रूप में विकसित हो सकें।"

- राष्ट्रीय पाठ्यक्रम प्रारूप (2005), भी विद्यालयीय शिक्षा के उस स्वरूप को प्रतिध्वनित करता है जिसमें मूल्य विद्यालयीय शिक्षा के

प्रत्येक क्रियाकलाप में निहित है। यह प्रारूप स्पष्ट रूप से विविधता में समानता की अवधारणा के प्रति हमारी प्रतिबद्धता, शांतिपूर्ण मूल्यों को प्रोत्साहित करने के लिए मनुष्य में पारस्परिक निर्भरता, मानवता तथा बहुसांस्कृतिक समाज में सहिष्णुता की पुनः पुष्टि की जरूरत पर बल देता है। यह बालकों को गरिमापूर्ण बनाने, उनमें आत्म विश्वास जगाने, आत्म-आदर एवं नैतिकता के विकास, सृजनशीलता को विकसित करने, पर्यावरण के प्रति संवेदनशील बनाने एवं लोकतंत्र को शासन की एक प्रणाली के रूप में नहीं अपितु जीवन जीने की शैली के रूप में तथा संविधान में निहित मूल्यों के प्रति जागरूक करने में सक्षम बनाने की जरूरत पर बल देता है।

2. भारतीय विचारकों के दृष्टिकोण : स्वामी विवेकानन्द के विशेष संदर्भ में

❖ मूल्यों के लिए शिक्षा के पुनर्उन्मुखीकरण के पीछे सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण यह सत्य है कि शिक्षा का वर्तनाम प्रतिमान बालकों के एक तरफा विकास में योगदान देता है, जिसको स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षा पर दिए गये अपने व्याख्यानों में बड़ी सजीवता से व्यक्त किया है। शिक्षा का यह प्रतिमान संज्ञानात्मक विकास पर पूरा ध्यान देता है, भावानात्मक क्षेत्र की पूरी तरह उपेक्षा करता है तथा मस्तिष्क तथा हृदय के बीच एक असम्बद्धता को प्रस्तुत करता है। विद्यार्थियों का अत्यधिक प्रतिस्पर्धा की दृष्टि से पालन–पोषण किया जा रहा है और उन्हें आरम्भ से ही आक्रामक प्रतिस्पर्धा से संबंधित तथ्यों एवं संदर्भों से अलग कर प्रशिक्षित किया जा रहा है। सर्वोत्कृष्टता के वैयक्तिक विचारों को सांवेगिक एवं संबन्धात्मक कौशलों के मूल्य पर बढ़ावा दिया जा रहा है। युवा छात्र यह शायद ही समझते हैं कि वे विद्यालय में क्यों हैं? वे विभिन्न विषयों को क्यों पढ़ रहे हैं और विद्यालयीय शिक्षा उनके लिए किस प्रकार सहायक हो सकती है? उनकी समझ केवल विषयों के अधिगम तक ही सीमित है। उन्हें शायद ही पता है कि उन्हें अपना जीवन किस प्रकार जीना चाहिए? राष्ट्र के कल्याण के प्रति स्वयं को किस प्रकार प्रतिबद्ध करना चाहिए? पर्यावरण एवं अन्य सामाजिक तथा नैतिक मुद्दों के बारे में किस प्रकार परवाह करनी चाहिए? उन्हें यह स्पष्ट नहीं है कि विद्यालयीय शिक्षा पूरी करने के पश्चात् उन्हें किस प्रकार का व्यक्ति बनना है।

❖ इस तरह की शिक्षा बालकों को मशीन बना देती है। यह परिप्रेक्ष्य शिक्षा के मौलिक उद्देश्य जिसका तात्पर्य व्यक्तित्व के सम्पूर्ण विकास से है, को परास्त करता है– इसमें नैतिकता का विकास भी

सम्मिलित है जो नैतिक द्वन्द्वों के मामले में उत्तरदायित्व पूर्ण निर्णय लेने का आधार है।

❖ मूल्य क्या हैं?

- मूल्य दिन-प्रति-दिन के मानवीय व्यवहार और क्रिया को नियंत्रित एवं संचालित करते हैं। मूल्य हमारे प्रत्येक क्षेत्र में, कथन में, पहनावे में, बातचीत के तरीके में, हमारी धारणाओं और दूसरों से प्रतिक्रियाओं की व्याख्या करने में, 'हम क्या है' आदि में सन्निहित है। मूल्य अभिरूचियों, विकल्पों, आवश्यकताओं, इच्छाओं और वरीयताओं के आधार पर निर्मित होते हैं। ये सभी मूल्यों के निर्माण में केन्द्रक का कार्य करते हैं। मूल्यों में एक चयनात्मक अथवा दिशात्मक गुण होता है। जब वरीयताएँ कुछ निश्चितता, तीव्रता और स्थिरता का अधिग्रहण करती हैं; ये हमारे व्यवहार में न्याय, विकल्प कार्य और निर्णय लेने के मानदण्ड बन जाती हैं। इस प्रकार मूल्य को एक प्रकार से आंतरिक श्रद्धा या स्थायी विश्वास माना जाता है जिसके अनुसार मनुष्य वरीयता के आधार पर कार्य करते हैं।

- अतः यह स्पष्ट है कि मूल्य-चिंतन में प्रक्रियाएँ, भावनाओं को जानना या समझना एवं क्रियाएँ आदि सम्मिलित हैं। इसके अन्तर्गत भावनाएँ, यथा– किसी वस्तु के प्रति पसंदगी, जिसे व्यक्ति मूल्यवान समझता है, उसके प्रति उसका गहरा लगाव आदि सम्मिलित हैं। लोगों के कार्यों से अक्सर ही हमें उनके मूल्यों के बारे में संकेत मिलता है। यदि हम यह देखने का प्रयास करें कि कोई व्यक्ति अपने खाली समय में क्या कर रहा है; जब उसे उस कार्य को करने के लिए कोई धमकी या दबाव न हो तो हमें उसके मूल्यों के बारे में कुछ संकेत मिल सकते हैं।

- शिक्षा के संदर्भ में हम मूल्यों को बिना किसी अंतिम संदर्भ के उसकी आंतरिक उपयोगिता की कसौटी पर समझते हैं। ऐसे मूल्यों को शाश्वत या आंतरिक मूल्य कहा जाता है, जो और किसी अन्य साधन के स्थान पर स्वयं में शुभ होते हैं। सत्य, प्रसन्नता, शांति, सौन्दर्य जैसे मूल्यों को आंतरिक मूल्य कहते हैं जो कि किसी भी समाज के लिए वांछनीय हैं।

- मूल्यों का विश्लेषण किसी देश की सामाजिक व्यवस्था, सांस्कृतिक बनावटों (प्रतिमानों) और शैक्षिक संदर्भ में किया जा सकता है।

निम्नांकित विवरण इन बिन्दुओं पर एक सम्प्रत्ययात्मक टिप्पणी प्रस्तुत करता है:

- मूल्य और संस्कृति आपस में एक दूसरे से निकटता से सम्बन्धित हैं। समाज वैज्ञानिक संस्कृति के तत्वों यथा- कलाकृतियों, रस्मों और समारोहों, नायकों, व्यावहारिक मानदण्डों, साझा मूल्यों और अमूर्तता के विभिन्न स्तरों पर आधारभूत अवधारणाओं का विश्लेषण करते हैं।

- हालांकि सांस्कृतिक तत्वों की गहरी जड़ें कम दर्शनीय होती हैं और कभी-कभी ही अन्वेषित की जाती हैं।

- अपेक्षाकृत अधिक सामान्य विचारों और आधारभूत मान्यताओं का शाब्दिक सूत्रीकरण अक्सर ही पहुँच के बाहर होता है क्योंकि समुदाय में सामाजिक आम सहमति उन्हें चुनौतियों से बचाती है। इस संदर्भ में संस्कृति का अदृश्य लेकिन मौलिक आयाम मूल्यों से आरम्भ होता है।

- यद्यपि किसी एक संस्कृति के अन्तर्गत व्यक्तिगत मूल्य प्रणाली अलग–अलग होती है, फिर भी समुदाय उन मानकों को साझा करते हैं, जो एक संस्कृति को दूसरी संस्कृति से अलग करते हैं। यद्यपि यह अवधारणा कुछ सांख्यिकीय और वैचारिक बहस/मतभेदों को आमंत्रित कर सकती है तथापि आमतौर पर कुछ ऐसे मूलभूत तथ्य परिलक्षित होते हैं जहाँ एक संस्कृति केवल एक ही प्रणाली है। संक्रियात्मक तंत्र (सामाजिक, स्वास्थ्य, कल्याण अथवा शिक्षा) उन्हीं मूल्यों को प्रतिबिम्बित करते हैं, जिन्हें वे पसन्द करते हैं।

- समाज के मूल्यों के सम्बन्ध में किये गये अधिकांश परीक्षण समाज के सदस्यों के बीच साझा मूल्यों को ध्यान में रखते हुए संस्कृति पर विचार करते हैं। यद्यपि विभिन्न अनुशासनों यथा– मानविकी तथा समाज विज्ञानों में संस्कृति विषयक अध्ययन नये नहीं हैं; शिक्षा को संस्कृति से जोड़ने, विशेष रूप से औपचारिक शिक्षा प्रणाली के संदर्भ में, का प्रयास अपेक्षाकृत अद्यतन सोच का हिस्सा है तथा यह बिरला है, जिसे हम आश्चर्यजनक ही कह सकते हैं। शिक्षा एक आधारभूत मानवीय क्रिया है तथा अपनी प्रकृति के अनुसार संस्कृति से सम्बन्धित होती है।

– शिक्षा की सांस्कृतिक भूमिका को देर से पहचानने का एक स्पष्टीकरण यह हो सकता है कि शिक्षाविद आमतौर से एक ही संस्कृति में अध्यापन करते हैं। अतः वे दूसरी संस्कृति के प्रति कम संवेदनशील होते हैं। जैसा कि कहा जाता है कि "मछली ही पानी में रहकर भी पानी की खोज करने वाली अंतिम जीव है।" अधिकांश शिक्षाविद् एक ऐसे वातावरण में कार्य करते हैं जो वैकल्पिक सांस्कृतिक मूल्यों से अप्रदूषित हैं। मूल्यों से सम्बन्धित मान्यताओं को अधिकांशतः बेकार मान लिया जाता है। यदि शिक्षा को ऐसा क्षेत्र बनाना है जो सांस्कृतिक मूल्यों को सबसे अच्छी तरह से संरक्षित करने वाला हो जाए, तब वर्तमान प्रणाली गम्भीर अध्ययन एवं मूल्यांकन के योग्य है। मानव वैज्ञानिकों ने बालक के पालन-पोषण को वहाँ की देशज संस्कृतियों को समझने के लिए व्यक्ति की शिक्षा की एक अवस्था के रूप में माना है। इस संदर्भ में शिक्षा का साहित्य और मूल्य अत्यधिक महत्वपूर्ण और प्रासंगिक प्रतीत होते हैं।

❖ मूल्यों का शिक्षण-शास्त्र

- शिक्षण-शास्त्र शिक्षण के विज्ञान और कला को संदर्भित करता है जिसमें अध्यापक, शिक्षार्थियों की वृद्धि और विकास की प्रक्रिया में उनके साथ होते हैं। यह केवल विषय वस्तु के शिक्षण से ही सम्बन्धित नहीं है बल्कि सम्बन्धों के पूरे परास, प्रक्रियाओं, रणनीतियों के बारे में है जो सीखने को बढ़ाने के लिए अभिकल्पित किये गये हैं। मूल्यों के शिक्षण को पारंपरिक अध्यापन से भिन्न होना चाहिए। पारंपरिक अध्यापन, शिक्षा के अधिकोषण प्रतिमान से सम्बन्धित है, जो सीखने वाले की अपेक्षा विषयवस्तु पर अधिक बल देता है। शिक्षा का बैकिंग प्रतिमान अध्यापक को विद्यार्थी के ज्ञान का प्रमुख स्रोत समझता है। इसके अनुसार विद्यार्थी खाली बर्तन होते हैं जिनमें ज्ञान को भरा जाना चाहिए। वर्ष के अंत में, एक परीक्षा यह देखने के लिए तय कर दी जाती है कि विद्यार्थी ने कितना ज्ञान प्रतिधारित किया है।

- इस प्रकार का प्रतिमान शिक्षक को अधिक अवधान प्रदान करता है और विद्यार्थियों को दर्शकों के समान समझता है जो शिक्षकों के सम्मान में शांतिपूर्वक बैठे रहते हैं। अध्यापक और छात्र के मध्य अन्तर्संवाद न्यूनतम होते हैं, दूसरी ओर मूल्यों का शिक्षण-शास्त्र इस धारणा पर आधारित है कि विद्यार्थी अपने सिद्धान्त को स्वयं

संरचित करते हैं कि दुनिया किस प्रकार कार्य करती है; हालांकि उनकी बुद्धि वयस्कों की तुलना में कम विकसित है।

- मूल्यों का शिक्षण किसी अन्य विषय के शिक्षण की तरह नहीं है। यह छात्रों को यह सिखाने के बारे में है कि किसी वस्तु के विषय में कैसे सोचना है, उस पर कैसे गहन विचार करना है, समीक्षात्मक मूल्यांकन करना है, अपने और दूसरों के मूल्यों के प्रति प्रशंसा, अच्छे सम्प्रेषण का विकास, निर्णय लेने की क्षमता का शिक्षण है जिससे सम्बन्धित अवधारणा व्यवहार एवं कार्य में अपने आप प्रगट होने लगें। यह संज्ञानात्मक स्तर तक ही सीमित नहीं है, बल्कि भावनात्मक एवं व्यावहारिक स्तरों को भी सम्मिलित करता है। उदाहरणस्वरूप, किसी अवधारणा जैसे– सहकार को समझना ही पर्याप्त नहीं है। अंततः यह सुनिश्चित करने का प्रयास करना चाहिए कि सहकारिता हमारा आंतरिक स्वभाव बन जाये। अभिवृत्तियों, मूल्यों एवं कौशलों का विकास विद्यार्थियों को बल पूर्वक याद करा के नहीं हो सकता, नहीं उसे थोपने से। उन्हें अभिवृत्तियों एवं मूल्यों का आन्तरीकरण करने के लिए अनुभव एवं अवसर प्रदान किया जाना चाहिए जिससे ऐसे व्यवहारों एवं मूल्यों को दीर्घकालिक रूप से आत्मसात किया जा सके। इसके बाद ही विद्यार्थी जिम्मेदारी और ज्ञानपूर्वक मूल्यों के अभ्यास का संज्ञान आधारित निर्णय ले सकते हैं। उदाहरण के लिए : करूणा की समझ विकसित करने के कई तरीके हो सकते हैं। यह करूणा प्रसिद्ध व्यक्तियों के जीवनियों को पढ़ने से भी विकसित हो सकती है। यह विद्यालय एवं घर में अनुभव द्वारा प्रेम एवं करूणा का वातावरण विकसित करके भी आत्मसात की जा सकती है। इसे विद्यार्थियों को दूसरों की पीड़ा और जरूरतमंदों एवं वंचितों की सेवा करना सीखा कर भी संपोषित किया जा सकता है।

- अतः इस प्रकार की शिक्षा की शैक्षणिक मांग है कि परम्परागत अधिकोषण प्रतिमान से हटकर अनुभव और सहभागिता के प्रतिमान को अपनाया जाय। इस प्रतिमान की मान्यता है कि यह महत्वपूर्ण नहीं है कि आप क्या पढ़ा रहे हैं, बल्कि यह महत्वपूर्ण है कि आप किस तरह से पढ़ा रहे हैं और यही मूल्य शिक्षा का सार तत्व है। इसके अभाव में मूल्य शिक्षा एक प्रकार से केवल कर्तव्य मात्र बनकर रह जाती है जिन्हें विद्यालय पूरा करने का दावा करते हैं। जबकि मूल्य शिक्षा का तात्पर्य संवाद के विभिन्न तरीकों से सम्बन्ध बनाने और उनके साथ रहने तथा शिक्षण को अपनाने के तरीकों में प्रयोग करने और ठोस शिक्षण अनुभव प्रदान करने के तरीके अपनाने से है।

3. अध्यापक प्रशिक्षकों के लिए मूल्य शिक्षा : प्रभाविता लाने की युक्ति

❖ हाल के वर्षो में, हमारे देश में मूल्य शिक्षा का मुद्दा शैक्षिक परिचर्चाओं के विभिन्न स्तरों पर प्रमुखता से उभरा है। इस मुद्दे को राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में राष्ट्रीय प्राथमिकता के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस नीति की घोषणा के अनुसार– "आवश्यक मूल्यों के क्षरण पर बढ़ती चिंता और समाज में बढ़ती हुई एक प्रकार की सनक ने सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों के विकास हेतु शिक्षा को एक सशक्त उपकरण बनाने की जरूरत पर बल दिया है तथा पाठ्यक्रम में इसके पुनर्समायोजन की आवश्यकता पर ध्यान केन्द्रित किया है।" प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा के राष्ट्रीय पाठ्यक्रम (1985) के अनुसार हमारा समाज मूल्यों के संकट से गुजर रहा है। यह स्थिति मूल्य के विकास की दिशा में अधिक सुस्पष्ट और संकल्पित शैक्षिक प्रयासों की मांग करती है। शिक्षकों पर गठित राष्ट्रीय आयोग (राष्ट्रीय शिक्षक आयोग 1983) के प्रथम कार्यकाल का संदर्भ था– "प्रमुख रूप से शिक्षण पेशे के लिए सुस्पष्ट उद्देश्यों को निर्धारित करने पर बल देना जिससे बालक में व्यापक दृष्टिकोण, उत्कृष्टता, खोजी प्रवृत्ति और मूल्यों का विकास हो सके।" शिक्षक-प्रशिक्षकों की समीक्षा के लिए 1983 में भारत सरकार द्वारा गठित कार्य समूह ने मूल्य-उन्मुखीकरण की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुए पाठ्यक्रम, कार्य प्रणाली और शिक्षकों की भूमिका के अलावा मूल्य शिक्षा के लक्ष्य को भी अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों में समावेशित करने की सिफारिश की है। अब यह तेजी से महसूस किया जा रहा है कि अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में विशेष रूप से बदलाव की आवश्यकता है जिससे कार्य स्थलों पर मूल्य और नैतिकता को समाहित किया जा सके।

❖ आम तौर पर अध्यापक शिक्षा में प्रयुक्त मूल्य-शिक्षा का तात्पर्य सीखने का एक व्यापक दृष्टिकोण और शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक स्वच्छता, शिष्टाचार, उचित सामाजिक व्यवहार, नागरिक अधिकारों तथा कर्तव्यों का ज्ञान, कलात्मक तथा धार्मिक प्रशिक्षण आदि गतिविधियों से है।

❖ कुछ लोगों के लिए, मूल्य शिक्षा बस कुछ खास गुण और आदतों के उपदेश से जुड़े उचित व्यवहार और आदतों के विकास की बात है। इस तरह की अवधारणा के विरोध में यह बताया गया है कि मूल्य शिक्षा में अनिवार्यतः एक संज्ञानात्मक घटक है जिसे नजरअंदाज नहीं किया जाना चाहिए। वस्तुतः तर्कसंगत निर्णय लेने

की क्षमता मूल्य शिक्षा का बहुत महत्वपूर्ण उद्देश्य है और इसका विकास सतर्कता पूर्वक किया जाना चाहिए।

❖ कुछ लोगों के लिए एक बच्चे का नैतिक विकास सहज रूप से विद्यालय के सामाजिक जीवन का परिणाम होता है। समूह के एक सदस्य के रूप में बालक उस समूह की अभिवृत्ति, मूल्यों और सामान्य व्यवहार को आत्मसात करते हैं तथा समूह के आदर्शों के अनुसार खुद को ढालने की कोशिश करते हैं। जीवन के इस तरह के समायोजन के फलस्वरूप उनका नैतिक विकास होता है। मूल्य शिक्षा बालक में इस तरह के समायोजन की एक प्रक्रिया है। इस तरह का दृष्टिकोण इस आधार पर विवादित हो जाता है कि बच्चे विद्यालय के परिवेश से समूह के नियमों को सीखते हैं, परन्तु ऐसा शिक्षण मूल्य शिक्षण को संस्थापित नहीं करता। क्योंकि नैतिकता के लिए यह अवधारणा महत्वपूर्ण है कि इसका सम्बन्ध, 'अधिकतम क्या होना चाहिए' से न होकर 'क्या किया जाना चाहिए' से है।

❖ एक अन्य दृष्टिकोण के अनुसार मूल्य शिक्षा का तात्पर्य अनिवार्यतः भावनाओं और संवेगों को शिक्षित करने से है। यह 'हृदय का प्रशिक्षण है' तथा सही भावनाओं एवं संवेगों को विकसित करने से जुड़ा है जिसका जिक्र स्वामीजी अक्सर अपने व्याख्यानों में करते थे। यह ऐसी किसी संज्ञानात्मक योग्यताओं को शामिल नहीं करता, जिसका प्रशिक्षण दिया जा सके। कविता की तरह ही इसे आत्मसात किया जा सकता है, लेकिन सिखाया नहीं जा सकता। यह अनिवार्य रूप से सही माहौल बनाने, उसका अनुसरण करने तथा प्रकृति से उदाहरण स्वरूप सीखने अथवा स्वयं को एक आदर्श के अनुसार ढालने की प्रक्रिया है। इस तरह के दृष्टिकोण का यह कहकर विरोध किया जाता है कि किसी अच्छे व्यक्ति के अनुसरण अथवा किसी आदर्श के अनुरूप स्वयं को विकसित करने से किसी व्यक्ति में नैतिकता नहीं आ सकती। वास्तव में नैतिकता कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो सामान्यतः एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में प्रस्फुटित हो जाए। नैतिक विकास का आशय नैतिक सोच और नैतिक व्यवहार दोनों से है। नैतिक सोच एक विशेष प्रकार की सोच है जो तर्कसंगत विकल्पों के अभ्यास में निहित है। एक नैतिक व्यक्ति वह है जो न 'सिर्फ' सही बात करता है अपितु वह 'सही कारण' के लिए सही बात करता है।

❖ मूल्य शिक्षा के उद्देश्य

- शैक्षिक उद्देश्यों का सम्बन्ध उन तरीकों के सुस्पष्ट निरूपण से है जिसमें शैक्षिक प्रक्रिया द्वारा छात्रों में बदलाव लाने की सम्भावना

हो। इसका तात्पर्य उन तरीकों से है जो छात्रों की सोच, भावनाओं और उनके कार्यों को प्रभावित कर सकें। मूल्य शिक्षा या किसी अन्य पाठ्यक्रम के उद्देश्य विभिन्न कारकों जैसे मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, ज्ञान-मीमांसा आधारित कारकों पर निर्भर करते हैं।

- मूल्य उन्मुख शिक्षा पर गठित पूर्व सन्दर्भित कार्य-समूह ने इसके पाँच आयामों की पहचान की है, जो इस प्रकार हैं– शारीरिक शिक्षा, सांवेगिक शिक्षा, मानसिक विकास, सौन्दर्यात्मक विकास और नैतिक तथा आध्यात्मिक शिक्षा। कार्य-समूह की दृष्टि में नैतिक और आध्यात्मिक क्षेत्र में अपनाये जा रहे मूल्य निम्नवत् हैं– ईमानदारी, निष्ठा, व्यक्ति जिसे सर्वोत्तम रूप में अंगीकृत कर लेता है उसके प्रति वफादारी, आभार, सच्चाई, उदारता, परोपकार, उत्साह, निःस्वार्थता, अहंकार से मुक्ति, सुख और दुःख में धैर्य, सम्मान और अपमान, सफलता और विफलता, निरपेक्ष एवं चरम सत्य से सम्बन्धित अत्यन्त गहन एवं उच्चतम की खोज तथा विचार, भावना और कार्य में इस निरपेक्ष एवं चरम की उत्तरोत्तर अभिव्यक्ति।

- कई देशों में आज सामाजिक-आर्थिक पुनर्निर्माण पर ध्यान दिया जा रहा है जिससे कि समान वितरण की मंशा के साथ-साथ आधुनिकीकरण का भी लाभ उठाया जा सके। परम्परागत सांस्कृतिक मूल्यों के कारण आधुनिकीकरण की विशेषताओं को समायोजित करने की दृष्टि से बहुत थोड़ा समय मिला है। इस कारण मूल्य शिक्षा पाठ्यक्रम के योजनाकार मूल्यों और चारित्रिक विशेषताओं को पहचानने की समस्याओं का सामना कर रहे हैं जो किसी व्यक्ति को आधुनिक समाज में सामंजस्य बैठाने में सहयोग करती हैं। मूल्य शिक्षा के उद्देश्यों को ऐसा होना चाहिए जिससे परम्परा और परिवर्तन के बीच संघर्ष द्वारा उत्पन्न तनाव को पाठ्यक्रम द्वारा चिन्हित किया जा सके। कार्यक्रम योजना का लक्ष्य हमारे विद्यार्थियों में एक महत्वपूर्ण मूल्य परिप्रेक्ष्य का विकास होना चाहिए जिससे उन्हें मानव जाति के विकास के लिए आधुनिक कौशल अर्जित करने हेतु सक्षम बनाया जा सके तथा इसके साथ ही उन्हें मौलिक एवं परम्परागत मूल्यों के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को नवीनीकृत करने में भी मदद मिले।

- वेद और उपनिषद् जो हमारे प्रेरणास्रोत हैं, मूल्यों से भरे पड़े हैं। मूल्य शिक्षा जीवन के हर बिन्दु पर महत्वपूर्ण है। वेद कहते हैं– सच बोलो, अपने कर्तव्यों को पूरा करो, स्वाध्याय में कभी ढील मत दो। मूल्य आधारित शिक्षा का केन्द्रीय कार्य व्यक्ति में सद्भावना का विकास करना है जिससे वे धोखा, चोरी, हत्या आदि कार्यो में

संलिप्त न हों; ऐसे सार्वभौमिक व्यक्तियों का विकास जो स्वयं व मानव जाति दोनों को महत्व देते हों।

❖ अध्यापक प्रशिक्षक एवं नैतिक दायित्व

- कुछ ऐसे बुनियादी नैतिक दायित्व हैं जो शिक्षक एवं अध्यापक-प्रशिक्षकों दोनों पर समान रूप से लागू होते हैं। इनका पहला नैतिक दायित्व उत्कृष्ट शिक्षा प्रदान करना है। वे शिक्षक जिनमें नैतिक व्यावसायिकता का स्तर उच्च है छात्रों को सीखने में मदद करना अपना गहरा दायित्व समझते हैं। वेन (1995) और हमारे स्वयं के दृष्टिकोण से वे शिक्षक जिनमें उत्तरदायित्व की भावना होती है अपने नैतिक व्यावसायिकता को निम्नानुसार प्रदर्शित करते हैं–

  (i) नियमित रूप से और समय पर काम के लिए आना;

  (ii) अपने छात्रों और उनकी पृष्ठभूमि के बारे में पूरा ज्ञान रखना;

  (iii) योजनापूर्ण और सावधानीपूर्वक कक्षाओं का आयोजन करना;

  (iv) शिक्षण पद्धतियों की नियमित रूप से समीक्षा करना और अद्यतन जानकारी हासिल करना;

  (v) आशा से कम सफलता पाने वाले छात्रों के माता-पिता से सहयोग या आवश्यकता के अनुसार उनका सामना करना;

  (vi) सहयोगियों के साथ सहयोग करना तथा विद्यालय की नीतियों पर दृष्टि डालना जिससे पूरी संस्था प्रभावी ढंग से काम कर सके;

  (vii) चतुराई किन्तु दृढ़ता से विद्यालय की असंतोषजनक नीतियों और प्रथाओं की आलोचना करना तथा रचनात्मक सुधार का प्रस्ताव देना;

  (viii) आंतरिक मूल्यों और विवेक की भावना स्थापित करना; तथा

  (ix) शिक्षक और शिष्य के बीच भूमिका प्रत्यक्षीकरण एवं भूमिका संबंधों से संबंधित सभी मामलों में परस्पर देखभाल और सहभाजन की संस्कृति को बढ़ावा देने के लिए प्रोत्साहित करना।

- यद्यपि, अतीत में, अध्यापक तैयार करने के कार्यक्रमों आचार संहितायें महत्वपूर्ण भूमिका नहीं निभाती रही हैं, आज के संदर्भ में, अध्यापकों के व्यावसायिक आचार एवं व्यवहार पर विशेष ध्यान देने की अपेक्षा है। अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम के लिए नैतिक मूल्यों एवं

आचार संहिता के विविध घटकों को संक्षिप्त रूप में अधोलिखित प्रकार से इंगित किया जा सकता है:

(i) नैतिक संवेदनशीलता– हमारे कार्य अन्य लोगों को कैसे प्रभावित करते हैं, इससे संबंधित जागरूकता। इसका तात्पर्य कार्यवाही के विभिन्न स्वरूपों और प्रत्येक स्वरूप का संबंधित पक्षों पर पड़ने वाले प्रभाव से सम्बन्धित जानकारी से है। इसमें वास्तविक दुनिया की कारण-परिणाम श्रृंखला, तद्नुभूति और भूमिका को स्वीकारने की योग्यता संबंधी जानकारी भी शामिल है।

(ii) नैतिक निर्णय– यह पियाजे (1965) और कोहलबर्ग (1984) के कार्य पर आधारित है। यह क्या निष्पक्ष और नैतिक है, इसके अन्तर्बोध को शामिल करता है। इसमें जटिल मानवीय गतिविधियों के बारे में नैतिक निर्णय लेने के लिए वयस्कों की आवश्यकता भी सम्मिलित है।

(iii) नैतिक अभिप्रेरणा– इसके लिए पेशेवर वातावरण में विशेष रूप से नैतिक मूल्यों को व्यक्तिगत मूल्यों से अधिक प्राथमिकता देने की आवश्यकता होती है।

(iv) नैतिक चरित्र– यह व्यक्तियों को अपनी नैतिक प्रतिबद्धता पर कार्य करने की आवश्यकता पर बल देता है। नैतिक संवेदनशीलता को बढ़ाने के लिए प्रशिक्षण रणनीतियों में वार्तालाप गतिविधि को शामिल किया जाना चाहिए जिससे सेवापूर्व शिक्षकों को पेशेवर दुविधाओं तथा उनके कार्यों का दूसरे पर पड़ने वाले प्रभाव के प्रति संवेदनशील बनाया जा सके। इसके अतिरिक्त नैतिक निर्णय से सम्बन्धित प्रशिक्षण की युक्तियों में व्यावसायिक, नैतिक निर्णयों हेतु प्रयुक्त होने वाले मानदण्डों का प्रत्यक्ष शिक्षण भी सम्मिलित किया जाना चाहिए, ऐसा उन प्रकरणों में विशेष रुप से जो पूर्व संसूचित सहमति, पैतृकवाद एवं गोपनीयता भंग करने से जुड़े हों। इस घटक को ध्यान में रखकर निर्धारित व्यावसायिक आचार संहिताओं में उन अपेक्षित कार्यों का संदर्भ देना चाहिए जो उनमें इंगित हैं।

- नैतिक प्रेरणा प्रशिक्षण में पेशा-विशिष्ट सेवागत विधियों तथा पेशेवर नैतिक मिसाल के अध्ययन को शामिल किया जाना चाहिए तथा नैतिक चरित्र प्रशिक्षण में समस्या हल करने की रणनीति तथा बच्चों एवं वयस्कों के मध्य संघर्ष मिटाने की रणनीति को भी शामिल किया जाना चाहिए।

❖ नैतिक और चरित्र शिक्षा को प्रभावी बनाना

- ऐतिहासिक प्ररिप्रेक्ष्य में चरित्र निर्माण की अवधारणा नैतिक शिक्षा के आधारभूत सिद्धान्त के रूप में संरचित रही है, जिसमें पुरानी पीढ़ी द्वारा युवाओं का चरित्र निर्माण करना कर्तव्य माना जाता था। उदाहरण के रूप में अरस्तू ने उत्कृष्टता के विकास के सम्बन्ध में यह कहा था कि किसी भी शिल्प में उत्कृष्ट बनने के लिए जिसमें गुणवान होना भी सम्मिलित है, हमें उस व्यवहार को आचरण में लाना आवश्यक है। उन्होंने कहा 'हम न्यायसंगत कार्यों को करके ही न्यायसंगत बनते हैं, आत्म-नियंत्रण का अभ्यास करके ही आत्म-नियंत्रित बनते हैं तथा बहादुरी का कार्य करके ही बहादुर बनते हैं। अतः यह कोई बड़ी बात नहीं है कि हम बाल्यावस्था से ही कोई एक या अन्य आदत अर्जित कर लेते हैं; इसके विपरीत ऐसा करना अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है।'

- यदि शिक्षकों को उचित प्रशिक्षण दिया जाए तो वे कक्षा में एक उपयुक्त वातावरण द्वारा बच्चों में इन सकारात्मक प्रवृत्तियों में वृद्धि कर सकते हैं। यह कोई संयोगवश नहीं होता है कि कुछ विद्यालय छात्रों के नैतिक विकास को सम्बोधित करने में अधिक निपुण होते हैं। अच्छे विद्यालय सदाचार के लिए योजना बनाते हैं। उनके पाठ्यक्रम में नैतिक कृत्यों के संदर्भ होते हैं तथा छात्रों को उनके नैतिक व्यवहारों के लिए चिन्हित तथा पुरस्कृत किया जाता है।

  समग्र वैचारिक चिंताओं और उनके विश्लेषण की पृष्ठभूमि में कुछ व्यावहारिक तथा तथ्यात्मक दिशा निर्देशों पर दृष्टिकोण डालना उपयुक्त होगा। ये सुझाव जो परम पावन दलाई लामा (2012) द्वारा रोजमर्रा की जिंदगी में अमल के लिए बताये गये हैं, बहुत पहले स्वामी विवेकानन्द द्वारा दिये गये प्रेरणादायक व्याख्यानों के माध्यम से की गई पेशकश के भी अनुरूप हैं। ये दिशा-निर्देश यहाँ प्रस्तुत हैं–

- आचार बस जानने की बात नहीं है, इसे करना अधिक महत्वपूर्ण है। किसी कारणवश सबसे अधिक परिष्कृत नैतिक समझ को भी यदि दैनिक जीवन में लागू नहीं किया जाए तो वह कुछ हद तक व्यर्थ है। नैतिक जीवन जीने के लिए न केवल नैतिक दृष्टिकोण के प्रति जागरूकता आवश्यक है, अपितु हमारे दैनिक जीवन में आंतरिक मूल्यों का विकास और इसे लागू करने की प्रतिबद्धता भी जरूरी है।

- अब, प्रश्न उठता है कि रोजमर्रा की जिंदगी में नैतिकता को कैसे व्यवहार में लाया जाए? इस संदर्भ में इस प्रक्रिया के तीन घटकों या स्तरों पर विचार करना सहायक सिद्ध हो सकता है। प्रत्येक स्तर उत्तरोत्तर अधिक उन्नत है और अपनी सफलता के लिए पूर्व के स्तरों पर निर्भर है। जैसा कि कुछ शास्त्रीय बौद्ध ग्रंथों में उल्लिखित है, ये इस प्रकार हैं: संयम की नीति– जानबूझकर दूसरों का वास्तविक या सम्भावित नुकसान करने से बचना; सदाचार की नीति– हमारे सकारात्मक व्यवहार और आंतरिक मूल्यों के विकास को सक्रियता से बढ़ावा देना; और परोपकारिता की नीति– अपने जीवन को सही अर्थों में और निःस्वार्थ भाव से दूसरों के कल्याण के लिए समर्पित करना।

- प्रभावी होने के लिए हमारे सभी व्यवहारों को इन तीनों चरणों से सम्बन्धित करके विचार किया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, न सिर्फ हमारे बाहरी शारीरिक क्रियाओं, बल्कि हम क्या कहते हैं तथा अंततः हमारे सभी विचारों और संकल्पों में इन तीनों नीतियों का समावेश होना चाहिए। व्यवहार के तीनों स्तरों यथा– कर्म, वचन और मन में मन सबसे महत्वपूर्ण है क्योंकि हमारे सभी कार्यों और कथनों की उत्पत्ति मन से ही होती है।

- केवल कार्यों और कथनों पर ध्यान केन्द्रित करना, उसी प्रकार होगा जैसे कोई चिकित्सक बीमारी के मूल कारणों पर ध्यान देने के स्थान पर केवल उसके लक्षणों को सम्बोधित करे। किसी इलाज के प्रभावी होने के लिए समस्या के स्रोत का पता होना आवश्यक होता है। इसे ध्यान में रखते हुए नैतिक सावधानी के सभी अभ्यास मुख्य रूप से मन के प्रशिक्षण से सम्बन्धित हैं। लेकिन मन के प्रशिक्षण द्वारा हृदय को शिक्षित करने के मुद्दे पर जाने से पहले शरीर तथा वाणी विषयक विध्वंसकारी आदतों को त्यागने का महत्व समझ लेना उपयुक्त होगा क्योंकि आचार संहिता को व्यवहार में लाने की यह प्रथम अवस्था है।

- किसी को कोई नुकसान न पहुँचाने के सिद्धान्त के संदर्भ में जैन परंपरा से विशेष रूप से प्रभावित हुआ जा सकता है। जैन धर्म, जो बौध धर्म के लिए जुड़वा धर्म की तरह है, सभी प्राणियों के प्रति अहिंसा के सदाचार को बहुत महत्व देता है। उदाहरण स्वरूप, जैन भिक्षुक अपनी दैनिक गतिविधियों में यहाँ तक ध्यान रखते हैं कि वे गलती से किसी कीड़े पर पैर न रख दें तथा किसी भी प्राणी को नुकसान न पहुँचायें।

- जैन भिक्षुओं एवं भिक्षुणिओं के अनुकरणीय व्यवहार का अनुसरण करना हम सभी के लिए कठिन है। वे लोग जिनका प्राथमिक विचार चक्र अन्य सभी संवेदनशील प्राणियों की तुलना में मानवता के लिए अधिक अनुसीमित है। अप्रत्यक्ष रूप से भी उनके कार्यों द्वारा दूसरों को नुकसान पहुँचाने में योगदान न करना बहुत कठिन हो सकता है। उदाहरण के लिए– नदियाँ किस तरह प्रदूषित होती हैं? सम्भवतः खनन कम्पनियों द्वारा खनिज निकालने से अथवा औद्योगिक घटकों के उत्पादन संयंत्रों से जो उन प्रौद्योगिकियों के लिए यह महत्वपूर्ण है जो दैनिक जीवन में प्रयोग करते है। उन प्रौद्योगिकियों का हर उपभोगकर्ता प्रदूषण के लिए आंशिक रूप से जिम्मेदार है और इस प्रकार दूसरों के जीवन में नकारात्मक रूप से योगदान करता है। दुर्भाग्य से हमारा ऐसा करने का कोई इरादा न होते हुए भी परोक्ष रूप से अपने कार्यों द्वारा दूसरों को नुकसान पहुँचाना पूर्णतया सम्भव है।

- अतः, यथार्थ के धरातल पर हम अपने प्रतिदिन के जीवन में दूसरों को नुकसान पहुँचाने की प्रवृत्ति को अपने विवेकपूर्ण व्यवहार द्वारा न्यून्यातिन्यून बना सकते हैं तथा उस सहज आन्तरिक कर्तव्यनिष्ठा का अनुसरण कर सकते हैं जो इस विवेक बुद्धि द्वारा उत्पन्न जागरूकता से सीधे सम्बद्ध है।

❖ अहिंसक साधन प्रसूत : अहित

- वाह्य कार्यों से हुआ नुकसान सामान्यतया देखा जा सकता है परन्तु हम अपने वचन/कथन द्वारा जो पीड़ा दूसरों को पहुँचाते हैं वह भी कम हानिकारक नहीं होता है। यह विशेष रूप से हमारे सबसे करीब व अंतरंग संबंधों से जुड़ा है। हम अत्यधिक संवेदनशील होते हैं और कठोर वचनों के उपयोग में अपनी लापरवाही से अपने आस-पास के लोगों को दुःख पहुँचाते हैं।

❖ सतर्कता, सावधानी एवं अभिज्ञता

- जैसे एक बढ़ई छेनी, हथौड़ा और आरी के बिना कुर्सी के मरम्मत के बारे में सोच नहीं सकता, ठीक उसी प्रकार हमें नैतिक जीवन जीने के दैनिक प्रयास में कुछ बुनियादी उपकरणों की जरूरत होती है। स्वामी जी के कथनानुसार बौद्ध परंपरा में भी इन बुनियादी उपकरणों को तीन परस्पर संबंधी कारकों– सतर्कता, सावधानी और अन्तरदर्शनात्मक जागरूकता के रूप में जाना जाता है। ये तीनों विचार पंथ-निरपेक्ष संदर्भ में भी उपयोगी हो सकते हैं। ये हमें अपने

बुनियादी मूल्यों को बनाए रखने में इकट्ठे मदद करते हैं तथा हमारे दिन-प्रति-दिन के व्यवहार का मार्गदर्शन भी करते हैं जिससे हम स्वयं और दूसरों को लाभ पहुँचाने के उद्देश्य से अधिक समीप हो सकें।

- इनमें से पहली सतर्कता, सावधानी पूर्वक एक समग्र रूख अपनाने को दर्शाती है। तिब्बती शब्द 'भक्यो' को अक्सर 'सतर्कता' अथवा 'कर्तव्यनिष्ठा' के रूप में अनुवादित किया जाता है, जिसका तात्पर्य सावधान और चौकस रहने से है। उदाहरण स्वरूप यदि हमें मधुमेह ग्रस्त होने की जानकारी मिलती है तो चिकित्सक हमें बताता है कि हमें रक्तचाप और इन्सुलिन को नियंत्रित करने के लिए चीनी, नमक और वसायुक्त खाद्य पदार्थो से बचना होगा। चिकित्सक हमें चेतावनी देते हैं कि यदि हम इस आहार के पालन में लापरवाही बरतेंगे तो इसका हमारे स्वास्थ्य पर गंभीर परिणाम हो सकता है। जब रोगी अपने स्वास्थ्य की परवाह करेंगे तो वे इस सलाह को मानेंगे और अपने आहार सम्बन्धी सतर्कता बरतेंगे। जब वे कुछ खाने के लिए आकर्षित होंगे, तो उन्हें इस रवैये से बचना होगा तथा सतर्कता का रूख उन्हें संयम बरतने में मदद करेगा।

- आज सावधानीपूर्ण विकास के लिए अनेक पंथ-निरपेक्षी तकनीकी उपलब्ध हैं तथा ये तनाव में कमी और अवसाद के उपचार में प्रभावी सिद्ध हुये हैं । इस संदर्भ में सावधानी का अर्थ आमतौर पर अपने विचारों और भावनाओं सहित अपने व्यवहार के प्रतिमान के बारे में जागरूकता बढ़ाने से है तथा अनुपयोगी आदतों, विचारों और भावनाओं को त्यागने की सीख विकसित करने से है। यह एक बहुत ही सार्थक प्रयास लगता है।

- फिर भी, दिन-प्रति-दिन के आधार पर नैतिकता की दृष्टि से रहने के संदर्भ में 'सावधानी' का सबसे महत्वपूर्ण तात्पर्य है– स्मरणशक्ति। दूसरे शब्दों में, मानसिक रूप से अपने आप को एकाग्र करने और इस तरह अपने बुनियादी मूल्यों और प्रेरणा को याद करना ही सावधानी है। ऐसी स्मरणशक्ति के साथ हम बुरी आदतों का त्याग करने और हानिकारक कर्मों से परहेज करने की सम्भावना को बढ़ावा देते हैं। इसके अभ्यास द्वारा हम कचरा फेंकने, बेकार में समय व्यतीत करने तथा ज्यादा खाने की प्रवृत्ति में सुधार ला सकते हैं।

- अभिज्ञता का तात्पर्य अपने व्यवहार पर ध्यान देने से है। इसका तात्पर्य– अपना व्यवहार जैसा है, उसका ईमानदारी पूर्वक

अवलोकन करना तथा उसे नियंत्रित करना है। अपने कर्मों और कथनों के बारे में जागरूक होकर हम चौकसी से उन कार्यों और वचनों से बच सकते हैं, जिन्हें करने के बाद पछताना पड़ता है। उदाहरण स्वरूप– जब हम कोध्रित होते हैं तो यह पहचानने में असफल होते हैं कि क्रोध हमारी धारणा को विकृत कर रहा है और हम ऐसी बातें कह सकते हैं जिससे हमें कोई मतलब नहीं है। अतः अपने आप पर नजर रखने की क्षमता एक दूसरे स्तर की सावधानी है जो रोजमर्रा की जिंदगी में व्यावहारिक रूप से उपयोगी है। यह हमें अपने नकारात्मक व्यवहार पर अधिकतम नियंत्रण देता है और अपनी मंशा और प्रतिबद्धता के प्रति ईमानदार रहने में सक्षम बनाता है।

- अपने व्यवहार, कर्म, विचारों और वचन के प्रति ऐसी अभिज्ञता हम रातों-रात नहीं ला सकते। दरअसल यह धीरे-धीरे विकसित होती है और हम अधिकाधिक रूप से जागरूक हो इस पर महारथ हासिल कर सकते हैं।

- हालांकि, जागरूकता का अभ्यास, अपनी अंतरात्मा की आवाज सुनने जैसा नहीं है। बुद्ध के नैतिक सिद्धान्त के अनुसार विवेक का अलग मानसिक संकाय के रूप में कोई अस्तित्व नहीं है लेकिन कर्तव्यनिष्ठ होना अभी भी बहुत महत्वपूर्ण है। इसका वर्णन दो प्रमुख मानसिक गुणों के रूप में किया गया है अर्थात, आत्मसम्मान और दूसरों के बारे में विचार करना।

- इनमें से पहला, आत्मसम्मान, व्यक्तिगत निष्ठा की भावना से सम्बन्धित है। यह व्यक्ति की आत्म-छवि और उसके निश्चित मूल्यों की पुष्टि है। अतः जब हम नुकसानदायक व्यवहार में लिप्त होने की ओर आकर्षित होते हैं तो हमारी आत्म छवि बाधक के रूप में काम करती है और हमें ऐसा करना अशोभनीय लगता है। दूसरा मानसिक गुण दूसरों के प्रति सद्भावना है, जो दूसरों की राय के प्रति एक स्वस्थ आदर तथा विशेष रूप से उनके संभावित अस्वीकृति से संबंधित हैं। ये दोनों कारक गलत कार्यों के प्रति हमें अतिरिक्त सतर्कता प्रदान करते हैं जिससे हमारा नैतिक चरित्र मजबूत होता है।

❖ सदाचार की नीति

- यदि हम सावधानी, सतर्कता और अभिज्ञता द्वारा अपनी दिनचर्या में दूसरों को अपने कर्मों और कथनों से नुकसान पहुँचाने से रोक

सकते हैं तो हम सक्रियता से अच्छे कर्मों पर और अधिक गम्भीरता से ध्यान दे सकेंगे तथा यह हमारे लिए अपार हर्ष ओर आंतरिक आत्म विश्वास का स्रोत हो सकता है। हम अपने स्नेही स्वभाव, उदारता, दानशीलता और जरूरतमंद लोगों की मदद स्वरूप किये गये कर्मों के माध्यम से दूसरों को लाभ पहुँचा सकते हैं। अतः जब दूसरों से कोई गलती हो जाए और उन पर विपत्ति की मार पड़े तो उनका उपहास करने या दोषारोपण करने के स्थान पर हमें उनकी मदद करनी चाहिए। अपने कथनों के माध्यम से दूसरों को लाभान्वित करने के लिए हम उनकी तारीफ कर सकते हैं, उनकी परेशानियों को सुन सकते हैं तथा उन्हें सलाह और प्रोत्साहन दे सकते है।

- अपने कथनों और कर्मों के माध्यम से दूसरों को लाभ पहुँचाने में उनकी उपलब्धियों और अच्छी किस्मत के प्रति सहानुभूतिपूर्ण आनंद का रवैया विकसित करना मददगार होता है। यह रवैया, ईर्ष्या के विरूद्ध एक शक्तिशाली मारक है जो न केवल व्यक्तिगत स्तर पर पीड़ा का स्रोत है बल्कि अन्य लोगों तक अपनी पहुँच बनाने और उनसे जुड़ने की हमारी क्षमता में भी बाधक है। तिब्बती शिक्षक अक्सर कहते हैं कि ऐसे सहानुभूतिपूर्ण आनंद हमारे सद्गुणों में वृद्धि के सबसे सरल साधन हैं। बहुत पहले पतंजलि ने भी इस मानसिकता के विकास का विधिवत समर्थन किया था तथा स्वामीजी ने भी इसे अपने प्रवचनों के माध्यम से शिक्षकों एवं युवाओं को समझाया था।

❖ परोपकारिता की नीति

- परोपकारिता सही अर्थ में दूसरों के लाभ के लिए अपने कर्मों और कथ्यों का निःस्वार्थ समर्पण है। विश्व की सभी धार्मिक परम्पराओं में इसे नैतिक आचरण के उच्चतम स्परूप के रूप में पहचान मिली है, तथा बहुतों में यह मुक्ति के मुख्य मार्ग अथवा भगवान से एकीकृत होने के रूप में देखा जाता है। स्वामीजी ने *'सर्वधर्म समभाव'* के माध्यम से इस सोच की बहुत गर्मजोशी और व्यापकता से वकालत की थी।

- यद्यपि दूसरों के लिए पूर्ण और निःस्वार्थ समर्पण नैतिक आचरण का उच्चतम स्वरूप है इसका अर्थ यह नहीं है कि परोपकारिता किसी के द्वारा नहीं की जा सकती। वास्तव में कई लोग जो सामाजिक कार्य, शिक्षण और स्वास्थ्य सेवा आदि के व्यवसाय से जुड़े हैं, नैतिकता के इस तीसरे स्तर का अनुसरण कर रहे हैं। ऐसे व्यवसाय जो कई लोगों के जीवन में प्रत्यक्ष लाभ पहुँचाते है सही

मायने में महान् हैं। अंततः ऐसे अनगिनत अन्य तरीके हैं, जिनके माध्यम से आम लोग ऐसा जीवन यापन कर सकते हैं, जिससे दूसरों का लाभ हो। आवश्यकता है कि हम केवल दूसरों की सेवा करना अपनी प्राथमिकता बनायें और इसी दृष्टिकोण के माध्यम से हमारे शिक्षक और अध्यापक-प्रशिक्षक प्राचीन काल की गुरूकुल प्रणाली में अन्तर्निहित मूल्यों को पुनः स्थापित कर सकते हैं। इस प्रकार वे नये वैश्विक संदर्भों में अत्यावश्यक पेशेवर प्रतिबद्धता को विकसित करने में योगदान दे सकेंगे।

- यह उल्लेखनीय है कि दूसरों की सेवा करने का एक महत्वपूर्ण भाग अपने विवेक के उपयोग से अपने कार्यों के सम्भावित परिणाम का ऑकलन करना है। फिर, अपने दैनिक जीवन में सतर्कता, सावधानी और चौकसी द्वारा हम अपने कर्मों और कथनों पर निपुणता हासिल करने की शुरूआत कर सकेंगे। यह स्वतंत्रता और नैतिकता का मौलिक सिद्धान्त है। ऐसे आत्म-महारथ हासिल करने के माध्यम से व इसके उपयोग द्वारा यह सुनिश्चित करने से कि हमारा कर्म हर स्तर पर गैर-हानिकारक है, हम सक्रिय रूप से दूसरों की भलाई के कार्य को प्रारम्भ कर सकते हैं।

- इस प्रस्तुति का समापन स्वामीजी के प्रवचन की एक बहुमूल्य सलाह से करना उपयुक्त होगा। नैतिकता और नैतिक आचार-संहिता के सम्बन्ध में वे तीन वस्तुओं का उल्लेख करते थे जो हर व्यक्ति और देश को महान बनाने के लिए आवश्यक है:

  - अच्छाई की ताकत पर पूर्ण विश्वास,
  - ईर्ष्या और संदेह का अभाव, और
  - उन सभी की मदद करना जो अच्छा करने और अच्छा बनने का प्रयास कर रहे हैं।

चिन्तन हेतु

1. अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों में मूल्य शिक्षा क्यों आवश्यक है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2. अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में नैतिक आचार संहिता को अनिवार्य उपागम बनाने हेतु तीन तर्कों का उल्लेख करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3. अध्यापक प्रशिक्षकों में नैतिक दायित्व के अन्तर्निविष्ट बनाए जाने हेतु कौन से नए प्रावधान आवश्यक हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

पठन एवं मनन हेतु
(स्वामी विवेकानन्द द्वारा उद्धृत शिक्षाप्रद कथायें)

करूणा की तीव्रता

एक दिन जब महर्षि वाल्मिकि पवित्र गंगा नदी में स्नान करने जा रहे थे तब उन्होंने क्रौंच के एक जोड़े को आकाश में विहार करते और एक दूसरे का चुम्बन करते देखा। महर्षि उसकी यह क्रीड़ा देखकर प्रसन्न हुए, किन्तु दूसरे ही क्षण उनके निकट से एक तीर गुजरा और नर क्रौंच उसके द्वारा मारा गया। वह धरती पर गिर गया और मादा क्रौंच विषाद में भरकर चीत्कार करती हुई अपने प्रिय साथी के शव के चारों और मंडराती रही। उस दृश्य को देखकर महर्षि के अंतःकरण में इतनी वेदना और करूणा उमड़ी कि उन्होंने हत्यारे निषाद को कहा, "तू दुष्ट है। तुझमें दया का रंच मात्र भी नहीं ! तेरा हत्यारा हाथ, प्रेम को देखकर भी नहीं रूका।"

तभी महर्षि ने अपने मन से सोचा, "यह क्या ? यह मैं क्या कह गया ? इस ढंग से तो मैं इसके पूर्व कभी नहीं बोला था ? और तब एक देववाणी सुनायी दी "डरो मत ! यह कविता है जो तुम्हारे मुख से निकल रही है। संसार के कल्याण के लिए राम का चरित्र काव्य में लिखो।" इस प्रकार प्रथम कविता का जन्म हुआ। आदि कवि महर्षि वाल्मिकि के मुख से करूणा के उद्रेक में प्रथम श्लोक का उच्चार हुआ। उसके बाद ही उन्होंने राम चरित्र पर "रामायण" जैसी सुन्दर रचना की।

❖

मतान्ध मत बनो

भारत के वैष्णव लोग जो द्वैतवादी होते हैं, सबसे अधिक असहिष्णु सम्प्रदाय में आते हैं। एक अन्य द्वैतवादी सम्प्रदाय–शैवों में घण्टाकर्ण नामक एक भक्त के बारे में एक कथा प्रचलित है। वह कथा इस प्रकार है; घण्टाकर्ण शिव का इतना कट्टर भक्त था कि वह किसी दूसरे देवता का नाम भी अपने कानों में नहीं सुनना चाहता था। अब उसने अपने दोनों कानों मे दो घंटियां लटका ली थीं, ताकि यदि किसी अन्य देवता का नाम उसके कानों में पड़ने लगे तो वह घण्टियों के स्वर में उस नाम की ध्वनि को दबा दे। शिव के प्रति अकाट्य भक्ति होने के कारण शिव उसे यह समझाना चाहते थे कि शिव और विष्णु में कोई भेद नहीं है। अतएव वे उसके समक्ष आधा विष्णु और आधा शिव का शरीर धारण कर प्रकट हुए। उस समय वह भक्त अपने इष्ट देव का धूपार्जन कर रहा था। किन्तु इस घण्टाकर्ण की मतान्धता इतने परले सिरे की थी कि ज्यों ही उसने देखा कि धूप की सुगंध विष्णु की नाक में प्रवेश कर रही है उससे अपनी उँगली उसमें लगा दी ताकि विष्णु उस मधुर सुगंध का आनंद न ले सकें।

❖

प्रसन्नतापूर्वक सहन करो

न तो कष्टों को निमन्त्रण दो और न ही उससे भागो। जो आता हे, उसे झेलो। किसी चीज से प्रभावित न होना ही मुक्ति है। केवल झेलों ही मत, अलिप्त भी रहो।

सुख मिलने वाला है– बहुत अच्छी बात है। उसे किसने मना किया ? दुःख आने वाला है, उसका भी स्वागत। उस बैल की कथा का स्मरण रखो। एक मच्छर को एक बैल की सींग पर बैठे हुए बहुत देर हो गयी। तब उसके दिल में कुछ चुभा और वह बैल से बोला, श्रीमान बैल! मैं बहुत देर से यहां बैठा हुआ हूँ, शायद इससे आप रूष्ट हो गये होंगे। मुझे इसका खेद है। अब मैं चला जाता हूँ।'' किन्तु बैल ने उत्तर दिया, ''नहीं, नहीं, बिल्कुल नहीं। अब तुम अपने पूरे परिवार को ले आयो और मेरे सींग पर रहो। तुम मेरा बिगाड़ भी क्या सकते हो?'' यही उत्तर हम आपदाओं को भी क्यों न दें।

अभ्यास हेतु

1. स्वंय को जानो कार्यक्रम में 'स्व-जागरूकता' विषयक 5 मिनट के विचारावेश सत्र में स्वंय को सम्बद्ध करें।

2. आपकी कक्षा में ऐसे बच्चे हैं जो असुरक्षा, तनाव और दुश्चिन्ता से ग्रसित हैं। ऐसे किसी एक बच्चे का व्यष्टि अध्ययन कर उसके ऐसे व्यवहार के कारणों का विवरण दें।

3. यह मानते हुए कि जिस विद्यालय से आप सम्बद्ध हैं, वहाँ आप से यह अपेक्षा है कि बच्चों के वयैक्तिक और पारस्परिक भावनाओं में सुधार लायें। आप इस लक्ष्य को सम्पन्न करने हेतु किस प्रकार की योजनायें विकसित करेंगे?

अध्ययन एवं परामर्श हेतु

1. स्वामी विवेकानन्द : *भक्तियोग,* श्रीरामकृष्ण-शिवानन्द-स्मृति ग्रन्थमाला (पुष्प 10), रामकृष्ण मठ, नागपुर, 2005.
2. स्वामी विवेकानन्द : 'वर्तमान भारत' श्री रामकृष्ण-शिवानन्द-स्मृति ग्रन्थमाला (पुष्प 6) नागपुर, 2013.
3. स्वामी विवेकानन्द : 'राष्ट्र को आह्वन', श्री रामकृष्ण-शिवानन्द-स्मृति ग्रन्थमाला (पुष्प 77) रामकृष्ण मठ, नागपुर, 2013.
4. स्वामी विवेकानन्द : 'पत्रावली' श्री रामकृष्ण-शिवानन्द-स्मृति ग्रन्थमाला (पुष्प 34) रामकृष्ण मठ, नागपुर, 2014.
5. स्वामी विवेकानन्द सार्धशती समारोह शृंखला : विश्वजीत पुस्तक माला (12) स्वामी विवेकानन्द सार्धशती समारोह समिति, नई दिल्ली, 2013.
6. स्वामी विवेकानन्द : (संक्षिप्त जीवनी) अद्वैत आश्रम, कोलकाता, 2013.
7. His Holiness The Dalai Lama, *Beyond Religion – Ethics for a Whole World*, Harper Collins Publishers India, New Delhi, 2011.
8. R.R. Gaur, R. Sangal and G.P. Bagaria, *A Foundation Course in Human Values and Professional Ethics*, Excel Books, New Delhi, 2010.
9. John D. Mongomery (Ed.), *Value in Education – Social Capital Formation in Asia and the Pacific*, Pacific Basin Research Centre, Soka University of America, 1997.

10. Swami Ranganathananda, *Indian Philosophy of Social Work*, The Ramkrishna Mission, Institute of Culture Calcutta, 1967.

11. Swami Ranganathananda, *Swami Vivekananda's Synthesis of Science and Religion*, The Ramkrishna Mission, Institute of Culture Calcutta, 1967.

12. Swami Budhananda, *Can One Be Scientific and Yet Spiritual*, Advaita Ashram, Kolkata, 2005.

प्रबल सत्यनिष्ठा प्रबल निष्कपटता

प्रबल अध्यवसाय प्रबल इच्छाशक्ति

– सफलता का रहस्य

"प्रत्येक सफल मनुष्य के पीछे कहीं न कहीं प्रबल सत्यनिष्ठा, प्रबल निष्कपटता अवश्य रहती है और जीवन में उसकी सफलता का यही कारण है। हो सकता है, वह पूरी तरह निःस्वार्थ न हो सका हो, लेकिन फिर भी उसका रुख निःस्वार्थता की ही ओर था। यदि वह पूरी तरह निःस्वार्थ हो जाय तो उसकी सफलता उतनी ही महान् होगी जितनी बुद्ध या ईसा की। सब जगह निःस्वार्थता का स्तर सफलता के स्तर को निर्धारित करता है।

सफल मनुष्य होने के लिए प्रबल अध्यवसाय, प्रबल इच्छाशक्ति आवश्यक है। अध्यवसायशील मनुष्य कहता है, "मैं समुद्र को पी जाऊँगा" "मेरी इच्छा मात्र से पर्वत चूर–चूर हो जाएँगे"। इस प्रकार का तेज, इस प्रकार का दृढ़ संकल्प धारण करो, कठोर परिश्रम करो और तुम लक्ष्य तक पहुँच जाओगे।"

मॉड्यूल्-6

स्वामी विवेकानन्द के विचार : 'दायरे से मुक्त सोच में' योगदान

स्वामी विवेकानन्द का 'दायरे से मुक्त सोच' एक शक्तिशाली प्रतिमान है और यह शिक्षा के अर्थ और संदेश का राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में अत्यन्त सुस्पष्ट भाषा में दृष्टान्तीकरण करता है। उनके प्रत्येक शब्द और विचार में निष्कपट गम्भीरता की गूंज सुनाई देती है। उन्होंने आज के और भविष्य के मनुष्य से सम्बन्ध रखने वाले लगभग सभी विषयों और मुद्दों पर बात की। इस मामले में, उनकी विशाल भविष्य दृष्टि में गुणवत्ता और उत्कृष्टता से लेकर राष्ट्रीय एकता और अन्तर्राष्ट्रीय समझ, शैक्षिक अवसर, जन साधारण की शिक्षा, पर्यावरणीय शिक्षा और प्रबन्ध, नारी सशक्तिकरण, शिक्षक-प्रशिक्षकों के लिए शिक्षक-नेतृत्व का आदर्श और स्वास्थ्य-स्वच्छता तथा योग के माध्यम से सुस्थित जीवन शैली तक विभिन्न विषय सम्मिलित हैं।

इन सभी मुद्दों पर और कई ऐसे प्रश्नों पर युवकों और तमाम अन्य श्रोताओं को जो झुंड के झुंड उनके पास आते थे– परामर्श देते समय वे अत्यन्त सुस्पष्ट और खरी बातें कहते थे। यह माड्यूल् पाठकों के समक्ष उनके द्वारा प्रतिपादित विभिन्न प्रकार के विचारों और अवधारणाओं को प्रस्तुत कर रहा है जो अत्यन्त समृद्ध आध्यात्मिकता के साथ-साथ लौकिक स्रोतों और अन्तर्राष्ट्रीय सिद्धान्तों से सन्दर्भित है। पाठकों को इस मॉड्यूल् के 10 शीर्षकों में से प्रत्येक को खुले दिमाग से पढ़ना होगा। उन्हें शिक्षक-शिक्षा में गुणवत्ता को प्रोत्साहित और प्रोन्नत करने की दृष्टि से इन विषयों और विचारों को आत्मसात् करने की सम्भावनाओं पर चिन्तन-मनन करना होगा क्योंकि यह वर्तमान समय की माँग है।

संपादक

स्वामी विवेकानन्द के विचार: 'दायरे से मुक्त सोच में' योगदान

1. 'दायरे में बन्द सोच' और 'दायरे से मुक्त सोच': भेदक लक्षण

1.1 यदि हम यहाँ उल्लिखित 'दायरे में बन्द सोच' के प्रतिमान के संकेतांकों को लें तो स्वामी विवेकानन्द उस पैमाने पर पूरा खरा उतरते हैं। वे जिस देश-काल से सम्बन्धित थे, उनके विचार उसी तरह सीमित न थे बल्कि कई मामलों में, उनके विचार समय से बहुत आगे थे। वे सचमुच एक नए पथ-निर्माता, सर्वोच्च अनुभूतियों से सम्पन्न प्रभावशाली तेजःपुन्ज, और एक प्रबल प्रेरणादायी व्यक्ति थे। वे न केवल महान् आध्यात्मिक सत्यों की सरलतापूर्वक व्याख्या कर सकते थे बल्कि मानव कल्याण से सम्बन्धित विभिन्न विषयों का प्रतिपादन भी कर सकते थे– चाहे वह विज्ञान, संगीत, विविध कलाएँ या समाज हो। सभी महान् नेताओं के समान वे 'दायरे से मुक्त सोच' करने में दक्ष थे।

1.2 वे एक अन्तः प्रज्ञाशील वैज्ञानिक थे, यद्यपि महान् बुद्धिवादी भी थे। उन्हें अनेक प्रकृति-प्रदत्त गुणों का वरदान प्रचुर मात्रा में प्राप्त था, साथ ही आश्चर्यजनक रूप से वे पश्चिम के उत्कृष्ट गुणों का पूर्व के उत्कृष्ट गुणों के साथ समन्वय करने में भी सक्षम थे। फलस्वरूप, उन्होंने जो कुछ कहा, जो कुछ किया और जिससे भी वे मिले सब पर उन्होंने अपनी अमिट छाप छोड़ी और जादुई जैसा रूपान्तरण किया।

1.3 यह आम तौर पर देखा जाता है कि अधिकांश पेशेवर लोग जो विषय उनके सामने है– उसी के बारे में सोचने के अभ्यस्त होते हैं। उन्हें मायोपिया (निकट दृष्टि) या संकीर्ण मानसिकता से पीड़ित कहा जा सकता है। वे एक कदम भी आगे बढ़ने का साहस नहीं करते और ऐसे अधिकांश अवसरो पर वे अपने आप को रोके रखते है और अपने निजी काम-काज की दुनिया के गुणा-गणित तक सीमित रहते हैं। यह प्रवृत्ति उन्हें बन्द ढाँचों में पड़े रहने की ओर अग्रसर करती है और वे कुछ पहले से ही जाने-सुने कामों में लगे रहने, पुरानी ही लीक पर चलते रहने की प्रवृत्ति के शिकार हो जाते हैं। मनोविज्ञान की भाषा में, इसी को 'दायरे में बन्द सोच' कहा जाता है। जब लोग कुछ नये साहसिक कदम उठाते है, नया सोचते हैं, नया कहते हैं और कुछ नया करते है जो आम या घिसा-पिटा न हो, एक ऐसे रास्ते पर चलना पसन्द करते हैं जिस पर पहले कोई न चला हो और ऊपर से थोपे हुए किसी साँचे या ढाँचे के ही अनुसार नहीं चलते रहते तो उन्हें 'दायरे से मुक्त सोच' का उदाहरण पेश करने वाला कहा जाता है। 'दायरे में बन्द सोच'

सृजनात्मकता के पंखों को बाँध देती है, वहीं 'दायरे से मुक्त सोच' सृजनात्मक शक्तियों को उत्तरोत्तर विकास और वृद्वि और उनके अपने समाज की समृद्धि के पथ पर आगे ले जाने में सहायता और प्रोत्साहन प्रदान करती है।

1.4 स्वामी विवेकानन्द और अपने देश तथा बाहर के देशों के ऐसे अन्य अनेक चिन्तकों के अद्वितीय उदाहरणों से 'दायरे से मुक्त सोच' के सम्बन्ध में कुछ विशेष मापदण्ड या मानक निकाले जा सकते हैं जो 'दायरे में बन्द सोच' वाले प्रतिमान से इसकी भिन्नता प्रदर्शित करते हों। इन्हें निम्न प्रकार से इंगित किया जा सकता है–

(i) 'दायरे से मुक्त सोच' एक 'भविष्य की दृष्टि' से परिचालित होती है जबकि 'दायरे में बन्द सोच' पहले से ही निर्धारित कुछ 'लक्ष्यों' का ही समर्थन और अनुसरण करने का प्रयास करती है।

(ii) 'दायरे से मुक्त सोच' 'सुविदित' या सामान्य में 'अविदित' या असामान्य की खोज करती है जबकि 'दायरे में बन्द सोच' 'सुविदित से सुविदित' के घिसे-पिटे ढर्रे पर ही चक्कर काटती रह जाती है।

(iii) 'दायरे से मुक्त सोच' एक 'उल्लास और भावों के प्रवाह' द्वारा परिलक्षित होती है जबकि 'दायरे में बन्द सोच' हाथ में लिये काम को ही 'यन्त्रवत् और सुस्त' ढंग से करते हुए भावों के प्रवाह से वंचित रहती है।

(iv) 'दायरे से मुक्त सोच' अपने पास एक 'साझा भविष्य दृष्टि और अवबोध' का उत्सव मनाती है जबकि 'दायरे में बन्द सोच' किसी भविष्य दृष्टि या अवबोध के समर्थन को एक 'बोझ' जैसा अनुभव करती है।

(v) 'दायरे से मुक्त सोच' का परिचायक है एक 'आवेग और प्रेरक की ऊर्जा' जबकि 'दायरे में बन्द सोच' 'कमाऊ-खाऊपन के रूझान' को प्रतिबिम्बित करती है।

(vi) 'दायरे से मुक्त सोच' कार्य प्रक्रिया में और इसमें सलग्न लोगों में 'रूपान्तरण' लाती है जबकि 'दायरे में बन्द सोच' कार्यों के 'निष्पादन' और कार्य का सम्पादन करने वालों पर केन्द्रित रहती है।

(vii) 'दायरे से मुक्त सोच' 'पहियों को खुला रास्ता' देती है जबकि 'दायरे में बन्द सोच' एक 'लौह प्रणाली में कसी' रहती है।

(viii) 'दायरे से मुक्त सोच' एक 'प्रतिपादक या व्याख्याता की पद्धति' अपनाती है जो चीजों को अर्थवत्ता प्रदान करने में प्रवृत्त होती है जबकि 'दायरे में बन्द सोच' एक 'अनुवादक की पद्धति' अपनाती है– एक-एक कर कड़ियों को जोड़ने वाली प्रक्रिया।

(ix) 'दायरे से मुक्त सोच' एक 'नया मानक सृजित' करती है, जबकि 'दायरे में बन्द सोच' 'पूर्व निर्धारित मानकों द्वारा नियंत्रित' होती है।

(x) 'दायरे से मुक्त सोच' 'स्वाधीनता और परस्पर निर्भरता के प्रतिमान' को बढ़ावा देती है जबकि 'दायरे में बन्द सोच' एक ' खास किस्म की परनिर्भरता के प्रतिमान' पर फलती–फूलती है।

❖ अध्यापक शिक्षा के लिए 'दायरे से मुक्त सोच'

1.5 कुछ प्रमुख भेदक लक्षणों के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि भारत में अध्यापक-शिक्षा को 'दायरे से मुक्त सोच' से जोड़ने की आवश्यकता है जिससे घिसी-पिटी लीक से बाहर निकला जा सके और एक सही मानसिक ढाँचे के परिप्रेक्ष्य में सुधार की प्रक्रियाओं को गतिमान किया जा सके।

गुणवत्ता और उत्कृष्टता को सुनिश्चित करने के लिए 'दायरे से मुक्त सोच' की सीमा के अन्तर्गत अध्यापक-शिक्षा के निम्नलिखित क्षेत्रों को विशेष रूप से आच्छादित किया जा सकता है–

(i) पाठ्यक्रम अभिकल्प : इसे अधिकाधिक मुद्दा-आधारित और विद्यालय व्यवस्था की आवश्यकताओं के अनुरूप बनाने के लिए इसकी संरचना का पुनः दिशा-निर्देशन।

(ii) शिक्षाशास्त्र : मौजूदा एकपक्षीय व्याख्यान प्रणाली की अपेक्षा प्रयोगपरक अधिगम, परियोजना आधारित दक्षता-विकास, तथा संवादपरक अन्तःक्रियात्मक सत्रों को प्रोत्साहित करने के लिए शिक्षण के तरीकों में परिवर्तन करना चाहिए।

(iii) मूल्यांकन के प्रारूप : रचनात्मक और संकलनात्मक दोनों प्रकार की परीक्षाओं की इस प्रकार अभिकल्पना करनी चाहिए जिसमें मुख्य जोर उन क्षमताओं और दक्षताओं के मूल्यांकन पर हो जो शिक्षार्थी के व्यक्तित्व-विकास, मूल्य -निर्माण और सकारात्मक रूझान में योगदान करती हैं।

1.6 'दायरे से मुक्त सोच' को आकृष्ट करने वाले ऐसे सम्भव क्षेत्र कुछ और भी हो सकते हैं। इसके लिए कल्पना और तर्क दोनों का प्रयोग समीचीन होगा।

1.7 लेकिन यह बात याद रखनी चाहिए कि कल्पना या तर्क दोनों में से कोई भी अकेले या अलगाव में रहकर कोई बड़ी उपलब्धि नहीं हासिल कर सकता। 'दायरे से मुक्त सोच' के अद्भुत अपूर्व परिणाम केवल तभी निकल सकते हैं, जब कल्पना और तर्क दोनों एक साथ युग्मित रूप में क्रियाशील हों।

1.8 अल्बर्ट आइन्सटाइन ने एक बार कहा था, "जब मैं अपने आप को और अपने सोच के तरीकों को जाँचता हूँ तो मैं इस नतीजे पर पहुँचता हूँ कि अमूर्त और विधेयात्मक चिन्तन करने में सक्षम किसी प्रतिभा की तुलना में कल्पना या उड़ान (फैन्टेसी) का वरदान मेरे लिए अधिक अर्थवान् रहा है।"

❖ स्वामी विवेकानन्द से 'दायरे से मुक्त सोच' की सहज सीख

1.9 स्वामी विवेकानन्द के जीवन से हम कई चीजे सीख सकते हैं– चाहे वह आध्यात्मिक उन्नति का क्षेत्र हो, चाहे भौतिक उन्नति का। 'दायरे से मुक्त सोच' के सिद्धान्त और व्यवहार को आत्मसात् करने के लिए वे हमारे आदर्श प्रतिमान हैं। उनके जीवन की प्रत्येक घटना 'दायरे से मुक्त सोच' से परिपूर्ण है। उन्होंने अपने सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक को प्ररित किया और उनके जीवन को परिवर्तित भी किया। इस मॉड्यूल में हम शिक्षक-शिक्षा हेतु 'दायरे से मुक्त सोच' के सिद्धान्त और व्यवहार का अध्ययन करने के लिए स्वामी विवेकानन्द को एक आदर्श प्रतिमान के रूप में ग्रहण करेंगे।

❖ 'दायरे से मुक्त सोच' के वास्तविक चिन्तक स्वामी विवेकानन्द : बारह चारित्रिक विशेषताएँ

1.10 आइए, हम स्वामी विवेकानन्द की प्रमुख चारित्रिक विशेषताओं पर दृष्टिपात करते हैं जो उन्हें 'दायरे से मुक्त सोच' का पूर्ण आदर्श प्रतिमान बनातें है:

(i) जब वे गम्भीर होते, लोग उनका चेहरा देखकर भय खाते।

(ii) जब वे गर्मागर्म बहस कर रहे होते, उनकी आँखे चमकती।

(iii) जब उग्र होते, उनकी वाणी अग्निमयी हो उठती, जो प्रत्येक सुनने वाले को ऊर्जा से भर देती।

(iv) वे प्रेम और कोमल भाव-रत्नों की सृष्टि करते, जिससे प्रत्येक का हृदय पिघल जाता।

(v) जब अपने ही भावों में निमग्न होते, अपने आस-पास ऐसी निर्जनता का वातावरण सृजित कर देते कि कोई उनके पास जाने का साहस न कर पाता।

(vi) जब दूसरों की सुस्ती, आलस्य और काहिलपना पर उनकी नजर पड़ती, वे बिजली की तरह उन पर घहरा पड़ते और उन्हें क्रियाशील बना देते।

(vii) निरपवाद रूप से, सबके समक्ष उनका कर्म–शील स्वरूप प्रत्यक्ष होता।

(viii) वे एक अच्छे स्वप्नदर्शी और भविष्यद्रष्टा थे। उनकी सोच हमेशा समय से आगे रहती और इस कारण, कई बार दूसरे उन्हें गलत समझ लेते।

(ix) प्राचीन शास्त्रों में आश्चर्यजनक अधिकार बोध के साथ–साथ उनके पास पूर्वी और पश्चिमी संस्कृति का अपरिमित ज्ञान था।

(x) वे गहरी आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि और निष्कलंक चरित्र के स्वामी थे।

(xi) वे ज्वलंत बौद्धिक प्रतिभा और उदात्त आदर्शवाद से सम्पन्न थे।

(xii) उनके पास अदम्य स्फूर्ति और बहुरंगी व्यक्तित्व था।

❖ स्वामी विवकानन्द के प्रेरणादायी शब्द

1.11 आइये, अब स्वामी जी के उद्‌बोधन के कुछ शब्दों का अवलोकन करें–

"यह एक गलत विचार है कि सृजनात्मकता कुछ लोगों का प्रकृति-प्रदत्त गुण है। इसके सिद्धान्त और व्यवहार सभी सीख सकते हैं और उनका उपयोग कर सकते हैं, बशर्ते कोई पूर्व निश्चित मान्यताओं और विद्वेषपूर्ण विचारों के दायरे से बाहर आये और उसका दिलो-दिमाग खुला हो। यदि हम स्वमी विवेकानन्द को एक आदर्श प्रतिमान के रूप में ग्रहण करें और उनके संदेश का अनुपालन करें तो हममें से हर कोई 'दायरे से मुक्त सोच' की दृष्टि से एक आइन्स्टीन बन सकता है। स्वामी विवेकानन्द की शिक्षा में निहित प्रज्ञात्मक समझदारी को ग्रहण करने पर हमें व्यक्तिगत रूप में उसके प्रभावकारी उपयोग का लाभ मिलने के साथ यह किसी भी संगठन या देश के हित में प्रभावकारी होगी। यह गणितीय, वैज्ञानिक, इंजीनियरिंग और तर्कशास्त्रीय विद्याओं को सीखने और प्रयोग करने जैसा ही है। कोई आदमी एक बार भाषा के गुर जान

जाता है फिर तो वह जीवन के हर क्षेत्र में प्रभावकारी ढंग से काम कर सकता है चाहे वह व्यक्तिगत जीवन हो या दफ्तर का काम हो। क्या तुम जानते हो कि तुम्हारे इस ऊपरी ढाँचे के पीछे कितनी ऊर्जा, कितनी शक्ति, कितना बल छिपा पड़ा है? क्या कोई भी वैज्ञानिक वह सब कुछ जान सकने में समर्थ हुआ है जो मनुष्य के भीतर है, जो तुम्हारे भीतर है। तुम भी उसका एक छोटा अंश ही जानते हो क्योंकि तुम्हारे पीछे अनन्त की शक्ति और कृपा का सागर लहरा रहा है।"

×××

"एक विचार चुन लो और तुम लोग अपने आप को उससे भर दो; कोई भी कार्य करो, उसी का खूब चिन्तन करते रहो। तुम्हारे सभी कार्य उस विचार की शक्ति से आवर्धित, रूपान्तरित और दिव्यभावापन्न हो उठेंगे। यदि जड़ शक्तिमान् है तो विचार सर्वशक्तिमान् है। इस विचार का भार अपने जीवन को वहन करने दो, अपने आप को अपनी सर्वशक्तिमत्ता, अपनी श्रेष्ठता और अपनी दिव्यता-भव्यता के विचार से भर दो।"

×××

"तुम्हें आश्चर्य होगा कि यह सीमित 'मैं' भला असीम–अनन्त कैसे हो सकता है, लेकिन ऐसा ही होता है। सीमाबद्ध 'मैं' तो केवल माया है। जो 'असीम' है उस पर आवरण पड़ गया है और उसका एक क्षुद्र अंश 'मैं' के रूप में अभिव्यक्त हो रहा है। सीमा कभी भी असीम से नहीं मिल सकती; वह तो माया है।"

2. गुणवत्ता एवं श्रेष्ठता

2.1 श्रेष्ठता की अवधारणा अधिकांश लोगों का ध्यान खींचती है, तथा कतिपय लोगों के लिए यह प्रेरणादायी भी है। किन्तु इस अवधारणा पर अलग से विचार करने पर ज्ञात होगा कि यह एक अमूर्त्त धारणा है। यह अवधारणा सार्वभौम रूप में एक ऐसा प्रभावी प्रेरक नहीं होती है जिसकी हर व्यक्ति कामना कर सके। अतः हमें यह जानना चाहिए कि वे गतिमान एवं सार्थक विचार क्या हैं जो श्रेष्ठता प्राप्ति के प्रयास में व्यक्ति को प्रेरित करने के साथ उसमें तल्लीन रखते हैं।

2.2 भारतीय समाज में ऐसे अत्यन्त ओजस्वी एवं शक्तिशाली विचार बाहर किसी को ढूँढ़ने की आवश्यकता नहीं है जिन्हें श्रेष्ठता के लिए साधक बनाया जा सके। हमारे यहाँ तो वैयक्तिक पूर्णता का आदर्श अच्छी तरह सुनिश्चित रहा है। यह आदर्श व्यक्ति की योग्यता के सम्बन्ध में हमारी

हर धारणा में अन्तर्निहित है। यह अवसर की समानता के बारे में हमारी मान्यता को भी प्रभावित करता है तथा हमारी उस प्रबल धारणा के माध्यम से भी अभिव्यक्त होता है, जिसके अनुसार यह माना जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने भीतर की श्रेष्ठता या पूर्णता को प्राप्त करने में हमें सहायक होना चाहिए।

❖ श्रेष्ठता एवं शिक्षा व्यवस्था

2.3 वैयक्तिक श्रेष्ठता के आदर्श तक पहुँचने के लिए जिस मुख्य उपकरण को हमने सोच निकाला है, वह है शिक्षा व्यवस्था। किन्तु उस उपकरण को श्रेष्ठ बनाने की दौड़ में हमने उन मूल उद्देश्यों को विस्मृत कर दिया है जिसको दृष्टिगत रखकर इसे अभिकल्पित किया गया था। शिक्षा के उद्देश्यों के बारे में हमारी सोच प्रायः सतही, संकीर्ण, परिप्रेक्ष्य-विहीन एवं पहुँच के बाहर रही है। अतः शैक्षिक उद्देश्यों को व्यक्ति के उत्कर्ष तथा उसकी वैयक्तिक पूर्णता के महत्व से सम्बन्धित दृढ़ धारणा के व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखना चाहिए।

2.4 औपचारिक दृष्टि से शिक्षा को समाज की उस बड़ी जिम्मेदारी का एक अंश मात्र मानना चाहिए जिसके आधार पर व्यक्ति के बौद्धिक, सांवेगिक तथा शारीरिक विकास को बढ़ावा मिलता है। सत्य तो यह है कि हमें उस गन्तव्य की ओर अग्रसर होना चाहिए जिसमें आत्म–अन्वेषण की चेष्टा, अपने उत्कृष्ट स्वरूप की अनुभूति को सतत आकार देने का प्रयास तथा अपने यथार्थ रूप में होने की सम्भावना को निरन्तर बढ़ाने का सुअवसर उपलब्ध हो।

2.5 यह एक ऐसी अवधारणा है जो औपचारिक शिक्षा की परिधि से कहीं परे है। इसके अन्तर्गत केवल बुद्धि ही नहीं अपितु संवेग, चरित्र तथा व्यक्तित्व शामिल हैं। इसमें सतह मात्र नहीं बल्कि विचार एंवं कार्य के अन्तर्वर्ती स्तर भी आ जाते हैं। इसमें व्यक्ति की अनुकूलनशीलता, सृजनात्मकता तथा ओजस्विता सभी सम्मिलित हैं। स्वामी विवेकानन्द अपने विद्वतापूर्ण एवं प्रेरणादायक प्रवचनों में इन बिन्दुओं पर प्रायः बल दिया करते थे।

2.6 इन बिन्दुओं पर बल दिए जाने के फलस्वरूप नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास होता है। हम यह कहा करते हैं कि व्यक्ति की अन्तःशक्तियों को पूर्णता की ओर ले जाना है, किन्तु इसका आशय यह कदापि नही मानना चाहिए कि हम व्यक्ति को एक बड़ा अपचारी या दुर्जन बनते हुए देखें। सीखने के लिए सीखने का सिद्धान्त पर्याप्त नहीं है। चोर धूर्त्तता सीख लेता है और एक दास आज्ञाकारिता। हम ऐसी चीजें सीख सकते हैं जिससे हमारी दृष्टि संकीर्ण बन जाती है तथा हमारे निर्णय विकृत हो जाते हैं। हमें पूर्णता की प्राप्ति का संवर्धन ऐसे तर्कपूर्ण एवं नैतिक

प्रयासों के परिप्रेक्ष्य में करना चाहिए जो मनुष्य की उत्कृष्टता के परिचायक रहे हैं। बड़े–बड़े संगठनों एवं व्यापक सामाजिक ताकतों वाली इस दुनिया के अन्तर्गत जिसमें व्यक्ति सहमा हुआ एवं अपने को बौना महसूस करता है, हमें, जहाँ तक सम्भव हो 'वैयक्तिकता' का पक्षधर होना चाहिए, किन्तु हम एक गैर–जिम्मेदार निर्नैतिक या पूर्णतः स्वार्थ–साधक 'वैयक्तिकता' का समर्थन नहीं कर सकते।

❖ वैयक्तिकता एवं साझेदारी के प्रयोजन

2.7 विश्व में हमारी महानता एक स्वतंत्र लोगों की महानता के रूप में जानी जाती रही है जिसमें हम कतिपय नैतिक प्रतिबद्धताओं के प्रति साझेदारी के भाव से जुड़े होते थे। यह ध्यातव्य है कि नैतिक प्रतिबद्धता से रहित स्वतंत्रता प्रयोजन–विहीनता का रूप ले लेती है तथा यथाशीघ्र आत्मविनाशक भी बन जाती है। यह दुर्भाग्य का विषय है कि हमारे समाज में जैसे–जैसे व्यक्ति अपने वाह्य व्यवहार में एकरूपता की ओर मुड़े हैं, वैसे–वैसे वे साझे किए जाने वाले प्रयोजनों से अलग होते गए हैं। एक स्वस्थ वैयक्तिकता के भाव तथा साझेदारी के भाव दोनों को हमें पुनः प्रतिष्ठित करना होगा। एक के बिना दूसरा हमें अश्लाध्य परिणामों की ओर ले जाएगा।

❖ स्वंय को पाना तथा स्वंय को खोना

2.8 व्यक्ति को आदर का पात्र बनने के लिए 'अपने को पाने' एवं 'अपने को खोने' का अभ्यासी बनना चाहिए। ये दोनों स्थितियाँ परस्पर विरोधाभासी तो लगती हैं, परन्तु वस्तुतः ऐसी हैं नहीं। हम उस व्यक्ति के प्रति आदर का भाव रखते है जो अपने को मूल्यों की सेवा में अर्पित कर देता है। वे मूल्य जो उसकी 'वैयक्तिकता' से बढ़कर हैं, उसके व्यवसाय के प्रति मूल्य, अपने लोगों के प्रति मूल्य, अपनी विरासत के प्रति मूल्य तथा इनसे भी अधिक धार्मिक एवं नैतिक मूल्य जिन्होनें उसमें प्रथमतया व्यक्तिगत पूर्णता के आदर्श से अभिसिक्त किया है। किन्तु यह 'व्यक्तिगत उपहार' जो उसे मिला है, प्रशंसा का पात्र तभी बनता है जब उसने एक परिपक्व 'वैयक्तिकता' प्राप्त कर ली है तथा उसके द्वारा दिया जाने वाला उपहार उसकी 'वैयक्तिकता' में अपूरणीय रूप से क्षरण नहीं ला पाता। हम किसी देश या किसी सरोकार या किसी संगठन के चेहरा विहीन या दिमाग रहित ऐसे सेवकों की सराहना नहीं कर सकते जिन्होंने परिपक्वता नहीं अर्जित कर पायी है तथा समष्टि (कम्पनी) हित में अपनी वैयक्तिकता की आहुति दे दी है।

2.9 आज हमारे समाज में अधिकांश युवा पीढ़ी के लोग अपनी सम्भाव्यता को पूर्णता की ओर नहीं ले पाते। उनका परिवेश ऐसा नहीं है कि इस पूर्णता को बढ़ावा प्राप्त हो सके अथवा कदाचित् ऐसा भी हो सकता है कि

उसका परिवेश उनके विकास को बाधित कर दे। गरीबी एवं अज्ञान का शिकार उसका परिवार उसकी इस सम्भाव्यता को पूर्णता की ओर ले जाने में शायद ही मौका दे पाए। आइए, स्वामी विवेकानन्द द्वारा इस सम्बन्ध में दी गयी सुन्दर प्रस्तुति पर विचार करें :

"अधिकांश लोगों में उनके भीतर की दिव्यता का प्रकाश ढका होता है। यह प्रकाश एक लोहे के बर्तन में रखे हुए दीपक के सदृश है जिससे कोई रोशनी नहीं प्रगट हो सकती। शुचिता एवं निःस्वार्थ के जरिए हम इस प्रकाश को छिपा देने वाले माध्यम की गहनता को धीरे–धीरे न्यून बना सकते हैं, जब तक अन्ततः यह उस रूप में पारदर्शी न बन जाए जैसा शीशा होता है। श्री रामकृष्ण शीशे के बर्तन की भाँति रूपान्तरित वे स्टील के बर्तन थे जिसके माध्यम से आन्तरिक प्रकाश को देखा जा सकता था जिस तरह आप किसी पौधे को बड़ा नहीं कर सकते उसी प्रकार किसी बालक को आप पढ़ा नहीं सकते। पौधा अपनी प्रकृति के अनुसार बढ़ता है। बालक भी अपने को स्वयं शिक्षित करता है। किन्तु उसे अपनी प्रकृति के अनुरूप विकसित होने में आप मदद भर दे सकते हैं। आप जो कर सकते हैं वह विधेयात्मक न होकर निषेधात्मक हो सकता है। आप उसके विकास के मार्ग में पाए जाने वाले अवरोधकों को हटा सकते हैं। ज्ञान तो अपनी प्रकृति से स्वयं फूटता है। मिट्टी को थोड़ा शिथिल बना दीजिए जिससे यह आसानी से बाहर की ओर चल पड़े। इसके चारों ओर बाड़ लगा दीजिए तथा उसे इस बात की सुरक्षा दीजिए की किसी अन्य से उसका नुकसान न हो। आप उगने वाले बीज को उसकी काया निर्मित करने वाली सामग्री भर उपलब्ध करा दें, जिससे वह जमीन के बाहर आ सके, उसे अपनी जरूरत भर पानी तथा हवा की व्यवस्था कर दें। वहीं आप का कार्य पूरा हो जाता है। वह अपनी प्रकृति को अपेक्षानुसार उसे जितनी आवश्यकता है स्वयं ले लेगा। यही बात बच्चे की शिक्षा पर भी लागू होती है। बच्चा स्वयं अपने को शिक्षित करता है। शिक्षक अपनी दखल से यह सोचता है कि वह शिक्षा दे रहा है जबकि ऐसा न करके वह वस्तुतः इस प्रक्रिया को बिगाड़ रहा है। मनुष्य के भीतर ही सारा ज्ञान है। उसे केवल उद्‌बोधन (जगाने) की आवश्यकता है और यह कार्य शिक्षक का है। हमें बालक की शिक्षा के लिए बस इतना ही करना है कि वे अपने हाथ, पाँव, कान एवं आँख का समुचित उपयोग करने हेतु अपनी बुद्धि को प्रायोजित करना सीख लें।

हमें उस प्रचलित शिक्षा प्रणाली का परित्याग करना होगा जिसमें बच्चों को उस रूप में शिक्षित करने की व्यवस्था है जैसा कि कोई व्यक्ति अपने गदहे को इसलिए पीटते रहने की परामर्श पर चलता रहे कि इस पद्धति से वह गदहे को घोड़ा में तबदील कर देगा।

माता–पिता द्वारा अपने बच्चों पर अतिशय दबाव डाले रहने का यह परिणाम रहा है कि उन्हें अपने विकास हेतु सहज उन्मुक्तता नहीं मिल पाती। प्रत्येक बच्चे में अनन्त शक्तियाँ विद्यमान होती हैं जिन्हें सन्तुष्ट करने हेतु उपयुक्त परिवेश की आवश्कता होती है। सुधार के उग्र तरीके हमेशा सुधार को अवरूद्ध कर देते हैं। यदि आप किसी को 'सिंह' बनने का मौका नहीं देंगे तो ऐसा भी सम्भव है कि वह एक 'लोमड़ी' बन जाए।''

3. समानता और समता

3.1 हालाँकि समानता का विचार स्पष्टता से आधुनिक विश्व में केन्द्रीकृत किया गया परन्तु वास्तव में इसका प्रारम्भ मानव सभ्यता के प्रारम्भ के साथ ही हुआ है। कालान्तर में उदित सभी धर्म एक स्वर में कहते रहे हैं कि ''ईश्वर द्वारा मनुष्यों को समान बनाया गया है'' और जीवन में आगे बढ़ने के लिए उन्हें समान उपचार और समान अवसर दिये जाने चाहिए। समय–समय पर उद्घाटित विभिन्न दर्शन मनुष्य की मौलिक समानता के साथ ही उसके सम्पूर्ण विकास और प्रसन्नता के अवसर की आवश्यकता पर बल देते हैं।

3.2 शाब्दिक रूप में समानता शब्द की व्युत्पत्ति पच्चीस शताब्दी पूर्व यूनानियों द्वारा उपयोग किये गये 'आइसोट्स' शब्द से चिन्हित की जा सकती है। तभी से इसे दार्शनिक, राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक विचारों द्वारा विस्तारित एवं संस्कारित किया गया है। अरस्तू का आनुपातिक समानता का सिद्धान्त व्यक्तियों को उनकी योग्यता के अनुरूप सम्मान देने का पक्षधर था। रोमन सभ्यता के स्टोइक दर्शन ने जाति, कुल, राज्य एवं मत की बंदिशों/बंधनों से मुक्त करने की वकालत की। इसका मानना था कि सभी मनुष्यों को तर्क की आन्तरिक शक्ति का वरदान है। अतः अपने रूप में वे प्राकृतिक रूप से व कानून के समक्ष समान थे।

3.3 पश्चिमी दार्शनिकों जैसे हाब्स, लॉक, रूसो और वाल्टेयर द्वारा समानता के विचार की घोषणा की गई। रूसो ने मनुष्य की संपति/अधिकारों को समान करने की बात कही• जबकि वाल्टेयर ने कहा कि सभी मनुष्यों को कानून की दृष्टि से समान सुरक्षा प्राप्त है। उसने वस्तुओं, सम्पत्तियों और शक्तियों को समान करने वाले विचार को इसलिए नकार दिया क्योंकि इसे उसने अप्राकृतिक माना। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका (1776) एवं फ्रांस (1789) की क्रांतियाँ ''समानता, भाईचारा और स्वतंत्रता'' के नारों की परिणाम थीं। उन्नीसवीं शताब्दी में बेन्थम, जेम्स मिल और दूसरों ने उपयोगितावाद के दर्शन का प्रतिनिधित्व किया एवं ''सर्वाधिक लोगों का सर्वाधिक कल्याण अथवा सर्वाधिक लोगों की सर्वाधिक खुशिहाली के सिद्धान्त का प्रसार किया। इसके परिणामस्वरूप मानव क्रिया के सभी

क्षेत्रों– राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक में समानता का सिद्धान्त छा गया। इस विचार को 'लोकतन्त्र' एवं 'समाजवाद' द्वारा और अतिरिक्त बल मिला, जो कि असमानता और शोषण को जन्म देने वाले सभी कारकों एवं शक्तियों को त्यागने पर दबाव देते हैं। समाजवाद सभी के लिए समानता एवं समुचित अवसरों की वकालत करता है जिससे उनकी क्षमताओं, अभिक्षमताओं और आकांक्षाओं के अनुरूप वृद्धि और विकास हो सके। इस विकास की प्रक्रिया में स्वामी जी के प्रेरक भाषणों ने समानता व समता की अवधारणा की उत्पत्ति में बहुत योगदान दिया है। 10 दिसम्बर 1948 को समानता के विचार को संयुक्त राष्ट्र संघ की सामान्य सभा द्वारा मानवाधिकारों के सार्वभौमिक घोषणा पत्र में प्रकाशित किया गया, जहाँ साथ में ''भेदभाव मुक्त'' और ''शिक्षा के अधिकार'' के सिद्धान्तों की प्रबलता से वकालत की गई है। ये दोनों सिद्धान्त ''शिक्षा में अवसरों की समानता'' में अन्तर्भूत थे जिन्हें 14 दिसम्बर 1960 को यूनेस्को की सामान्य सभा/बैठक में विस्तारित किया गया।

❖ अवधारणा और अर्थ

3.4 यूनेस्को के अनुसार भेदभाव शब्द ''किसी प्रकार की विशेषता/विभेद, बहिष्करण, रोकथाम अथवा कृत्य जो वंश, रंग, लिंग, भाषा, धर्म, राजनीति या दूसरे मत, राष्ट्रीय या सामाजिक स्रोत, आर्थिक स्थिति या जन्म पर आधारित होकर शिक्षा की समानता में बाधा अथवा व्यवधान का उद्देश्य रखता हो'' को सम्मिलित करता है। इसे भेदभाव के रूप में देखा जाता है, जब–

(i) किसी व्यक्ति को अपनी योग्यता के अनुरूप किसी भी स्तर पर किसी प्रकार की शिक्षा तक की पहुँच से वंचित किया जाता है।

(ii) किसी व्यक्ति को निम्न स्तर की शिक्षा तक सीमित रखा जाता है।

(iii) शिक्षा लेने वाले किसी व्यक्ति का सरोकार इस प्रकार की परिस्थितियों से होता है जो मानवोचित आदर के अनुकूल न हो।

3.5 ''भेदभाव'' का न होना और ''असमानता'' का न होना शैक्षिक अवसरों की ''समानता'' का परिचायक है। हालाँकि समानता की अवधारणा यह नहीं मानती कि मौलिक रूप से सभी व्यक्ति अपनी क्षमताओं में समान हैं। अतः इसके द्वारा इच्छित है कि प्रत्येक व्यक्ति को प्रदत्त जन्मगत क्षमताओं के अनुरूप अवसर प्राप्त होने चाहिए। किसी को भी ऊपर जाने से नहीं रोका जाना चाहिए इसके अतिरिक्त कि वह स्वयं ही ऊपर जाने की योग्यता न रखता हो।''

3.6 मूर्त रूप में, शैक्षिक अवसरों की समानता का तात्पर्य निम्नांकित प्रकार के प्रावधान से है–

(i) निर्धारित स्तर तक निःशुल्क शिक्षा, जिसका तात्पर्य सैद्धान्तिक रूप में राष्ट्रीय श्रमिक शक्ति में प्रवेश से है, इस प्रकार आर्थिक आधार पर अवसरों की असमानता को दूर करना।

(ii) विद्यार्थियों की आवश्यकताओं, योग्यताओं और आकांक्षाओं के अनुरूप विभिन्न शैक्षिक अवसर प्रदान करना।

(iii) यदि कोई विद्यार्थी अपने जीविका पोषण करने में सक्षम न हो तो राज्य द्वारा विभिन्न छात्रवृत्तियों, छूटों और ऋणों के रूप में सहयोग उपलब्ध कराना।

❖ समानता के निर्धारक

3.7 शैक्षिक अवसरों की समानता में आस्था रखना एक बात है एवं इस अवधारणा को व्यावहारिक यथार्थ में रूपान्तरित करना दूसरी बात। इसका क्रियान्वयन राजनैतिकतन्त्र, आर्थिक वितरण की व्यवस्था और सामाजिक कारकों पर निर्भर करती है। यह इसके निर्धारक हैं। ऐतिहासिक काल के अरूणोदय से या तो राज्य ने समानता के उत्तरदायित्व को स्वीकार किया अथवा राज्य से यह माँग की गई कि सभी व्यक्तियों के लिए जाति, वंश, विचार, रंग, लिंग इत्यादि से पृथक होकर "समान उपचार और प्रगति की समानता का अवसर दे"। समानता की प्रकृति एवं उसके निहितार्थ शीर्ष पर विराजमान राजनीतिज्ञों पर निर्भर करते हैं। उदाहरण के लिए, एक समाजवादी राष्ट्र समानता को पोषित करने हेतु पैमाने ही नहीं बनाता बल्कि असमानता फैलाने वाली शक्तियों को प्रतिबन्धित करने के लिए भी कदम उठाता है। यदि किसी राष्ट्र में समाज का एक निश्चित हिस्सा कुछ विशेष अधिकारों का लाभ लेने में लगा हुआ है, तो समानता का सिद्धान्त टूट जाता है।

3.8 यह चिन्हित किया जा सकता है कि समानता के निर्धारक के रूप में आर्थिक वितरण के दो निहितार्थ हैं। पहला कि राज्य को इष्टतम निर्धारित स्तर तक सभी बच्चों को शैक्षिक सुविधाएँ देने एवं उनकी रूचि एवं योग्यता के अनुरूप आगे की शिक्षा देने में उदार होना चाहिए। दूसरा कि किसी भी बच्चे को उसकी खराब आर्थिक परिस्थिति के कारण अक्षम नहीं रहने देना चाहिए। खासतौर से भारत में, जहाँ बच्चे अपने अभिभावकों की घोर विपन्नता के कारण अधिगम की जगह धनार्जन शुरू कर देते हैं, राज्य को निःशुल्क छात्रवृत्तियों के साथ–साथ सहयोग के रूप में पुस्तकें, कॉपियाँ और यहाँ तक की मध्यान्ह भोजन देना चाहिए।

3.9 समानता के मानवतावादी विचार में सामाजिक कारक दूसरा महत्वपूर्ण कारक है। शोध परिणामों द्वारा ज्ञात हुआ है कि समाज के मध्य और उच्च स्तर के अभिभावाकों की आपेक्षाकृत निचले वर्ग के लोगों की गति

शिक्षा के मूल्य को पहचानने में धीमी होती है। गतिशीलता का अधिक होना हमेशा घर की परिस्थितियों से प्रभावित होता है। शिक्षा के लिए सामाजिक जागरूकता उत्पन्न करने की दृष्टि से राज्य को वे उपाय करने चाहिए जो गरीबों को उनकी उत्पादकता बढ़ाने और घर की परिस्थितियों को सुधारने में सहयोग प्रदान करे। पहुँच-योग्य दूरी पर विद्यालयों का प्रावधान, पारिवारिक धन्धों एवं घरेलू कार्यों की माँग से बच्चों को मुक्त करना और सभी के लिए न्यूनतम पर्याप्त शैक्षिक कार्यक्रम बनाना दूसरी आवश्यकताएँ हैं।

❖ भारतीय परिदृश्य

3.10 हालाँकि स्वल्प रूप में ही, परन्तु यह साक्ष्य आधारित है कि भारतीय इतिहास के प्रारम्भिक दौर में सभी को शिक्षा का अधिकार था भले ही किसी ने इसका लाभ लिया हो या नहीं। लड़कियों के लिए भी लड़कों के समान ही उपनयन संस्कार आवश्यक था फिर भी, कुछ विद्वान दृढ़ता से कहते हैं कि "शिक्षा का अधिकार" मात्र सैद्धान्तिक रूप में था। वास्तविक व्यवहार में शूद्रों को यह छूट नहीं थी और स्त्रियों को भी उत्साहित नहीं किया जाता था क्योंकि उन्हें वेद मन्त्रों को ठीक-ठीक उच्चारण करने में अक्षम माना जाता था। किन्तु बुद्ध पहले व्यक्ति थे जिन्होंने स्थापित जाति प्रथा का विरोध किया तथा जन्मगत असमानताओं का परिणाम न्यून किया। यद्यपि मध्यकालीन भारत की परिस्थिति में मूलभूत रूप से परिवर्तन नहीं हुआ, किन्तु सामान्यतया यह विश्वास किया जाता है कि इस्लाम में समानता के सिद्धान्त के कारण, भारत में शिक्षा के द्वार सभी के लिए खुले थे। किन्तु आमीन इस विचार का विरोध करते हैं कि "मध्यकालीन भारत में शिक्षा विशेष रूप से उच्च शिक्षा आम लोगों के लिए नहीं बल्कि कुलीनों के लिए थी।"

3.11 ध्यातव्य है कि 68 वर्षों के स्वतन्त्रयोत्तर काल में हुए अनेक सुधार एवं हस्तक्षेपों को स्वीकारने और लागू करने के बाद भी हम उन समस्याओं से अभी तक ग्रसित हैं एवं समाधान दुर्ग्राह्य प्रतीत होता है। स्वामी जी एवं उनके बाद अन्य चिन्तकों ने हमारे सामाजिक रूपान्तरण हेतु आमूलचूल बदलाव की जोरदार संस्तुति की है और हमें आशा करनी चाहिए कि समय बदलने के साथ ही चीजें बदलेंगी एवं इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु प्रभावशाली नीतियाँ सुनिश्चित की जायेंगी।

4. महिला सशक्तिकरण

4.1 महिला सशक्तिकरण को हमारे देश में हमेशा से वरीयता दी जाती रही है। महिलाओं की छवि एवं गरिमा को पुनः स्थापित करने के उद्देश्य से स्वामी विवेकानन्द ने मनु को उद्धृत करते हुए आह्वान किया। "जहाँ महिलाओं का सम्मान होता है वहाँ देवताओं का निवास होता है और

जहाँ ऐसा नहीं होता वहाँ समस्त कार्य और प्रयत्न विफल हो जाते हैं।'' उनके अनुसार महिलाओं को इस प्रकार शिक्षित किया जाना चाहिए कि वे अपनी समस्याओं का निवारण अपनी तरह से स्वयं कर पायें। नीचे दिया गया उद्धरण स्वामी जी के इस विषय पर दिए गए व्याख्यान से उद्धृत है। हमारे देश में महिला सशक्तिकरण से जुड़े विविध मुद्दों के प्रति स्वामी जी के अकाट्य तर्क निश्चित ही सराहनीय, स्तुत्य एवं ध्यान देने योग्य हैं।

❖ प्राचीन भारत

4.2 यह समझना काफी मुश्किल है कि इस देश में महिला एवं पुरूष के बीच इतना अन्तर क्यों है, जबकि वेदान्त घोषणा करता है कि सभी में उसी 'आत्म्' की उपस्थिति है। मूल्यों के क्षरण/ह्रास के समय जब पुरोहितों ने अन्य जातियों के लोगों को वेदों के अध्ययन के अयोग्य ठहराते हुए वंचित कर दिया तभी उन्होंने महिलाओं से भी उनके समस्त अधिकार छीन लिए। आप देखते है कि वैदिक एवं उपनिषद काल में मैत्रेयी, गार्गी एवं अन्य महिलाओं की सम्माननीय स्मृति ने ऋषियों का स्थान ग्रहण कर लिया था। हजारों ब्राह्मणों की एक सभा में गार्गी ने बेबाकी से 'ब्राह्मण' ग्रन्थों पर हो रही चर्चा में याज्ञवल्क्य को चुनौती दी थी।

❖ वास्तविक शक्ति की उपासना

4.3 सभी राष्ट्रों ने महानता अर्जित करने के लिए महिलाओं को सम्मान दिया है। वह देश और राष्ट्र जिसने महिला का सम्मान नहीं किया कभी महान् नहीं बन पाया, और न कभी भविष्य में बन पाएगा। हमारी प्रजाति के पतन का मुख्य कारण यही है कि हमने शक्ति की प्रतिमूर्ति महिला का सम्मान नहीं किया। उस परिवार और देश के उत्थान की कोई उम्मीद नहीं है जहाँ महिलाएँ दुखी या उदास रहती हैं।

❖ आत्म त्याग विषयक प्रशिक्षण

4.4 वर्तमान समय की आवश्यकताओं के अध्ययन से यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि आत्मत्याग, जीवन पर्यन्त सन्यासी बने रहने की शपथ, विशुद्ध आचरण का गुण जो पुरातन काल से लहू बनकर हमारी धमनियों में बह रहा है, उसका पालन आज के सन्दर्भ में अत्यावश्यक है। आज हमारी मातृभूमि अपनी कुशलता के लिए अपनी कुछ सन्तानों से ब्रह्मचर्य का पालन करने का आह्वान कर रही है। अगर हमारी महिलाओं में से एक भी 'ब्राह्मण' ग्रन्थों के अध्ययन में पारंगत हो जाती है तो वह हजारों महिलाओं की प्रेरणा का स्रोत बनकर उन्हें सत्य–निष्ठा की ओर जागृत करेगी जिससे देश और समाज का वृहत्तर कल्याण हो सकेगा।

❖ पंथ निरपेक्ष शिक्षा

4.5 इतिहास और पुराण, गृह–प्रबन्धन और कला, घर के प्रति कर्तव्य एवं चरित्र के विकास से जुड़े आदर्शों को सिखाने की जरूरत है। अन्य कार्य जैसे सिलाई, पाक–कला, घरेलू कामों के नियम एवं बच्चों की परवरिश को भी सिखाने की जरूरत है। जप, उपासना एवं ध्यान भी शिक्षण का अविभाज्य अंग है। अन्य चीजों के साथ–साथ शिक्षा में नायकत्व एवं ओजस्विता की प्रवृत्ति भी जरूरी है।

4.6 आज के समय में महिलाओं के लिए आत्मरक्षा का हुनर सीखना भी जरूरी है– महारानी झाँसी की महान् ओजस्वी छवि को याद कीजिए। इसी तरह हम भारतवर्ष की आवश्यकता की पूर्ति हेतु महान् निर्भय महिलाओं को प्रश्रय देंगे। ऐसी महिलाएँ जो संघमित्रा, लीला, अहल्याबाई एवं मीराबाई की परम्परा को आगे बढ़ायेंगी– महिलाएँ जो आदर्श नायकों की माता कहलाने की अधिकारी होंगी क्योंकि वे ईश्वर की पगधूलि के स्पर्श से मजबूत, निर्मल एवं निर्भय हो चुकी होंगी। ऐसी माताओं के बच्चे उनके गुणों को आगे बढ़ाते हुए स्वयं को अद्भुत बनाएँगे। महान् व्यक्ति ऐसी ही शिक्षित एवं धर्मपरायण माताओं के घर जन्म लेते हैं। अगर हम महिलओं का उत्थान करेंगे तो उनकी संतति अपने पुण्याचरण से देश का नाम ऊँचा करेगी और तब संस्कृति, ज्ञान, सत्ता एवं समर्पण देश में जन–जागरण का कारण बनेंगे।

नीचे अद्धृत महिला–सशक्तिकरण विषयक स्वामी जी के साक्षात्कार से सम्बन्धित संवाद–प्रस्तुति पाठकों को इस विषय में स्वामी जी के विचारों से अवगत कराएगी :

भारतीय महिलाएँ : उनका अतीत, वर्तमान और भविष्य

हमारा प्रतिनिधि लिखता है– यह हिमालय की एक सुहावनी घाटी में एक रविवार के तड़के की बात है कि मैं अन्त में अपने संपादक की आज्ञा पालन करने और स्वामी विवेकानन्द से भारतीय नारियों की स्थिति और भविष्य के बारे में उनके विचारों का कुछ पता लगाने के लिए मिलने में सफल हुआ।

जब मैंने अपना कार्य बताया, तो स्वामी जी ने कहा, "चलो टहलने चलें।" और हम तुरन्त संसार के कुछ सबसे अधिक रमणीक दृश्यों के बीच चल दिये।

हम चले धूप और छाया के मार्गों से, शान्त गाँवों के बीच, खेलते हुए बच्चों में होकर और सुनहरे मक्के के खेतों के पार। यहाँ ऊँचे वृक्ष ऊपर आकाश में छेद करते हुए मालूम होते थे और वहाँ किसान कन्याओं का

दल कलगीदार मक्के के पौधों को काटकर जाड़े के भण्डारों के लिए ले जाने के वास्ते हाथ में हॅसिया लिए झुका हुआ था। अब सड़क एक सेवों के बाग में से गुजरती थी; यहाँ हरे, गुलाबी फलों के बड़े ढेर वृक्षों के नीचे छाँटे जाने के लिए पड़े हुए थे। और फिर हम खुले में आ गये। हमारे सामने हिमाद्रि था, जो आकाश की पृष्ठभूमि पर सफेद बादलों से ऊपर सौन्दर्य की महान् प्रतिमा की भाँति उठा हुआ था।

अन्त में, मेरे साथी ने मौन तोड़ा। उन्होंने कहा, "नारी के आर्य और सेमेटिक आदर्श सदा ही एक दूसरे के बिल्कुल विपरीत रहे हैं। सेमेटिक लोगों में नारी की उपस्थिति भक्ति में बाधक मानी गयी है, और वहाँ वह कोई धार्मिक कृत्य नहीं करती, जैसे कि भोजन के लिए एक पक्षी को मारना तक भी; आर्य लोगों के अनुसार पुरूष कोई भी धार्मिक कृत्य अपनी पत्नी के बिना नहीं कर सकता।"

"पर स्वामी जी!" मैने इतनी व्यापक और अप्रत्याशित स्थापना से चौंक कर कहा, "क्या हिन्दू धर्म आर्य धर्म नहीं है?"

स्वामी जी शान्त भाव से बोले "आधुनिक हिन्दूत्व अधिकतर पौराणिक है, अर्थात् बुद्ध के बाद उत्पन्न हुआ है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने इस बात की ओर ध्यान आकृष्ट किया है कि यद्यपि पत्नी गार्हपत्य अग्नि में आहुति प्रदानरूप वैदिक अनुष्ठान के लिए नितान्त आवश्यक है; पर वह शालिग्राम-शिला अथवा घर में ठाकुर जी की मूर्ति को नहीं छू सकती, क्योंकि वे पिछले पुराण-काल की उत्पत्ति हैं।"

"और इसलिए आपका विचार है कि हम लोगों में नारी की असमानता पूर्णतया बौद्ध मत के प्रभाव के कारण है?"

"जहाँ वह है, निश्चय ही ऐसा है," स्वामी जी ने कहा, "पर हमें यूरोपीय आलोचना की अचानक आयी हुई बाढ़ और उसके कारण अपने में उत्पन्न हुई अन्तर की भावना के वशीभूत होकर अपनी नारियों की असमानता के विचार को स्वीकार करने में अत्यधिक शीघ्रता नहीं करनी चाहिए। परिस्थितियों ने हमारे लिए अनेक शताब्दियों से नारी की रक्षा की आवश्यकता को अनिवार्य बनाया है। हमारे इस रिवाज का कारण इस तथ्य में है, नारी की हीनता में नहीं।"

"तो स्वामी जी, आप हमारे बीच नारियों की स्थिति से पूर्णतया सन्तुष्ट हैं?"

"कदापि नहीं," स्वामी जी ने कहा, "पर हमारा हस्तक्षेप करने का अधिकार केवल शिक्षा का प्रचार कर देने तक ही सीमित है। हमें नारियों को ऐसी स्थिति में पहुँचा देना चाहिए, जहाँ वे अपनी समस्या को अपने ढंग से स्वयं सुलझा सकें। उनके लिए यह काम न कोई कर सकता है

और न किसी को करना ही चाहिए। और हमारी भारतीय नारियाँ संसार की अन्य किन्हीं भी नारियों की भाँति इसे करने की क्षमता रखती है।''

''तो स्वामी जी, क्या हमारी नारियों की कोई समस्या है भी?''

''निश्चय ही हैं, उनकी समस्याएँ बहुत सी हैं और गम्भीर हैं, पर उनमें एक भी ऐसी नहीं है, जो जादू भरे शब्द 'शिक्षा' से हल न की जा सकती हो। पर वास्तविक शिक्षा की तो अभी हम लोगों में कल्पना भी नहीं की गयी है।''

''और आप उसकी परिभाषा कैसे करेंगे?''

''मैं कभी किसी बात की परिभाषा नहीं करता'', स्वामी जी ने मुस्कराते हुए कहा, ''फिर भी हम इसे मानसिक शक्तियों का विकास– केवल शब्दों का रटना मात्र नहीं, अथवा व्यक्तियों को ठीक तरह से और दक्षतापूर्वक इच्छा करने का प्रशिक्षण देना कह सकते हैं। इस प्रकार हम भारत की आवश्यकता के लिए महान् निर्भीक नारियाँ तैयार करेंगे– नारियाँ जो संघमित्रा, लीला, अहल्याबाई और मीराबाई की परम्पराओं को चालू रख सकें– नारियाँ जो वीरों की माताएँ होने के योग्य हों, इसलिए कि वे पवित्र और आत्मत्यागी हैं, और उस शक्ति से शक्तिशाली हैं, जो भगवान के चरण छूने से आती है।''

''तो स्वामी जी, आप इस देश की नारियों को क्या संदेश देंगे।''

स्वामी जी ने कहा, ''इस देश की नारियों को ही क्यों, मैं उनसे भी वही बात कहूँगा, जो पुरूषों से कहता हूँ। भारत में विश्वास करो और हमारे भारतीय धर्म में विश्वास करो। शक्तिशाली बनो, आशावान बनो और संकोच छोड़ो; और याद रखो कि यदि हम बाहर से कोई वस्तु लेते हैं, तो संसार की किसी अन्य जाति की तुलना में हिन्दू के पास उसके बदले में देने को अनन्त गुना अधिक है।''

न्यूयार्क में स्वामी विवेकानन्द ने कहा, ''मैं बहुत चाहता हूँ कि हमारी महिलाओं में तुम्हारी बौद्धिकता होती, परन्तु यदि वह चारित्रिक पवित्रता का मूल्य देकर ही आ सकती हो, तो मैं उसे नहीं चाहूँगा। तुमको जो कुछ आता है, उसके लिए मैं तुम्हारी प्रशंसा करता हूँ, लेकिन जो बुरा है, उसे गुलाबों से ढककर उसे अच्छा कहने का जो यत्न तुम करती हो, उससे मैं नफरत करता हूँ। बौद्धिकता ही परम श्रेय नहीं है। नैतिकता और आध्यात्मिकता के लिए हम प्रयत्न करते हैं। हमारी महिलाएँ इतनी विदुषी नहीं, परन्तु वे अधिक पवित्र हैं। प्रत्येक महिला के लिए अपने पति को छोड़ अन्य कोई भी पुरूष पुत्र जैसा होना चाहिए।

"प्रत्येक पुरूष के लिए अपनी पत्नी को छोड़ अन्य सब महिलाएँ माता के समान होनी चाहिए। जब मैं अपने आसपास देखता हूँ और तथाकथित नारी प्रेम के नाम पर जो कुछ चलता है, वह देखता हूँ, तो मेरी आत्मा ग्लानि से भर उठती हैं। जब तक तुम्हारी महिलाएँ यौन सम्बन्धी प्रश्न की उपेक्षा करके सामान्य मानवता के स्तर पर नहीं मिलतीं, उनका सच्चा विकास नहीं होगा, तब तक वे सिर्फ खिलौना बनी रहेंगी, और कुछ नहीं। यही सब तलाक का कारण है। तुम्हारे पुरूष नीचे झुकते है और कुर्सी देते हैं, मगर दूसरे ही क्षण वे प्रशंसा में कहना शुरू करते हैं– देवी जी, तुम्हारी आँखे कितनी सुन्दर हैं! उन्हें यह करने का क्या अधिकार है? एक पुरूष इतना साहस क्यों कर पाता है, और तुम महिलाएँ कैसे इसकी अनुमति दे सकती हो? ऐसी चीजों से मानवता के अधमतर पक्ष का विकास होता है। उनसे श्रेष्ठ आदर्शों की ओर हम नहीं बढ़ते।

"हम महिला और पुरूष हैं, हमें यही न सोचकर सोचना चाहिए कि हम मानव हैं, जो एक दूसरे की सहायता करने और एक दूसरे के काम आने के लिए जन्में है। ज्यों ही एक तरूण और तरूणी एकान्त पाते हैं, वह उसकी प्रशंसा करना शुरू करता है, और इस प्रकार विवाह के रूप में पत्नी ग्रहण करने के पहले वह दो सौ महिलाओं से प्रेम कर चुका होता हैं। वाह! यदि मैं विवाह करने वालों में से एक होता, तो मैं प्रेम करने लिए ऐसी ही महिला खोजता, जिससे यह सब कुछ न करना होता।

"जब मैं भारत में था और बाहर से इन चीजों को देखता था, तो मुझसे कहा जाता था, यह सब ठीक है, यह निरा मनबहलाव है। मनोरंजन है और मैं उसमें विश्वास करता था। परन्तु उसके बाद मैंने काफी यात्रा की है, और मैं जानता हूँ कि यह ठीक नहीं है। यह गलत है, सिर्फ तुम पश्चिम वाले अपनी आँखे मूँदे हो और उसे अच्छा कहते हो। पश्चिम के देशों की दिक्कत यह है कि वे बच्चे हैं, मूर्ख हैं, चंचल चित्त हैं और समृद्ध हैं। इनमें से एक ही गुण अनर्थ करने के लिए काफी है; लेकिन जब ये तीनों, चारों एकत्र हों, तो सवधान!"

5. जन शिक्षा

5.1 जन शिक्षा के विषय में स्वामी जी का बड़ा ही दृढ़ और सुस्पष्ट विचार था। वे इसे सर्वाधिक अदृश्य से दृश्य रूपों में प्रचलित हमारी भेदभाव की समस्या के निराकरण का एक मात्र समाधान मानते थे। वे इस बात के समर्थक थे कि शिक्षा प्रत्येक घर तक पहुँचनी चाहिए और शिक्षा का माध्यम देशी भाषाएँ-मातृ-भाषा होनी चाहिए।

अधोलिखित विवरण स्वामी जी द्वारा इस विषय का अत्यन्त बोधगम्य, सशक्त और हृदयग्राही प्रस्तुतीकरण है। अपने विचारों को यथायोग्य

व्यवस्थित बनाकर उन्हें एक उपयुक्त परिप्रेक्ष्य में विकसित करने हेतु इस पर गहन मनोयोग की जरूरत है।

❖ राष्ट्रीय महापाप

5.2 भारत में गरीबों, दीन-दुखियों की दशा के बारे में सोचकर मेरा हृदय कराह उठता है। वे दिन-प्रतिदिन निम्नतर अवस्था में गिरते जा रहे हैं। वे क्रूर समाज द्वारा अपने ऊपर किए जा रहे प्रहार का अनुभव करते हैं, किन्तु वे यह नहीं जानते कि यह प्रहार कहाँ से आ रहा है। वे यह भूल गए हैं कि वे भी मनुष्य हैं। मेरा हृदय इन भावों को व्यक्त करने में असमर्थ है। जब तक लाखों लोग भूख और अज्ञानता में जीवन-यापन कर रहे हैं, तब तक मैं ऐसे प्रत्येक मनुष्य को विश्वासघाती मानता हूँ जो जनता के खर्च पर शिक्षित होकर उनकी ओर थोड़ा भी ध्यान नहीं देता। हमारा राष्ट्रीय महापाप जनता की उपेक्षा है और यही हमारे अधःपतन का कारण है। जब तक भारत की जनता एक बार फिर से सुशिक्षित, सुपोषित और समुचित देख–रेख से युक्त नहीं होती, तब तक कितनी भी राजनीति की जाय, उसका कोई लाभ नहीं होगा।

❖ एकमात्र समाधान : जन-शिक्षा

5.3 एक राष्ट्र जनता के बीच शिक्षा और ज्ञान के प्रसार के अनुपात में ही उन्नति करता है। भारत के अधःपतन का प्रमुख कारण है राष्ट्र की पूरी शिक्षा और ज्ञान पर मुट्ठीभर लोगों का विशेषाधिकार होना। यदि हमें पुनः जागृत होना है, तब हमें जन-मानस में शिक्षा का विस्तार करना होगा। हमारे निम्नतर वर्गों के लिए एकमात्र करणीय सेवा है उनके मनुष्यत्व को विकसित करने हेतु उन्हें शिक्षित बनाना। उन्हें विचारों से अवगत कराया जाना चाहिए। उनके चारों ओर संसार में हो रही बातों के प्रति उनकी आँखों को खोलना चाहिए और तब वे अपनी मुक्ति स्वयं ढूंढ़ लेंगे। प्रत्येक राष्ट्र, प्रत्येक पुरूष और प्रत्येक नारी को अपनी मुक्ति हेतु स्वयं प्रयत्न करना होगा। उन्हें विचारो से अवगत करायें, उन्हें एकमात्र इसी मदद की जरूरत है, फिर शेष सब परिणाम के रूप में आएगा ही। हमें सभी रासायनिक तत्वों को बस एक में मिला देना है, फिर प्रकृति के नियम से निखार आ ही जाता है।

❖ महान आध्यात्मिक सत्यों का सभी तक विस्तार

5.4 स्वामी जी के कथनानुसार सर्वप्रथम आध्यात्मिकता के उन रत्नों को बाहर निकालना है जो हमारे ग्रन्थों में संचित हैं और केवल कुछ लोगों के

अधिकार में हैं, जो मानो मठों और वनों में छिपे हैं– उन्हें बाहर निकालना है। उनमें निहित ज्ञान को बाहर निकालना है, उन हाथों से ही बाहर नहीं निकालना है जहाँ वे गुप्त पड़े हैं, बल्कि उनसे भी अधिक जिस दुर्गम मंजूषा में गुप्त हैं– जिस भाषा में वे सुरक्षित हैं, शताब्दियों के संस्कृत शब्दों के परत-दर-परत जमाव में सुरक्षित हैं। एक शब्द में कहें तो मैं उन्हें लोकप्रिय बनाना चाहता हूँ। मैं इन विचारों को बाहर निकालना चाहता हूँ और उन्हे सबकी, भारत में प्रत्येक व्यक्ति की, साझा सम्पत्ति बना देना चाहता हूँ, चाहे वह संस्कृत भाषा जानता हो या न जानता हो। इस मार्ग की बड़ी कठिनाई संस्कृत भाषा है, हमारी यह गौरवमयी भाषा। यह कठिनाई तब तक दूर नहीं हो सकती, जब तक कि, यदि यह सम्भव हो, हमारा सम्पूर्ण राष्ट्र अच्छा संस्कृत विद्वान न हो जाय। तुम इस कठिनाई को तब समझोगे जब मैं तुम्हें यह बता दूँ कि मैं इस भाषा को अपने जीवन भर अध्ययन करता रहा हूँ और फिर भी हर नई पुस्तक मेरे लिए नवीन होती है।

❖ शिक्षा का माध्यम : मातृ-भाषा

5.5 स्वामी जी के विचारानुसार यह उन लोगों के लिए कितना और कठिन होगा जिनके पास गहराई से अध्ययन करने का समय नहीं है। इसलिए इन विचारों को लोगों की भाषा में पढ़ाना होगा। जनता को देशी भाषाओं में शिक्षा दी जाये। उन्हें विचार दिया जाये, वे सूचना प्राप्त करेंगे, किन्तु इससे भी कुछ अधिक की आवश्यकता होगी। उन्हें संस्कार देने की। जब तक उन्हें संस्कार नहीं मिलेंगे, तब तक जनता की उन्नत दशा में कोई स्थायित्व नहीं रह सकता।

❖ संस्कृत शिक्षा

5.6 इसी के साथ ही साथ संस्कृत शिक्षा भी अवश्य चलनी चाहिए क्योंकि संस्कृत शब्दों की ध्वनि मात्र मानव जाति को एक गरिमा, एक शक्ति और एक बल प्रदान करती हैं। यहाँ तक कि महात्मा गौतम बुद्ध ने भी जनता को संस्कृत भाषा के अध्ययन से रोक कर एक गलत कदम उठाया था। वे शीघ्र और तत्काल परिणाम चाहते थे, इसलिए उन्होंने अनुवाद करके तत्कालीन प्रचलित पालि भाषा में उपदेश दिया। यह शानदार बात थी कि वे जनभाषा में बोले और लोगों ने उसे समझा। इससे उनके विचार जल्दी से फैले और दूर-दूर तक उसका प्रचार-प्रसार हुआ। किन्तु इसके साथ ही संस्कृत का भी प्रचार-प्रसार होना चाहिए था। ज्ञान तो आया, किन्तु उसमें गरिमा नहीं थी। जब तक तुम जनता को गरिमा नहीं देते, तब तक संस्कृत भाषा का लाभ उठाकर एक दूसरी जाति उत्पन्न हो जायेगी जो जल्दी ही शेष सब से ऊपर हो जायेगी।

❖ राष्ट्र का वास– कुटियों में

5.7 स्वामी जी ने स्पष्ट रूप से ध्यानाकर्षित किया कि यह याद रखो कि राष्ट्र झोपड़ियों में बसता है। सम्प्रति तुम्हारा यह कर्तव्य है कि देश के एक भाग से दूसरे भाग में, एक गाँव से दूसरे गाँव में जाओ और लोगों को समझाओ कि केवल निष्क्रिय होकर बैठने से कुछ नहीं होगा। उन्हें उनकी वास्तविक स्थिति समझाओ और कहो, 'अरे भाइयों, सभी लोग उठो, जागो। तुम और कितनी देर तक सोते रहोगे।' जाओ और उन्हें सलाह दो कि वे अपनी दशा में कैसे सुधार करें तथा शास्त्रों की बातों को सुबोध और जनप्रिय ढंग से प्रस्तुत करके उन्हें शास्त्रों के उदात्त सत्यों को समझाओ। उनके मन पर यह छाप छोड़ दो कि धर्म पर उनका भी वैसा ही अधिकार है जैसा ब्राह्मणों का है। यहाँ तक कि चाण्डालों को भी इन अग्नि-मंत्रों में दीक्षित कर दो। साथ ही उन्हें सरल शब्दों में जीवन की आवश्यकताओं और वाणिज्य, व्यापार, कृषि आदि की शिक्षा दो।

❖ जीवन के सभी क्षेत्रों का अध्यात्मीकरण

5.8 जातियों, राजाओं और विदेशियों की कई शताब्दियों तक हजारों वर्षों तक की पीस डालने वाली क्रूरता ने जनता की सारी शक्ति निचोड़ डाली है और बल प्राप्त करने का पहला कदम है– उपनिषदों का सहारा लेना और यह विश्वास करना कि 'मैं आत्मा हूँ' 'मुझे तलवार काट नहीं सकती, हथियार मेरा भेदन नहीं कर सकते, मुझे अग्नि जला नहीं सकती; मुझे हवा सुखा नहीं सकता; मैं सर्वशक्तिमान हूँ, मैं सर्वज्ञ हूँ।' वेदान्त के इन विचारों को जंगल और गुफाओं से बाहर लाना ही होगा। इन विचारों को अदालत और न्यायपीठ से बाहर कार्य हेतु लाना ही होगा, ये विचार धर्मोपदेशक के आसन पर, गरीब की झोपड़ी में, मछली पकड़ने वाले मछुआरों और अध्ययनरत छात्रों तक पहुँचने ही चाहिए। ये विचार हर मनुष्य, महिला और बच्चों का आह्वान करते हैं, उनका व्यवसाय चाहे जो भी हो, वे जहाँ कहीं भी हों। मछुआरे और ये सभी लोग उपनिषदों के विचारों को व्यवहार में कैसे ला सकते हैं? इसका उपाय बताया गया है। यदि मछुआरा सोचता है कि वह आत्मा है, तो वह एक बेहतर मछुआरा बनेगा। यदि छात्र सोचता है कि वह आत्मा है, तो वह एक बेहतर छात्र बनेगा।

❖ हर घर तक शिक्षा

5.9 भारत में सभी बुराइयों की जड़ में एक चीज है और वह है गरीबों की दशा। मान लो तुम हर गाँव में निःशुल्क विद्यालय खोल दो, तो भी इससे कोई लाभ नहीं होगा, क्योंकि भारत में ऐसी गरीबी है कि गरीब बच्चे

विद्यालय में जाने के बदले खेतों में अपने पिता की मदद के लिए जायेंगे अथवा रोजी-रोटी जुटाने का प्रयास करेंगे। यदि पर्वत मोहम्मद के पास नहीं आता है, तो मोहम्मद को ही पर्वत के पास जाना होगा। यदि गरीब बच्चे शिक्षा तक नहीं आ सकते, तो शिक्षा को उनके पास जाना होगा। हमारे अपने देश में हजारों एकनिष्ठ, आत्मबलिदानी, सन्यासी गाँव–गाँव जाकर धर्म की शिक्षा देते हैं। यदि उनमें से कुछ सन्यासियों को सांसारिक चीजों के शिक्षक के रूप में संगठित किया जाय, तो वे जगह-जगह, द्वार-द्वार केवल धर्मोपदेश हेतु ही नहीं बल्कि शिक्षण हेतु भी जायेंगे। मान लो ऐसे दो लोग गाँव में सायंकाल कैमरा, ग्लोब, कुछ नक्शे आदि लेकर जाएँ तो वे अशिक्षितों को खगोल विज्ञान ओर भूगोल की शिक्षा दे सकते हैं। विभिन्न राष्ट्रों के बारे में कहानियाँ बताते हुए वे गरीबों को सैकड़ों गुना अधिक सूचनाएँ केवल कान से सुनाकार दे सकते हैं, जितना कि वे पुस्तकों द्वारा जीवन भर में नहीं पा सकते। आधुनिक विज्ञान की सहायता से उनमें ज्ञान भर दो। उन्हें इतिहास, भूगोल, विज्ञान, साहित्य की शिक्षा दो और इसके साथ ही इनके द्वारा धर्म के गहन सत्यों की भी शिक्षा दो।

5.10 अस्तित्व के संघर्ष में व्यस्त रहने के कारण उन्हें ज्ञान के प्रति जागरूक होने का अवसर नहीं मिल पाया। वे इतने दीर्घकाल तक यन्त्रवत् कार्य करते रहे और चालाक शिक्षित वर्ग ने उनके श्रम के बदले मिलने वाले लाभ के भारी हिस्सा को स्वयं ले लिया है। लेकिन समय बदल चुका है, निम्नतर वर्गों के लोग क्रमशः इस तथ्य के प्रति जागरूक हो रहे हैं और इसके विरूद्ध एक संयुक्त मोर्चा बना रहे हैं। उच्चतर वर्गों के लोग अब निम्नतर वर्गों को और अधिक समय तक दबाकर रखने में समर्थ नहीं होगे, भले ही वे ऐसा प्रयास जारी रखें। अब उच्चतर वर्गों के लोगों का कल्याण निम्नतर लोगों को उनके उचित अधिकारों को दिलाने में उनकी सहायता करने में निहित है। इसलिए, मैं कहता हूँ, जनता के बीच शिक्षा के प्रसार के कार्य में अपने को लगो दो। उन्हें बताओ और समझाओ कि 'तुम हमारे भाई हो, हमारे शरीर के अभिन्न अंग हो।' यदि वे तुमसे ऐसी सहानुभूति प्राप्त करेंगे तो कार्य हेतु उनका उत्साह सैकड़ों गुना बढ़ जायेगा।

❖ महान् उपलब्धियों की पूर्वापेक्षाएँ

महान उपलब्धियों हेतु तीन चीजें आवश्यक हैं–

➢ अनुभव

सर्वप्रथम, हृदय से अनुभव करो। बुद्धि या तर्क में क्या रखा है? यह कुछ कदम चलकर फिर रूक जाती है। किन्तु हृदय के माध्यम से

प्रेरणा आती है। प्रेम सर्वाधिक असम्भव द्वारों को खोल देता हैं। इसलिए मेरे भावी देश प्रेमियों! अनुभव करो। क्या तुम अनुभव करते हो? क्या तुम यह अनुभव करते हो कि देवताओं और ऋषियों की लाखों सन्तानों की अवस्था जंगली पशुओं के समान हो गई है? क्या तुम अनुभव करते हो कि आज लाखों–लाखों लोग भूखों मर रहे हैं और लाखों-लाखों लोग युगों-युगों से भूखों मर रहे हैं। क्या तुम अनुभव करते हो कि इस देश में अज्ञानता काले बादलों के समान छा गई है? क्या इससे तुम्हें बेचैनी होती है? क्या इससे तुम्हें नींद नहीं आती? क्या यह तुम्हारे रक्त में प्रविष्ट हो गई है, क्या यह बात शिराओं से होते हुए तुम्हारे हृदय की धड़कन के साथ जुड़ गई है? क्या इस बात ने तुम्हें लगभग पागल सा बना दिया है? क्या तुम अधःपतन के दुःख के विचार से ग्रस्त हो गए हो और क्या तुम अपना नाम, यश, पत्नी, बच्चे, धन-सम्पत्ति और अपना शरीर तक भूल गए हो? क्या तुमने ऐसा कर लिया है? यह तो बिल्कुल पहला कदम है।

➢ समाधान

तुम अनुभव कर सकते हो, किन्तु अपनी शक्तियों को खोखली बातों में खर्च करने के बजाय क्या तुमने कोई उपाय ढूँढ़ा है, उनके दुःखों को कम करने के लिए, उन्हें इस सजीव मृत्यु से बाहर निकालने के लिए कोई व्यावहारिक समाधान खोजा है। फिर भी, यही सब कुछ नहीं हैं, क्या पर्वत-सदृश बाधाओं को पार करने की इच्छाशक्ति तुम्हारे पास है? यदि सारा संसार हाथ में तलवार लेकर तुम्हारे विरूद्ध खड़ा हो जाय, तो क्या तब भी तुम जिसे सही समझते हो, उसे करने के लिए साहस करोगे?

➢ दृढ़ता

यदि तुम्हारी पत्नी और बच्चे तुम्हारे विरूद्ध हो जायें, यदि तुम्हारा नाम मिट जाय, तुम्हारी सम्पत्ति नष्ट हो जाय, क्या तब भी तुम उसे नहीं छोड़ोगे? क्या तब भी तुम उसका अनुसरण करते हुए दृढ़तापूर्वक अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होते रहोगे? जैसा कि महान् राजा भर्तृहरि कहते हैं, "नीतिज्ञ लोग चाहे निन्दा करें या प्रशंसा करें; लक्ष्मी चाहे आए या अपनी इच्छानुसार चली जाय; आज ही मृत्यु हो जाय या युगों के बाद हो; धीरवान लोगों का कदम सत्य और न्याय के पथ से एक इंच भी विचलित नहीं होता।" क्या तुमने ऐसी दृढ़ता प्राप्त कर ली है? यदि तुममें ये तीन चीजें हैं तो तुममें से प्रत्येक चमत्कारपूर्ण कार्य करेगा।

❖ कार्य उपासना के रूप में

5.11 *हमें प्रार्थना करनी चाहिए, 'कृपया हमें प्रकाश की ओर ले चलो।' अंधेरे में से एक किरण आयेगी और हमारे मार्ग दर्शन हेतु एक हाथ सामने आ जायेगा। हममें से प्रत्येक को भारत के लाखों दलितों के लिए प्रार्थना करनी होगी जो गरीबी-पुरोहितवाद और उत्पीड़न से जकड़े हुए हैं; उनके लिए दिन रात प्रार्थना करो। मैं उच्च वर्गीय और धनी लोगों की अपेक्षा उन दलितों को शिक्षित करने का अधिक ख्याल रखता हूँ। मैं कोई तत्वमीमांसाविद् नहीं हूँ, कोई दार्शनिक नहीं हूँ, यही नहीं, कोई सन्त नहीं हूँ। किन्तु मैं निर्धन हूँ। मैं निर्धनों से प्रेम करता हूँ। चिरकाल तक गरीबी और अज्ञानता में डूबे बीस करोड़ नर-नारियों के लिए कौन सोचता है? मैं उसे महात्मा कहता हूँ जो गरीबों के लिए सोचता है, जो उनके लिए पीड़ा अनुभव करता है। वे प्रकाश या शिक्षा नहीं खोज सकते हैं। उनके लिए कौन प्रकाश लायेगा, उन्हें शिक्षा देने के लिए कौन द्वार-द्वार घूमेगा? ये मनुष्य ही तुम्हारे ईश्वर हो जायें, उनके बारे में सोचो, उनके लिए कार्य करो, निरन्तर उनके लिए प्रार्थना करो– ईश्वर तुम्हारा पथ-प्रदर्शन करेंगे।*

6. पर्यावरणीय शिक्षा और प्रबन्ध

6.1 पहले से ही बोझिल शिक्षक-प्रशिक्षण के कार्यक्रम पर पर्यावरण शिक्षा को दूसरे कई अन्य दबावों या आरोपणों की तरह ही देखा जा सकता है। अब विद्यालयों और अध्यापकों की ही भाँति अध्यापक प्रशिक्षकों को भी अक्सर समाज की समस्याओं को हल करने के काम में लगाया जा रहा है। सरकार द्वारा धन आवंटित किए जाने तथा सामाजिक प्रश्नों, मुद्दों तथा समस्याओं के प्रति विद्यालयीय शिक्षा की प्रासंगिकता की बढ़ती अपेक्षा के फलस्वरूप ऐसी उम्मीद रखना स्वाभाविक ही है। इस प्रकार यह नितान्त आवश्यक है कि शिक्षा व्यावसायिक तौर पर प्रासंगिक हो, अन्तर्सांस्कृतिक सद्भाव और सम्मान को बढ़ावा दे, वैयक्तिक एवं अन्तर्वैयक्तिक कौशलों का विकास करे और सक्रिय नागरिकता को प्रोत्साहन दे। हैजलैट (1979) ने सरकारी नीति प्रक्रिया की व्याख्या करते हुए यह बताया है कि वे राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक समस्याओं को अपनी ओर से न्यून बना कर शैक्षिक व्यवस्थाओं की ओर कर देती हैं और विद्यालयों से यह अपेक्षा करती हैं कि वे वर्तमान कमियों को दूर करें व व्यक्ति और समूह के लिए बेहतर भविष्य का निर्माण करें।

6.2 उक्त नीतिगत प्रक्रिया के तहत पाठ्यक्रमों में कई तरह के मुद्दों यथा : बहुसांस्कृतिक शिक्षा, विद्यालय एवं उद्योगों के मध्य सम्बन्ध, उपभोक्ता शिक्षण, औषधि शिक्षण, एच.आई.वी./एड्स शिक्षण आदि को शामिल करना इसके उदाहरण हैं। इस प्रक्रिया तथा जिस आधार पर ये निर्णय

लिए जाते हैं, उनकी नैतिकता एवं अभिप्रेरणा के विषय में वाद-विवाद हुए हैं। फिर भी यह निर्विवाद है कि ऐसी शिक्षण समस्याओं और विद्यालयों में इस तरह के पाठ्यक्रमों के विकास से अध्यापकों और अध्यापक शिक्षण कार्यक्रमों पर अतिरिक्त अपेक्षाएँ बढ़ी हैं।

6.3 अन्य ऐसी शिक्षण समस्याओं में पर्यावरणीय शिक्षा भी एक है जिनकी अध्यापक प्रशिक्षण से अपेक्षा की जाती है। जैसा कि आरंभिक कथन में संकेतित है– धारणीयता का संकट जनता के लिए एक स्थायी एजेंडा ही नहीं बल्कि एक महत्वपूर्ण मुद्दा भी है। ऐसा कोई भी दूसरा मुद्दा दुनिया भर में आज इतना व्यापक और दीर्घकालिक महत्व का नहीं हैं जितना इस पृथ्वी, ग्रह और हमारी सामाजिक व्यवस्था के संसाधनों की सीमा के तहत जीने के मार्ग ढूँढ़ लेने से सम्बन्धित है।

6.4 जीवन के अनेक हिस्सों के व्यक्तियों ने इसे स्वीकारा है और विकास की वर्तमान पद्धति की धारणीयता और पारिस्थितिकी की स्थिरता से सम्बन्धित जन चिन्ता और पर्यावरणीय समस्याओं के बारे में जनजागरूकता के बढ़ते स्तर के रूप में यह अभिव्यक्त हुई है। एशिया प्रशांत क्षेत्र में अनेक विद्यालय और महाविद्यालयों में विद्यार्थियों, अभिभावकों और अध्यापकों द्वारा प्रवर्तित किये गये हैं जिनकी रूचि प्रत्यक्षतः धारणीयता के मुद्दे में है तथा जो इन समस्याओं को पर्यावरण शिक्षा के रूप में शामिल करना चाहते हैं और जिन्होंने अनेक नवाचारी कार्यक्रम और गतिविधियों की श्रृंखला भी विकसित की है। उन्हें व्यावसायिक विकास हेतु अवसरों के सृजन, संसाधनों एवं दिशानिर्देशों के प्रावधान और शिक्षा प्रणाली की नीति निर्धारण प्रक्रिया द्वारा सहयोग मिला है। यहाँ उल्लेखनीय है कि विज्ञान, समाज विज्ञान और भूगोल अध्ययन के पाठ्यक्रमों से जुड़े अध्यापक प्रशिक्षकों ने पर्यावरण शिक्षा के व्यावसायिक विकास हेतु बढ़ती हुई आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर कई तरह से अपनी सहभागिता जताई है।

6.5 इन सरकारी अपेक्षाओं और विद्यालयों में पर्यावरण शिक्षा के प्रति बढ़ती हुई रूचि के बावजूद कि पर्यावरण-शिक्षा पारिस्थितिकी की धारणीयता के संतुलन में अपेक्षित भूमिका अदा करेगी, पर्यावरण शिक्षा मूल्यांकन के अनेक अध्ययन इस सम्बन्ध में अधिक चिन्ता का ही संकेत प्रस्तुत करते हैं। ये अध्ययन जिनका बाद में और विस्तार हुआ इस ओर भी संकेत करते हैं कि पर्यावरण शिक्षा की अच्छी बातों का बहुत अधिक प्रसार नहीं हो सका है जैसा कि शिक्षा प्रणाली और नीतियाँ चाहती थीं। यहाँ तक कि अच्छे मनोभावों के बावजूद बहुत से विद्यालय और अध्यापकों को पर्यावरण शिक्षा की पद्धति और उद्देश्यों के विस्तृत स्वरूप को लागू करने में बहुत अधिक कठिनाई हुई। इसका कारण यह है कि ऐसे अध्यापकों का प्रतिशत बहुत कम है जिन्हें प्रशिक्षण के पूर्व की स्थिति में

या सेवाकाल में पर्यावरण शिक्षा को दृष्टिगत रखकर व्यावसायिक विकास के दायरे में लाया गया है।

6.6 ये चिन्ताएँ सामयिक हैं तथा यह इंगित करती हैं कि सेवा पूर्व अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम के तहत समग्र रूप से पर्यावरण शिक्षा की ओर ध्यान देने की आवश्यकता है। इस माड्यूल का उद्देश्य अध्यापक प्रशिक्षण में पर्यावरण शिक्षा के मुद्दों पर बहस को बढ़ावा देना है। ऐसे विमर्श से प्राप्त परिणामों में निम्नांकित बिन्दु सम्मिलित हो सकते हैं–

(i) अध्यापक प्रशिक्षण में विविध विषयों के तहत पर्यावरण शिक्षा में और अधिक रूचि जागृत होना और उनका विस्तार;

(ii) एशिया प्रशान्त क्षेत्र के अध्यापक प्रशिक्षण संस्थानों के मध्य पर्यावरण शिक्षा के अन्तर्गत विशेषज्ञता, परिचर्चा तथा शोध को साझा करना;

(iii) पर्यावरण की दृष्टि से प्रशिक्षित अध्यापक की क्षमताओं की पहचान करना;

(iv) अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम में पर्यावरण शिक्षा हेतु वर्तमान प्राविधानों की समीक्षा करना; और

(v) एक व्यापक दृष्टिकोण के आधार पर अध्यापकों को उन चुनौतियों और उत्तरदायित्वों के निर्वहन के लिए तैयार करना जिनका वे विद्यालयों और महाविद्यालयों के पर्यावरणीय शिक्षा के दौरान प्रायः सामना करते है।

6.7 इस मॉड्यूल् का लक्ष्य समूह वे लोग है जो सेवा पूर्व और सेवा के दौरान अध्यापक प्रशिक्षण की व्यवस्था से संबद्ध है। फिर भी अधिक जोर सेवा-पूर्व शिक्षक प्रशिक्षण पर ही है क्योंकि उन्हें अपने व्यावसायिक सामाजीकरण एवं प्रशिक्षण के समय ही पर्यावरण शिक्षा के महत्व को बताना अधिक उपादेय होगा। तथापि, अध्यापकों के सेवाकाल के दौरान उनके व्यावसायिक विकास के सन्दर्भ में भी यह प्रासंगिक है। यह भी समीचीन होगा कि अध्यापक प्रशिक्षण संस्थानों के साथ ही, व्यावसायिक संगठनों, शिक्षा संस्थाओं और विद्यालयों को भी इस अभियान में सम्मिलित किया जाए, जिससे इन निहितार्थों को वे अपने पाठ्यक्रम विकास, कार्मिक विकास, लघु अवधि के पाठ्यक्रमों, उच्च स्तरीय अध्ययनों एवं पर्यावरण शिक्षा में शोधों के माध्यम से अपनी पहल का हिस्सा बना सकें।

6.8 इस आलोक में, पर्यावरण शिक्षा के विकास की वर्तमान अवस्था में, विशेषतौर से औपचारिक शिक्षा के सन्दर्भ में सामान्यतः एक नवीन 'सुयोजित अधिगम' उपागम दृष्टिगत हो रहा है। पूर्व में नियत पाठ्यक्रम

के अन्तर्गत वास्तविक जीवन के कतिपय मुद्दों को समाहित करते हुए, उन्हें कक्षागत अधिगम की प्रक्रियाओं में लाया गया है। इस प्रकार की रणनीति पर्यावरण शिक्षा से सम्बन्धित सम्प्रत्ययों, सिद्धान्तों एवं विचारों के प्रति जागरूकता एवं अवबोध विकसित करने में प्रभावी है तथा इस पर आगे भी कायम रहने एवं इसे आगे बढ़ाने की नितान्त आवश्यकता है। तथापि इस भौगोलिक अंचल के सभी देशों में तथा वैश्विक दृष्टि से भी, निरन्तर वृद्धिशील पर्यावरणीय संकटों के प्रति वास्तविक जीवन स्तर पर कृत प्रयासों को पर्यावरण सुधार एवं सुरक्षा के निमित्त आगे बढाने के लिए पर्यावरण में सीधे हस्तक्षेप की जरूरत हैं। इस प्रकार के प्रस्तावित बदलाव, विविध पाठ्यक्रमों के अभिकल्पन एवं उनकी क्रियान्वयन प्रक्रिया में प्राथमिकता के निहितार्थ ढूँढ़ने की अपेक्षा रखते हैं क्योंकि क्रिया-सह-अधिगम या अधिगम-सह-क्रिया के सिद्धान्त ऐसी विशिष्टताओं के अपनाएँ जाने पर बल देंगे जो सामान्यतः विशेष रूप में नियोजित अधिगम अभिकल्पन के पैमानों में ध्यान का केन्द्र नहीं बन पाती हैं।

6.9 इस प्रकार का कार्य-प्रस्ताव पृथ्वी सम्मेलन (1992, ब्राजील) में लिए गये पृथ्वी संकल्प की आत्मा और उद्देश्य को रूपायित करता है जिसमें यह कहा गया था कि "...वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियों के लिए पृथ्वी को सुरक्षित और विकास योग्य बनाने में सहायता देने के लिए हमें अपनी सामर्थ्य को पूरे तौर पर लगा देना है।..."

7. राष्ट्रीय एकता

7.1 भारतीय लोगों में अनेक समुदाय शामिल हैं और भारतीय संस्कृति में विविध संस्कृतियाँ समाहित हैं, जो एक दूसरे को आत्मसात् तथा अस्वीकार भी करती हैं। हमारे इतिहास में विभिन्न प्रकार के अनेक संघर्ष हुए हैं किन्तु समग्र रूप से तथा हम औचित्यपूर्ण ढंग से कह सकते हैं कि भारतीय जीवन समुदायों और संस्कृतियों में सह–अस्तित्व एक उदाहरण के रूप में महत्वपूर्ण रहा है। किन्तु हम केवल समुदाय को अपने राष्ट्र की एक इकाई के रूप में मानकर एक भूल कर सकते हैं, कि समुदाय एक विश्वास, एक नैतिक संहिता, एक संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता है। ये सभी अमूर्त चीजें है। वे तब मूर्त्त बनती हैं, जब व्यक्ति अपने समुदाय के विश्वास, नैतिक संहिता और संस्कृति के अनुसार कार्य और आचरण करता है। ये व्यक्ति व्यक्ति ही बने रहते हैं, भले ही वे किसी भी आस्था को प्रकट करते हों और उनका कार्य और आचरण जैसा भी हो।

❖ व्यक्ति को समुदाय मानने का भ्रम

7.2 हम व्यक्ति को समुदाय मानकर भ्रमित होने की दिशा में यहाँ तक बढ़ चुके हैं कि व्यक्तियों के गुणों और कार्यों को उनसे सम्बन्धित समुदाय पर अनजाने ही दोषारोपित कर देते हैं। उदाहरण के लिए– यदि एक बालिका का उसी के समुदाय से सम्बन्धित व्यक्ति द्वारा अपहरण किया जाता है तो यह एक अपराध मात्र है; किन्तु अगर किसी अन्य समुदाय के सदस्य द्वारा उसका अपहरण किया जाता है तो हम यह विचार करने हेतु नहीं रूकते कि यह व्यक्ति विशेष किस प्रकार का आदमी हैं; यदि वह स्वभावतः अपराधी है, तो भी उसका कार्य उससे सम्बन्धित समुदाय के विरूद्ध भावनाएँ उत्पन्न कर देता है। अच्छे कार्यों के मामले में भी ऐसी ही बात होती है। अपने आप में एक अच्छे व्यक्ति को किसी विशेष समुदाय से सम्बन्धित होने के कारण उसे वैसा ही माना जाता है। स्पष्टतः, यह चीजों को देखने-समझने का एक त्रुटिपूर्ण तरीका है और अपने सोचने के परिप्रेक्ष्य को ठीक करने के लिए हम जो कुछ कर सकते हैं, उसे हमें अवश्य करना चाहिए।

7.3 समुदाय समग्र रूप से चिन्तन और कार्य नहीं करते। व्यक्ति ही चिन्तन और कार्य करते हैं। यदि कुछ व्यक्तियों को नेतृत्व या कुछ अन्य व्यक्तियों को अपने चतुर्दिक भीड़ एकत्र करने की सामर्थ्य का उपहार प्राप्त है, तो वे एक पूरे समुदाय का प्रतिनिधित्व करके या प्रतिनिधित्व करने का प्रदर्शन करके निजी लाभ प्राप्त कर लेते हैं। वे बहुसंख्यक वर्ग बनाने मे सफल हो सकते हैं अथवा उनके समदाय के बहुसंख्यक सक्रिय सदस्य उन्हें अपना प्रतिनिधि स्वीकार कर लेते हैं। लेकिन यदि हम अपने मस्तिष्क में कोई भ्रम न पालें तो हम अब भी समग्र रूप से समुदाय और उस समुदाय के प्रतिनिधि होने का दावा करने वाले व्यक्ति में भेद समझ सकते हैं और यहाँ तक कि प्रतिनिधियों के रूप में मान्य लोगों में से भी हम जानबूझकर, सोची-समझी नीति के तहत कार्य करने वाले व्यक्तियों और समूह बनाकर रहने की प्रवृत्तिवश अनुगमन करने वाले व्यक्तियों में भेद को समझ सकते हैं।

❖ राष्ट्रीय एकता के आरम्भिक बिन्दु

7.4 राष्ट्रीय एकता के लिए अपेक्षित है कि हम व्यक्तियों के ऊपर ध्यान केन्द्रित करें। व्यक्ति को ही हमें राष्ट्रीय एकता का केन्द्र बिन्दु मानना चाहिए। व्यक्ति ही अपनी क्षमता के अनुसार अपने देश और अपने लोगों के साथ अपने इतिहास और इतिहास द्वारा उसके लिए सृजित स्थिति के साथ अपना तादात्म्य स्थापित करता है। ऐसे तादात्म्य के द्वारा व्यक्ति अपने देश और अपने लोगों की दशा के लिए अंशतः या अधिकांश रूप में अतीत के खराब कर्मों से हीनता और अच्छे कार्यों से गौरवन्वित होने की ज़िम्मेदारी स्वीकार करता है। ऐसे व्यक्ति का आचरण एक नैतिक

आचार संहिता से प्रभावित होता है जिसे वह सर्वोच्च एवं लाभपद्र समझता है।

7.5 इस प्रकार राष्ट्रीय एकता की प्रक्रिया मूलतः व्यक्ति के भीतर जन्म लेती है। यदि भारत एक जाति, एक भाषा, एक धर्म के निवासियों का देश हो और उसमें पर्याप्त मात्रा में ऐसे व्यक्ति न हों जो सचेतन भाव से और प्रभावकारी मात्रा में देश के साथ अपना तादात्म्य स्थापित करते हों, तो वस्तुतः यह देश खण्डित ही रहेगा। हमें एकता प्राप्त करने में विफल रहने वाले समुदायों के दृष्टान्त को विश्व के इतिहास में खोज लेना है जो एकता और सहयोग के सभी कारणगत प्रक्रिया के बावजूद एक सूत्रबद्ध नहीं रह सके। हम ऐसे राष्ट्रों के दृष्टान्तों को भी खोज सकते हैं जो जाति या धर्म या भाषा के मतभेदों के बावजूद एक सर्वमान्य उद्देश्य द्वारा एकीकृत राष्ट्र हैं।

7.6 तो, व्यक्ति अपने देश और अपने लोगों के साथ किस प्रकार अपना तादात्म्य स्थापित करता है? सभी व्यक्ति न तो एक जैसे होते हैं और न एक जैसे हो सकते हैं। दार्शनिक, कलाकार, व्यापारी, सरकारी कर्मचारी, छोटे दुकानदार, भूमिहीन मजदूर इन सबका एक ही उद्देश्य नहीं होता और वे किसी भी समुदाय से सम्बन्धित हो सकते हैं, तथापि वे सभी एक ही तरीके से अनुभव, विचार और कार्य नहीं कर सकते हैं। किन्तु जब हम समुदायों के बारे में बात करते हैं तो इसी बात को भूल जाते हैं और यह स्वाभाविक है कि जब हम राष्ट्र के बारे में सोचते हैं तो हम यह कल्पना करने लगते है कि हमें एक निश्चित मात्रा में एकरूपता आरोपित करनी चाहिए और इसे हम कर सकते हैं और इस प्रकार हम स्वयं को प्रमाणित करते हैं कि हम अविभक्त हैं और हम एक समान हैं। किन्तु यह गलत छोर से जीवन को देखना है और अपने परिप्रेक्ष्य को विकृत करना है। चूँकि तादात्म्यीकरण की प्रक्रिया व्यक्ति के भीतर जन्म लेती है, इसलिए इसे किसी निश्चित योजना के अनुसार प्राप्त नहीं किया जा सकता। वस्तुतः यह एकता प्रत्येक व्यक्ति द्वारा अपने ढंग से समग्र रूप से लोगों के साथ तादात्म्यीकरण का अप्रत्यक्ष परिणाम हो सकती है और यह केवल अप्रत्यक्ष मात्रा तक ही टिकाऊ हो सकती है। किसी एक निश्चित स्तर तक एकता कायम रखना न तो जरूरी है और न ही कायम रखी जा सकती है। इसकी तीव्रता स्थितियों और जरूरतों के अनुसार कम-अधिक हो सकती है और होनी चाहिए।

7.7 यदि हम अपने स्वाधीनता आन्दोलन का विश्लेषण करें, तो हमें पता चलेगा कि इसकी गति मुख्यतः इस तथ्य से निकली थी कि एक व्यक्ति-महात्मा गाँधी ने एक विशिष्ट नैतिक मूल्य् भारतीय-अहिंसा के साथ अपना तादात्म्य स्थापित कर लिया था। महात्मा गाँधी ने अहिंसा के अपने सिद्धान्त से ही अपना विश्वास, अपनी राजनीति, अपना रचनात्मक

कार्यक्रम, अपना समाज सुधार का मार्ग ढूँढ़ निकाला था। सामान्यतः, एकता के परिसूचक के रूप में मान्य राष्ट्र प्रेम, पारिवारिक सम्बन्धों, सामूहिक हितों और देशवासी के रूप में अपने आग्रह और आत्म-संरक्षण की इच्छा का ही प्रक्षेपण है। ये मनोभावनाएँ राष्ट्रीय हैं। किन्तु ये गलत दिशा में भी अग्रसर हो सकती हैं। वे ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न कर सकती हैं जिसमें एक निष्ठाभाव या हिताकांक्षा का दूसरे से टकराव होता है और राष्ट्र विखण्डित हो जाता है अथवा भौतिक हितों का नैतिक सिद्धान्तों के साथ विरोध स्थापित हो जाता है और नैतिक सिद्धान्त की बलि चढ़ा दी जाती है। किन्तु समूह और समूहगत भावनाओं एवं हितों के साथ तादात्म्य बनाने में ऐसे प्रेरक भी हो सकते हैं जो एक सुरक्षित भावनात्मक आश्रय और स्वहितों के निजी साधनों की उपलब्धता से प्रभावित होते हैं।

❖ सभी विचारों को राष्ट्रीय एकता के अधीन रखना

7.8 राष्ट्रीय एकता के सर्वोपरि मूल्य के बारे में कोई प्रश्न ही नहीं हो सकता हैं किन्तु केवल इसके आधारभूत महत्व के कारण अन्य सभी विचारों-तर्कों को इसके अधीन ही रखना होगा। आर्थिक, सामाजिक और शैक्षणिक नीतियों के जरिए प्रदत्त लाभों के मामले में वितरण को भौगोलिक दृष्टिकोण से; वर्ग-वार और दृढ़ता पूर्वक न्याय के अनुसार योजनाबद्ध करना सम्भव है। किन्तु जहाँ वितरण की ऐसी पद्धतियाँ राष्ट्रीय एकता के हितों के साथ विरूद्ध जाती हों, वहाँ उन्हें संशोधित किया जाना चाहिए। एक राष्ट्र में एक राष्ट्रीय भाषा अवश्य होनी चाहिए। एक सर्वमान्य भाषा के कारण या उसे लेकर उठ रही राष्ट्रवाद की भावना के उदाहरणों को इतिहास में देखा जा सकता है। इतिहास और समकालीन तथ्य ऐसे भी उदाहरण प्रस्तुत करते हैं, जैसे स्विटजरलैण्ड और युगोस्लाविया, जहाँ देश में बोली जाने वाली सभी भाषाओं की राष्ट्र भाषा के रूप में मान्यता राष्ट्रीय एकता का साधन थी। इसे स्मरण रखा जाय कि राष्ट्रीय भाषा की समस्या के प्रति दृष्टिकोण यदि बहुत अधिक तार्किक और कट्टरवादी है, तो इससे वांछित राष्ट्रीय हित को क्षति पहुँच सकती है।

❖ करणीय क्या है?

7.10 तुम पूछ सकते हो– राष्ट्रीय एकता को समुन्नत करने हेतु हमें क्या करना है?

(i) प्रथम, सर्वाधिक आवश्यक है विश्वास भाव का पैदा करना। हमें प्रशासन, न्यायालयों और पुलिस द्वारा मनुष्य के नैतिक स्वभाव में विश्वास पैदा करने की अपेक्षा एक दूसरे में विश्वास करना चाहिए। यदि हम यह विश्वास नहीं रखते तो हम पूर्वाग्रहों द्वारा अपने को

निर्देशित करना प्रारम्भ कर देते हैं और हम अपने स्वयं के दृष्टिकोण को ईमानदारीपूर्वक और सुस्पष्टतया परीक्षण करने में तथा विरोधी पक्ष के दृष्टिकोण में निहित न्याय को देखने में अक्षम हो सकते हैं। तुम्हें अपने मस्तिष्क में ही इसके अनेक दृष्टान्त मिल जायेंगे। हम एक उदाहरण को लेते हैं– हमारा एक पड़ोसी देश है जिसके साथ हमारा सम्बन्ध आमतौर पर पारस्परिक विश्वास पर निर्भर हैं। क्षेत्रीय और सांस्कृतिक समूहों के बीच हमारे मतभेद हैं जो विश्वास के अभाव के कारण असीमित ढंग से अतिरंजित हो जाते हैं। यदि हम एक दूसरे के दृष्टिकोणों में निहित यथार्थ हित को देख पाने में असमर्थ हैं तो इससे निरन्तर मिथ्याबोध होगा जिससे हमारी आन्तरिक स्थिति अनिवार्यतः भ्रम के घेरे में आ जायेगी। यह भ्रम उग्र और हिंसक रूप भी ले सकता है और एकता के लिए बाधक सिद्ध होगा।

(ii) द्वितीय, हमें पाने की अपेक्षा अधिक देने का भाव विकसित करना होगा। यदि हमारा सामान्य झुकाव देने की ओर है, तो हम सब अधिक ही प्राप्त करेंगे। उदाहरण के लिए– यदि हम अपनी पारिश्रमिक राशि की तुलना में अधिक कार्य करें तो क्या होगा? हम अधिक उपलब्धि प्राप्त करेंगे, किसी भी प्रकार के किए गए निवेश से अधिक परिणाम प्राप्त करेंगे; आत्मविश्वास का सामान्य अनुभव और हर प्रकार के सृजनात्मक, निर्माणपरक कार्यों के लिए एक प्रेरणा मिलेगी। तब हमें अपनी अभिरूचि को पूर्ण रूप में विकसित करने हेतु ऐसे चिन्तित व्यक्ति प्रचुर संख्या में मिलेंगे, जो कुशल-कार्य निष्पादन के उच्च मानदण्डों हेतु स्वयं को लगाते हैं; ऐसे व्यक्ति जो न केवल राज्य को आयकर का भुगतान करते हैं, बल्कि छिद्रान्वेषी मनोभाव से पीड़ित होने के बजाय उत्कृष्टता के प्रशंसनीय मानदण्डों की ओर बढ़ते हैं।

(iii) तृतीय, अभिमत और व्यवहार की एकरूपता उत्पन्न करने के लिए हमें दबाव का प्रयोग करने से बचना चाहिए। हम एक साधारण दृष्टान्त लेते हैं– हम कहते हैं कि यदि समुदाय एक दूसरे के त्योहारों को मनाने में सहभागी होते हैं तो एकता को बढ़ावा मिलेगा। अब, जबकि एक व्यक्ति इस कथन के आशय से पूरे मन प्राण से सहमत हो सकता है, तो एक अन्य व्यक्ति 'समुदाय' शब्द के प्रयोग पर सिद्धान्त रूप में आपत्ति कर सकता है। इसका मतलब है कि यदि एक व्यक्ति मुसलमान है, या हिन्दू है या ईसाई है, तो उसे दूसरों के त्योहारों को मनाने में सहभागी होना चाहिए। किन्तु यह पर्याप्त नहीं है। जो महत्वपूर्ण बात है वह स्वैच्छिक स्वीकृति और सहभागिता की स्थिति है, न कि दूसरों के आदेश पर आडम्बरपूर्ण और प्रतीकात्मक प्रशंसा।

7.11 अतः, किसी विशेष समुदाय के त्योहारों में अन्य धार्मिक समुदायों के सदस्यों की सहभागिता का अनुरोध करने के स्थान पर क्यों न हम व्यक्ति की रूचि को पूरी छूट देते हुए ऐसा करने के लिए उसे अपने व्यक्तिगत चुनाव पर छोड़ दें, वह चाहे जिस किसी भी समुदाय से सम्बन्धित हो? ठीक इसी तरह एक राष्ट्रीय भाषा अपेक्षाकृत अधिक जल्दी विकसित हो जाती, यदि हम इसके बारे में इतनी अधिक चर्चा न करते अथवा भारतीय जनसंख्या के किसी वर्ग को यह कहने का अवसर नहीं देते कि एक भाषा उनके ऊपर थोपी जा रही थी। हर नागरिक को अपने देश की सेवा अपने ढंग से करने की खुली छूट होनी चाहिए और देश की सेवा करने के मत या तरीके के मामले में राष्ट्र प्रेम की भावना की कोई परीक्षा उस पर थोपी नहीं जानी चाहिए। राष्ट्रीय एकता स्वतंत्रता के भाव से उत्पन्न होनी चाहिए, यह सर्वमान्य हित के सर्वोच्च रूपों में सेवा से उत्पन्न होनी चाहिए और इस तथ्य के गहरे अनुभव से यह भावना उत्पन्न होनी चाहिए कि अपने नागरिक बन्धुओं के साथ सहयोग करके हममे से प्रत्येक व्यक्ति अपने वास्तविक 'आत्म' की अनुभूति कर रहा है।

8. अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध

8.1 शिक्षा सामाजिक जीवन की उन समस्त प्रक्रियाओं से सम्बन्धित है जिसके माध्यम से व्यक्ति तथा सामाजिक समूह अपनी व्यक्तिगत अभिवृत्तियों, अभिक्षमताओं तथा ज्ञान का विकास सचेतन रूप में अपने भीतर तो करता ही है, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय समुदायों के हित को दृष्टिगत रखकर भी ऐसा करता है। यह प्रक्रिया किन्हीं विशेष कार्यों तक ही अनुसीमित नहीं है।

(i) अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध, सहयोग तथा शान्ति जैसे पद एक अविभाज्य समग्रता प्रकट करते हैं जो भिन्न-भिन्न सामाजिक एवं राजनैतिक व्यवस्था से जुड़े लोगों तथा राज्यों के बीच मैत्री सम्बन्धों के सिद्धान्तों तथा मानवाधिकारों एवं आधारभूत स्वतन्त्रताओं के प्रति आदर के भाव पर आधारित होता है।

(ii) युनेस्को के संविधान तथा संयुक्त राष्ट्र के चार्टर एवं मानवाधिकार के सार्वभौम घोषणा अनुच्छेद 26 परिच्छेद 2 के अन्तर्गत शिक्षा में जिन प्रयोजनों एवं उद्देश्यों को विहित किया गया है वे अधोलिखित रूप में अंकित हैः

"शिक्षा को मानवीय व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के प्रति निदेर्शित करना तथा इसके माध्यम से मानवाधिकारों एवं आधारभूत स्वतन्त्रता के प्रति आदर की भावना को दृढ़ बनाना। इससे राष्ट्रों, जातियों

एवं धर्म समूहों के मध्य परस्पर अवबोध, सहिष्णुता तथा मैत्री भाव को प्रोत्साहन प्राप्त होगा तथा शान्ति कायम रखने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ के क्रियाकलापों को बढ़ावा मिलेगा।"

❖ शैक्षिक नीतियाँ : उद्देश्य

8.2 पूर्व सन्दर्भित उद्देश्यों की प्राप्ति सुनिश्चित करने की दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति को इसमें सहायक बनाने तथा अन्तर्राष्ट्रीय एकजुटता एवं सहयोग को अभिवृद्ध करने के लिए, व्यक्तियों तथा समुदायों के जीवन को प्रभावित करने वाली समस्याओं का हल प्राप्त करना तथा उनको आधारभूत अधिकार एवं स्वतन्त्रता प्रदान करना आवश्यक है। इस परिप्रेक्ष्य में शैक्षिक नीतियों के प्रमुख निर्देशक सिद्धान्तों के रूप में अधोलिखित उद्देश्यों पर विचार करना होगा।

(i) शिक्षा के सभी स्तरों एवं स्वरूपों में एक अन्तर्राष्ट्रीय आयाम तथा वैश्विक परिप्रेक्ष्य लाना।

(ii) सभी देशों, उनकी संस्कृतियों, सभ्यताओं, मूल्यों तथा जीवन जीने के तरीकों जिनमें घरेलू मानव जातीय उपसंस्कृतियाँ एवं अन्य देशों की संस्कृतियाँ भी सम्मिलित है, का सम्यक् अवबोध तथा उनके प्रति आदर भाव।

(iii) देशों तथा राष्ट्रों के मध्य बढ़ती वैश्विक परस्पर निर्भरता के प्रति जागरूकता।

(iv) दूसरों से सम्प्रेषण स्थापित करने की योग्यताएँ।

(v) केवल अपने अधिकारों के बारे में ही जागरूकता नहीं अपितु व्यक्तियों, सामाजिक समूहों तथा राष्ट्रों के मध्य एक दूसरे के प्रति कर्त्तव्यों के बारे में भी जागरूकता।

(vi) अन्तर्राष्ट्रीय एकजुटता एवं सहयोग की आवश्यकता को समझना।

(vii) व्यक्ति द्वारा अपने समुदाय, देश तथा पूरे विश्व स्तरीय समस्याओं के समाधान प्राप्त करने में प्रतिभाग हेतु तत्परता।

❖ अध्यापकों तथा अध्यापक प्रशिक्षकों के लिए दिशा-निर्देश

8.3 अधिगम, प्रशिक्षण, सूचना तथा कार्य को समन्वित करने के उद्देश्य से अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा द्वारा व्यक्ति के समुचित बौद्धिक एवं संवेगात्मक विकास को प्रोत्साहित करना चाहिए। इसके माध्यम से अपेक्षाकृत कम सुविधा-संपन्न समूहों के प्रति सामाजिक संवेदनशीलता एवं एकजुटता का

भाव विकसित होना चाहिए तथा व्यक्ति को अपने नित्य प्रति के आचरण में समानता के सिद्धान्तों को अपनाये जाने की ओर अग्रसर करना चाहिए। शिक्षा से अन्य मुख्य अपेक्षाएँ इस प्रकार है :

राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की समस्याओं को सम्यक् ढंग से समझने के लिए वांछित गुणों, अभिक्षमताओं एवं योग्यताओं के विकास में मदद करना, तथ्यों, मतों एवं विचारों को समझने एवं स्पष्ट करना, समूह में कार्य करने, मुक्त परिचर्चाओं में भाग लेने एवं उन्हें स्वीकार करना, परिचर्चा में लागू होने वाले प्राथमिक नियमों का अनुपालन करना तथा संगत तथ्यों एवं कारकों के तर्क पूर्ण विश्लेषण के आधार पर अपने मूल्यपरक फैसलों एवं निर्णयों को आधारित करना।

(i) शिक्षा मे इस बात पर बल देना चाहिए कि युद्ध के इरादे से विस्तार, आक्रामकता, प्रभुत्व या दमन के जरिए बल एवं हिंसा का सहारा लेना उचित नहीं है तथा शान्ति कायम रखने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को अपनी जिम्मेदारियाँ माननी एवं समझनी चाहिए। शिक्षा को अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध तथा विश्व शान्ति की भावना में सहायक होना चाहिए। साथ ही, सभी स्वरूपों एवं अभिव्यक्तियों एवं उपनिवेशवादी तथा नव-उपनिवेशवादी ताकतों के विरूद्ध संघर्ष जैसे कार्यों में भी सहायक होना चाहिए। इसी क्रम में सभी प्रकार की एवं तरह-तरह की प्रजातीयताओं, फासीवाद, रंग भेद तथा अन्य विचारधाराओं जो राष्ट्रीय तथा जातीय धृणा का भाव पैदा करती हैं तथा जो ऊपर बताए गये उद्देश्यों के प्रतिकूल हैं, के विरूद्ध कार्य करने का भाव विकसित करना।

(ii) संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रत्येक सदस्य राज्य को यह चाहिए कि वे शिक्षा के सभी रूपों में दी जानी वाली व्यवस्थाओं की प्रभावकारिता को बढ़ाने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर नीतियाँ बनाये तथा उनको लागू करे जिससे अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध एवं सहयोग में अवदान के प्रति बढ़ावा मिले, न्यायपूर्ण आधार पर शान्ति के विकास एवं उसे बनाये रखने, सामाजिक न्याय की स्थापना करने, मानवाधिकार तथा आधारभूत स्वतन्त्रताओं के प्रति आदर तथा पूर्वाग्रहों, भ्रान्त धारणाओं, असमानताओं तथा सभी प्रकार के अन्याय जो इन उद्देश्यों की प्राप्ति में बाधक है, उनका निवारण हो सके।

8.4 इन आधारभूत सिद्धान्तों के आलोक में सदस्य राज्यों द्वारा निम्नांकित बातों पर बल देना समाचीन होगा :

(i) अधिगम एवं प्रशिक्षण प्रक्रियाओं में समानता तथा देशों एवं राष्ट्रों के बीच आवश्यक परस्पर निर्भरता पर आधारित, महत्वपूर्ण अभिवृत्तियों एवं व्यवहारों को विकसित करना एवं उन्हें बल प्रदान करना।

(ii) यह सुनिश्चित करना कि मानवाधिकार तथा सभी प्रकार के जातीय भेद का बहिष्कार, करने वाले अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में निहित सार्वभौमिक सिद्धान्तों को बालक, किशोर, युवा या प्रौढ़ के व्यक्तित्व विकास का अनिवार्य अंग बनाया जाए। इसके लिए दिन प्रति दिन के आचरण अथवा शिक्षा के प्रत्येक स्तर एवं स्वरूपों में इस सिद्धान्तों को लागू करने पर जोर देना चाहिए जिससे पूर्व इंगित दिशा में प्रत्येक व्यक्ति निजी रूप में भी शिक्षा के विस्तार एवं पुनर्रचना हेतु योगदान करने में सहायक हो सके।

(iii) शिक्षाविदों को अपने विद्यार्थियों, उनके अभिभावकों, सम्बन्धित संस्थाओं/संगठनों तथा समुदाय के सहयोग से ऐसी विधियों का प्रयोग करने के लिए प्रेरित करना जो बच्चों तथा किशोरों की सृजनात्मक कल्पना को बढ़ावा दे सकें, तथा वे सामाजिक कार्यों में प्रवृत्त हो सकें, अपने अधिकारों एवं अपनी स्वतन्त्रताओं का अनुरक्षण कर सकें तथा साथ ही दूसरों के अधिकारों का आदर कर सकें एवं अपने सामाजिक कर्त्तव्यों को पूरा कर सकें।

(iv) शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर एक सक्रिय नागरिकता के प्रशिक्षण को प्रोत्साहित करना जिससे प्रत्येक व्यक्ति जन-संस्थाओं के कार्यों एवं उनकी कार्य पद्धतियों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सके, बुनियादी समस्याओं के हल प्राप्त करने के तरीकों से परिचित हो सके तथा पब्लिक मामलों में निहित सांस्कृतिक जीवन शैली में प्रतिभाग कर सके। जहाँ भी सम्भव हो यह प्रयास किया जाए कि इस प्रकार का प्रतिभाग स्थानीय, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर समाधान प्राप्त करने हेतु उत्तरोत्तर रूप में शिक्षा तथा कार्य को जोड़ सके।

❖ अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध का प्रोत्साहन : शिक्षा की भूमिका एवं प्रकार्य

8.5 पूर्वोक्त स्थापनाओं के अनुरूप शिक्षा की भूमिका एवं उसके कार्य अधोलिखित होने चाहिए:

(i) पाठ्यक्रम के अन्तर्गत भिन्न-भिन्न देशों में परिलक्षित विरोधाभासों एवं तनावों में निहित ऐतिहासिक एवं समकालीन कारकों की आर्थिक एवं राजनैतिक प्रकृति का समीक्षात्मक विश्लेषण शामिल करना। इसके साथ ही इन विरोधाभासों को दूर करने के तरीकों का अध्ययन क्योंकि ये ही वास्तविक रूप में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग तथा अवबोध एवं विश्व शान्ति के विकास के मार्ग में अवरोधक होते है।

(ii) लोगों के वास्तविक हितों पर बल देना तथा उनका एकाधिकारवादी लोगो के हितों से मेल न खाने की स्थिति को स्पष्ट करना क्योंकि

वे तो आर्थिक एवं राजनैतिक ताकतों को अपने में समेटे रहती हैं, शोषण करती हैं तथा युद्ध को उभारती हैं।

(iii) छात्र जिन संगठनों से जुड़े होते हैं तथा जिन शैक्षिक संस्थाओं में अध्ययन करते है उनमें उनके प्रतिभाग को प्रोत्साहन देना। यह नागरिक शिक्षा का ही अंग होगा तथा इसे अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा का महत्वपूर्ण घटक स्वीकार करना होगा।

(iv) विभिन्न अवस्थाओं तथा उनकी विभिन्न प्रकारताओं में भिन्न–भिन्न संस्कृतियों, उनके पारस्परिक प्रभावों, परिप्रेक्ष्यों तथा जीवन शैलियों के अध्ययन को प्रोत्साहित करना जिससे उनके बीच पाई जाने वाली भिन्नताओं के प्रति परस्पर आदर का भाव बढ़ सके। ऐसे अध्ययन में, अन्य चीजों के अलावा, विदेशी शषा, सभ्यताओं एवं सांस्कृतिक विरासतों के बारे में शिक्षा को अपेक्षित महत्व देना जिससे वे अन्तर्राष्ट्रीय एवं अन्तर-सांस्कृतिक अवबोध को बढ़ावा देने के साधन बन सके।

(v) ऐसी परिस्थितयाँ जो मानव अस्तित्व एवं मानव कल्याण को कुप्रभावित करती हैं तथा मनुष्य की समस्याओं को बढ़ावा देती हैं जैसे– असमानता, अन्याय, बल प्रयोग पर आधारित अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध आदि का उन्मूलन तथा अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के उपायों की ओर बढ़ना जो समस्याओ का निराकरण करती हैं। इस दृष्टि से शिक्षा की प्रकृति अनिवार्यतः अन्तर-अनुशासनात्मक होनी चाहिए तथा अधोलिखित समस्याओं से उनका सीधा सम्बन्ध होना चाहिए।

- लोगों की 'समानता' का अधिकार तथा उन्हें स्व–निर्धारण करने के अधिकार;
- शान्ति अनुरक्षण, विविध प्रकार के युद्ध, उनके कारण तथा प्रकार, निःशस्त्रीकरण, प्रोद्यौगिकी का युद्ध सदृश प्रयोजनों के लिए इस्तेमाल करने की अस्वीकार्यता तथा उन्हें शान्ति एवं प्रगति के उद्देश्य से उपयोग में लाना, देशों के बीच आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक सम्बन्धों की प्रकृति को समुन्नत बनाना एवं उनका प्रभाव बढ़ाना तथा इन सम्बन्धों को बनाए रखने हेतु खासतौर से शान्ति के अनुरक्षण को दृष्टिगत रखकर अन्तर्राष्ट्रीय नियमों का महत्व समझाना;
- मानवाधिकारों जिनमें शरणार्थियों का भी अधिकार शामिल है, के प्रयोग एवं अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए उपाय, प्रजातिवाद एवं उसका उन्मूलन, विभिन्न रूपों में भेदभाव के प्रति संघर्ष;

- आर्थिक वृद्धि एवं सामाजिक विकास तथा उनका सामाजिक न्याय, उपनिवेशवाद तथा निःउपनिवेशवाद से सम्बन्ध, विकासशील देशों को मदद देने के तरीके एवं अपेक्षित साधन, निरक्षरता के विरूद्ध लड़ाई, रोग एवं दुर्भिक्ष के विरूद्ध अभियान, जीवन की बेहतर गुणवत्ता तथा स्वास्थ्य के सर्वोच्च प्राप्य स्तरों तक पहुँचने तथा जनसंख्या वृद्धि एवं सम्बन्धित मुद्दों के विरूद्ध निरन्तर संघर्ष;
- प्राकृतिक संसाधनों का समुचित प्रयोग, उनका प्रबन्धन एवं संरक्षण, पर्यावरण प्रदूषण के प्रति जागरूकता;
- मानव-जाति की सांस्कृतिक विरासत का अनुरक्षण; तथा
- संयुक्त राष्ट्र संघ के माध्यम से कृत प्रयासों की अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध में भूमिका तथा उनकी कार्य विधि जिसके आधार पर इन समस्याओं का समाधान प्राप्त किया जा रहा है तथा ऐसे प्रयासों को प्रबलित करने एवं उन्हें सवंर्धित करने की सम्भावना आदि।

❖ अपेक्षित अध्यापक तैयारी

8.6 इन लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु शिक्षक की तैयारी में इस बात पर ध्यान रखना आवश्यक है कि उनको प्रशिक्षित करने की विधियों को हमेशा बेहतर बनाया जाए। साथ ही, उनके प्रामाणीकरण प्रक्रिया एवं शैक्षिक अभिकर्मियों की गुणवत्ता पर भी विशेष ध्यान देना होगा। इन भूमिकाओं के निर्वहन में इंगित उद्देश्यों की सम्प्राप्ति के लिए शिक्षा की प्रणाली में अधोलिखित प्रावधान आवश्यक हैं :

(i) शिक्षकों को शिक्षणोपरान्त अपेक्षित कार्यों को करने हेतु अभिप्रेरित करना; मानवाधिकार तथा परिवर्तशील समाज के उद्देश्यों के लिए प्रतिबद्धता जिससे मानवाधिकारों को व्यवहार रूप में लागू किया जा सके, मानव मात्र की बुनियादी एकता को समझना, सम्पदाओं की सराहना कर सकने की योग्यता– ये सम्पदायें संस्कृतियों की विभिन्नताओं से जुड़ी होती हैं तथा इन्हें व्यक्ति, समूह एवं राष्ट्र स्तर पर उपलब्ध कराना चाहिए।

(ii) विश्व स्तरीय समस्याओं तथा अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग द्वारा उन्हें हल करने की जानकारी के बारे में आधारभूत अन्तर-अनुशासनात्मक ज्ञान का प्राविधान करना।

(iii) शिक्षकों को स्वयं ऐसे कार्यक्रमों में सक्रिया प्रतिभाग के लिए प्रोत्साहित करना जो अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा, शैक्षिक उपकरण एवं

सामग्रियों के अनुप्रयोग से सम्बन्धित है। इन सभी में विद्यार्थियों की अंकाक्षाओं पर विशेष ध्यान अपेक्षित है। इसके अलावा उनके साथ घनिष्ट रूप में सहयोग को भी प्रोत्साहित करना चाहिए।

(iv) सक्रिय रीति से शिक्षा एवं प्रशिक्षण देने की विधियों के इस्तेमाल सम्बन्धी प्रयोग को बढ़ावा देना जिसमें मूल्यांकन की प्रारम्भिक प्रविधियाँ शामिल है विशेषतौर से जो बालकों, किशोरों एवं प्रौढ़ो के सामाजिक व्यवहार एवं अभिवृत्तियों से सम्बन्धित हैं।

(v) अभिक्षमताओं एवं कौशलों का विकास यथा शैक्षिक नवाचार के लिए तत्परता एवं योग्यता को बढ़ावा देना तथा प्रशिक्षण को इस सम्बन्ध में जारी रखना, समूह कार्य तथा अन्तर-अनुशासनात्मक अध्ययनों के लिए अनुभव, समूह कार्य-विधि के बारे में ज्ञान तथा लाभकारी अवसर सृजित करने की योग्यता, साथ ही उनसे लाभ लेने की क्षमता का संवर्धन।

(vi) अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा में कृत प्रयोगों के बारे में अध्ययन, खासतौर से अन्य देशों में किये गए नवाचारी प्रयोगों की जानकारी देनी चाहिए। इस दृष्टि से जो सचमुच इस तरह के कार्य में रूचि प्रदर्शित करते हैं उन्हें विदेशी वाह्य अध्यापकों से सीधा सम्पर्क बनाने हेतु अवसर प्रदान करना चाहिए।

9. सुस्थित जीवन शैली : स्वास्थ्य, स्वास्थ्य -विज्ञान और योग

9.1 सुस्थित जीवन शैली या कुशल-क्षेमत्व सामान्यतया मन, शरीर और स्वत्व के ऐसे स्वस्थ संतुलन, जो व्यक्ति के स्वस्ति-बोध के सम्पूर्ण भाव में परिणत होता हुआ परिलक्षित हो रहा हो, के अर्थ को व्यक्त करने में प्रयुक्त होता है। यह भगवद्गीता में वर्णित स्थितप्रज्ञ सम्प्रत्यय का समानार्थी है और स्वामी जी इसका उल्लेख प्रायः अपने सम्बोधनों में करते रहते थे। यह 'धीर मन' की उपस्थिति का द्योतक है जो एकाग्रता और आत्मानुशासन से प्राप्त होता है। हाल ही में डन ने कुशल-क्षेमत्व को 'क्रियाशीलता की सुस्वस्थ प्रक्रिया' के रूप में परिभाषित किया है जो व्यक्ति की अन्तः शक्ति को उस उच्चतम सीमा तक संवर्धित करने की ओर उन्मुख होती है जहाँ तक व्यक्ति समर्थ है। यह अपेक्षित है कि व्यक्ति सन्तुलन की निरन्तरता को और जहाँ वह क्रियाशील है उस पर्यावरण में उद्देश्यपूर्ण दिशा को बनाए रखे। उन्होंने यह भी जोड़ दिया था कि किसी दिशा में कुशल-क्षेमत्व क्रियाशीलता की सतत वर्धनशील अन्तः शक्ति की ओर प्रगति है।

❖ सुस्थित जीवन शैली के वैकल्पिक उपागम

9.2 कुशल-क्षेमत्व के उपागम प्रायः दो भिन्न वाक्यांशों के प्रयोग द्वारा व्यक्त किए जाते हैं: स्वास्थ्य एवं कुशल-क्षेम और कुशल-क्षेम कार्यक्रम। कुशल-क्षेम कार्यक्रमों के ये प्रकार कुशल-क्षेम सुधार हेतु वैकल्पिक औषधि प्रविधियाँ प्रस्तुत करते हैं। किन्तु यह विवादास्पद है कि क्या ये प्रविधियाँ दैहिक स्वास्थ्य में वस्तुतः कुछ सुधार लाती हैं और यह बहस-मुबाहिसे का एक मुद्दा बना रहता है। जेम्स रैण्डी और जेम्स रैण्डी एज्युकेशनल फाउण्डेशन कुशल-क्षेम के इस वैकल्पिक नव्य युगीन सम्प्रत्यय के प्रखर आलोचक हैं। कुशल-क्षेम के अनुसरण में आने वाले व्यवहारों में प्रायः अनेक स्वास्थ्य सम्बन्धी व्यवहार सम्मिलित किए जाते हैं जैसे स्वस्थ जीवन शैली में परिवर्तन करना और प्राकृतिक चिकित्साओं का उपयोग करना।

9.3 यह ध्यातव्य है कि, एक विलासोपकरण लक्ष्य के रूप में, कुशल-क्षेम स्वभावतः अधिक संभ्रान्त समाजों में पाया जाता है क्योंकि इसमें भोजन, आश्रय की मौलिक आवश्यकताओं और मूलभूत चिकित्सकीय देखभाल मिल चुकने के बाद दैहिक स्थिति का प्रबन्धन सन्निहित होता है। कुशल-क्षेम के लक्ष्य में व्यवहृत अनेक अभ्यास वस्तुतः विलासिता के आनुषंगिक प्रभावों जैसे मोटापा और निष्क्रियता को नियंत्रित करने पर केन्द्रित होते हैं। कुशल-क्षेमत्व एक लोकप्रिय सम्प्रत्यय के रूप मे 19वीं शताब्दी में शुरू होकर विकसित हुआ, एकदम तभी जब औद्योगिक जगत में मध्यवर्ग का अभ्युदय हुआ और यह ऐसे समय शुरू हुआ जब नव धनाढ्य जनता के पास कुशल-क्षेम और आत्म-सुधार के अन्य प्रकारों को हासिल करने के लिए समय और संसाधन दोनों ही मौजूद थे।

❖ सुस्थित जीवन शैली के निर्धारक

9.4 सुस्थित या कुशल-क्षेमी जीवनशैली प्राप्त करना या उसे बनाए रखना वैयक्तिक जागरूकता और स्वास्थ्य की संस्थितियों के मापन की योग्यता से निर्धारित किए जा सकते हैं जिनमें मानसिक स्वास्थ्य, दैहिक क्रियाएँ, पोषक आहार, आर्थिक जिम्मेदारी, उत्पादकता के अलावा आपात तैयारी और आम गलतियों से बचाव सम्मिलित होते हैं। कुशल-क्षेम को एक ऐसी दशा के रूप में भी वर्णित किया जा सकता है जो स्वास्थ्य एवं आनन्द को संयुक्त करती हैं। अतः वे घटक जो स्वस्थ एवं प्रसन्न होने में सहायक होते हैं वे निश्चय ही कुशल-क्षेम में भी सहायक होंगे। ऐसे घटक जो स्वास्थ्य एवं प्रसन्नता में सहायक होते हैं, वे बहुत पहले से ज्ञात हैं, कम से कम प्राचीन यूनानी चिन्तकों और हमारे प्राचीन ऋषिकुलों के समय से वे ज्ञात हैं। कुशल-क्षेमत्व की स्थिति प्राप्त करने के लिए किसी को भी इसके निर्धारकों का कायल होने की कोशिश

करना होता है। कुशल-क्षेमत्व के ऐसे निर्धारक जिन पर प्रायः ध्यान दिया जाता है वे हैं– व्यक्ति की दैहिक, मानसिक, सांवेगिक, आध्यात्मिक, पर्यावरणीय, सामाजिक और व्यावसायिक स्वास्थ्य की स्थिति के सम्बन्ध में जागरूकता और सुधार के उपक्रम।

❖ कार्यक्रम

9.5 सुस्थित जीवन शैली के कार्यक्रम बाजार को लक्ष्य करके और कौन उन्हें आगे बढ़ा रहा है इसके आधार पर परिवर्तित होते रहते हैं। सुस्थित जीवन शैली अधिकांशतः प्रगतिशील कम्पनियों में, विद्यालयों और प्रतिष्ठित शिक्षा संस्थानों के साथ-साथ स्वास्थ्य चाहने वाले लोगों के लिए सीधे बेचे जाने वाले सुस्थित जीवन शैली कार्यक्रमों में प्रोत्साहित किए जाते हैं। ऐसे कार्यक्रम जीवन सुधारों और सकारात्मक जीवनशैली परिवर्तनों की अनुशंसा द्वारा जीवन गुणवत्ता में सहायता हेतु प्रयास करते हैं। सुस्थित जीवन शैली कार्यक्रम प्रायः उन लोगों द्वारा जो किसी रोग या किसी खास अस्वास्थ्य दशा से ठीक हो कर स्वास्थ्य लाभ कर रहे हों या ऐसे लोगों द्वारा जो अपने सर्वांगीण स्वास्थ्य को सुधारना चाहते हो पालन किए जाते हैं।

9.6 सुस्थित जीवन शैली कार्यक्रमों के समर्थक यह दलील दे सकते हैं कि सुस्थित जीवन शैली में सहायक अनेक घटक होते हैं, स्वच्छ पर्यावरण में रहना, स्वास्थ्यप्रद भोजन करना, नियमित शारीरिक व्यायाम, पेशा, परिवार और सम्बन्धों में सन्तुलन, आध्यात्मिक जागरूकता और कुछ कार्यक्रमों में विश्वास-आधारित पूजा पाठ भी इसमें सम्मिलित होते हैं, विश्वास आधारित सुस्थित जीवन शैली कार्यक्रम अपने प्रतिमानों में आध्यात्मिक घटक सुझा सकते हैं, किन्तु यह अधिकांश धर्म निरपेक्ष सुस्थित जीवन शैली कार्यक्रमों के विरूद्ध होगा जो किसी व्यक्ति के आध्यात्मिक विश्वासों या रिवाजों को समाविष्ट करता हो।

❖ पंथ-निरपेक्षता आधारित कार्यक्रम

9.7 वृद्ध लोग सुस्थित जीवन शैली कार्यक्रमों में अच्छा महसूस करने और ज्यादा शक्ति पाने के लिए भाग लेते हैं। सुस्थित जीवन शैली कार्यक्रम लोगों को अपने स्वास्थ्य व्यवहारों के लिए ज्यादा जिम्मेदारी लेने की अनुमति देते हैं। लोग प्रायः किसी गैर-सरकारी कार्यक्रम में अपनी स्वस्थता सुधारने, धूम्रपान छोड़ने या यह सीखने कि कैसे अपने वजन का प्रबन्धन किया जाए या अन्य सम्बन्धित समस्याओं से निबटने हेतु सम्मिलित होते हैं। भारत में ऐसे कार्यक्रम राष्ट्रीय सेवा योजना और योग कैम्प तथा सामुदायिक कार्य के साथ एकीकृत हैं।

❖ स्वास्थ्य

9.8 स्वास्थ्य किसी जीवित प्राणी की क्रियाशील या उपापचयी निपुणता का स्तर है। मानवीय सन्दर्भ में यह किसी व्यक्ति के मन और शरीर की सामान्य दशा है, साधारणतः इससे किसी रोग, चोट, या दर्द से मुक्ति का अर्थ लिया जाता है (जैसे कि ''अच्छा स्वास्थ्य'' या स्वस्थ)। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने 1946 में स्वास्थ्य को वृहत्तर अर्थ में ''दैहिक मानसिक और सामाजिक स्वस्तिबोध की सम्पूर्ण दशा न कि मात्र रोग या अक्षमता से मुक्ति'' के रूप में परिभाषित किया था। यद्यपि यह परिभाषा विशेषतः प्रकार्यात्मक मूल्य की अनुपस्थिति और ''सम्पूर्ण'' शब्द के प्रयोग के कारण विवाद का विषय रही है, फिर भी यह अब तक स्थायी और मान्य रही है। अन्य परिभाषाएँ भी प्रस्तुत की गई हैं जिनमें अपेक्षाकृत नयी परिभाषा भी है जो स्वास्थ्य और निजी सन्तुलन का सम्बन्ध जोड़ती है।

9.9 मनुष्य में स्वास्थ्य समस्याओं की चिकित्सा या उनकी रोकथाम और अच्छे स्वास्थ्य को प्रोत्साहित करने की योजनाबद्ध क्रियाएँ स्वास्थ्य की देखभाल करने वालों द्वारा दी जाती हैं। ''स्वस्थ'' शब्द भी अनेक प्रकार की जीवितेतर संस्थाओं और मनुष्यों पर उनके प्रभावों के लिए प्रयुक्त होता है, जैसे स्वस्थ समुदायों, स्वस्थ नगरों और स्वस्थ पर्यावरण के सन्दर्भ में यह प्रयोग किया जाता है। स्वास्थ्य की देखभाल सम्बन्धी हस्तक्षेपों और किसी व्यक्ति के पास पड़ोस के अतिरिक्त भी यह ज्ञात है कि व्यक्ति की स्वास्थ्य संस्थिति को अनेक घटक प्रभावित करते हैं।

9.10 सामान्यतः वह परिवेश, जहाँ कोई व्यक्ति रहता है, व्यक्ति की स्वास्थ्य संस्थिति और जीवन गुणवत्ता इन दोनों को प्रभावित करता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार स्वास्थ्य के प्रमुख निर्धारकों में सामाजिक और आर्थिक पर्यावरण, भौतिक पर्यावरण, व्यक्ति की निजी विशेषताएँ और व्यवहार शामिल किए जाते हैं।

9.11 अधिक स्पष्टतः वे मूलभूत घटक जो किसी व्यक्ति के स्वस्थ या अस्वस्थ होने को प्रभावित करने वाले पाए गए हैं उनमें निम्नलिखित सम्मिलित हैं:

i) आय और सामाजिक संस्थिति
ii) सामाजिक सम्बल संजाल
iii) शिक्षा और साक्षरता
iv) रोजगार/कार्यशील दशाएँ
v) सामाजिक पर्यावरण

vi) भौतिक पर्यावरण
vii) निजी स्वास्थ्य सम्बन्धी आदतें और प्रावारक कौशल
viii) स्वस्थ बाल विकास
ix) जीव विज्ञान और आनुवंशिकी
x) स्वास्थ देखभाल सेवाएँ
xi) लिंग
xii) संस्कृति

9.12 विभिन्न संगठनों और सन्दर्भों से प्राप्त निरन्तर वर्धनशील ढेर सारे अध्ययन और प्रतिवेदन स्वास्थ्य और उसके विभिन्न घटकों में सम्बन्धों की, जिनमें जीवनशैलियाँ, पर्यावरण, स्वास्थ्य देखभाल सेवाएँ और स्वास्थ्य नीतियाँ शामिल हैं, की परीक्षा करते हैं।

जीवन शैली: निजी निर्णयों का समुच्चय (अर्थात् वह जिन पर व्यक्ति का नियंत्रण है) जो रोग या मृत्यु में सहायक हों या कारण हों।

पर्यावरणीय: वे सभी पदार्थ जो स्वास्थ्य से सम्बन्धित हैं और मानव शरीर से इतर हैं और जिन पर व्यक्ति का बहुत कम (या बिल्कुल ही नहीं) नियंत्रण है।

जैविक चिकित्सकीय: दैहिक और मानसिक स्वास्थ्य के सभी पक्ष जो जननिक संरचना द्वारा मानव शरीर में विकसित होते हैं।

9.13 स्वास्थ्य की देखभाल और प्रोत्साहन दैहिक, मानसिक और सामाजिक कुशल-क्षेमत्व के विभिन्न संयोगों द्वारा प्राप्त होता है जिन्हें कभी-कभी एक साथ मिलाकर "स्वास्थ्य त्रिभुज" कहा जाता है। डब्ल्यू0 एच0 ओ0 के 1986 के स्वास्थ्य संवर्धन सम्बन्धी ओटावा घोषणापत्र ने पुनः बताया कि स्वास्थ्य केवल एक दशा ही नहीं है वरन् "दैनन्दिन जीवन के लिए संसाधन भी है तथा न कि मात्र जीने का उद्देश्य है। स्वास्थ्य सामाजिक एवं निजी संसाधनों के साथ-साथ भौतिक क्षमताओं पर बल देने वाला एक सकारात्मक समुच्चय है।"

9.14 जीवन शैली मुद्दों और क्रियाशील स्वास्थ्य के सम्बन्धों पर ज्यादा ध्यान देते हुए एल्मेडा काउण्टी अध्ययन ने सुझाया कि लोग कसरत, पर्याप्त नींद, स्वस्थ शरीर भार बनाए रखने, सीमित मात्रा में शराब सेवन करने और धूम्रपान से परहेज द्वारा अपने स्वास्थ्य में सुधार ला सकते हैं। अनुकूलन और आत्म प्रबन्धन की योग्यता मानव स्वास्थ्य के केन्द्रीय घटक के रूप में सुझाए गए हैं।

9.15 पर्यावरण का उल्लेख प्रायः व्यक्तियों की स्वास्थ्य संस्थिति को प्रभावित करने वाले घटक के रूप में किया गया है। इसमें प्राकृतिक पर्यावरण, मानव निर्मित पर्यावरण और सामाजिक पर्यावरण की विशेषताएँ सम्मिलित हैं। स्वच्छ जल एवं वायु, समुचित आवास और सुरक्षित समुदाय तथा सड़कें जैसे घटक अच्छे स्वास्थ्य में विशेषतः नवजातों एवं बच्चों के स्वास्थ्य में अंशदान करने वाले कारक के रूप में पाए गए हैं। कुछ अध्ययनों ने यह दर्शाया है कि पास-पड़ोस में आमोद-प्रमोद के स्थान की कमी, जिसमें प्राकृतिक पर्यावरण शामिल है, निजी संतोष का न्यूनतर दर और मोटापा की अधिकता की ओर ले जाता है जिससे न्यूनतर सम्पूर्ण स्वास्थ्य और कुशल-क्षेमत्व जुड़े हुए हैं। इससे यह संकेत प्राप्त होता है कि शहरी पास-पड़ोस में प्राकृतिक स्थान के सकारात्मक लाभों को सार्वजनिक नीति और भूमि उपयोग के निर्धारण के समय ध्यान में रखा जाना चाहिए।

❖ मानसिक स्वास्थ्य

9.16 विश्व स्वास्थ्य संगठन मानसिक स्वास्थ्य का वर्णन इस प्रकार करता है "स्वस्ति-बोध की ऐसी स्थिति जिसमें व्यक्ति अपनी योग्यताओं को पहचानता है, जीवन के सामान्य प्रत्याबलों को प्रवाहित कर सकता है, सफल उत्पादकता के साथ काम कर सकता है और अपने समुदाय को कुछ अंशदान करने के योग्य स्वयं को पाता है।" मानसिक स्वास्थ्य केवल मानसिक रोगों का अभाव नहीं है।

9.17 मानसिक रोग का वर्णन "संज्ञानात्मक, सांवेगिक और व्यवहारपरक दशाओं का ऐसा वर्णक्रम (स्पेक्ट्रम) जो सामाजिक और सांवेगिक स्वस्ति-बोध में तथा लोगों के जीवन और उत्पादकता में बाधा पहुँचाते हो" के रूप में किया गया है। मानसिक रोग का होना गम्भीर रूप से, कुछ समय या सदा के लिए, व्यक्ति की मानसिक क्रियाशीलता में बाधा पहुँचा सकता है। इसके लिए प्रयुक्त अन्य शब्द हैं: "मानसिक स्वास्थ्य समस्या", 'रोग', 'विकृति' या 'दुष्क्रिया'।

9.18 विगत वर्षों में यह संज्ञान में आया है कि अनेक किशोर अपने समाज और सामाजिक समस्याओं के दबाव का सामना करने में मानसिक स्वास्थ्य के मुद्दों से आग्रस्त हैं। ऐसे प्रमुख मानसिक स्वास्थ्य मुद्दे जिन्हें किशोर प्रायः झेलते हैं, वे हैं विषाद, भक्षण विकृतियाँ और औषधि दुर्व्यसन। इन स्वास्थ्य समस्याओं की घटनशीलता को रोकने के कई उपाय हैं; जैसे मानसिक स्वास्थ्य समस्या झेल रहे अपने लड़के या किशोर के साथ प्रभावी सम्प्रेषण एक अच्छा उपाय है। हमें स्मरण रखना होगा कि मानसिक स्वास्थ्य उपचार योग्य होता है जिससे अपने बच्चे के व्यवहार के प्रति सदैव सजग रहना चाहिए।

9.19 यहाँ ध्यातव्य है कि स्वास्थ्य प्राप्त करना और उसे बनाए रखना एक सदैव चलते रहने वाला प्रक्रम है। यह स्वास्थ्य की देखरेख के बारे में कृत व्यवहारों एवं जानकारी तथा निजी युक्तियों एवं सुस्थित जीवन शैली प्रबन्धन के अन्तर्गत आयोजित हस्तक्षेपों जिनका उद्देश्य स्वस्थ रहने में मदद करना है, के माध्यम से संवरता है। इन पक्षों पर हमारे देश में अध्यापक प्रशिक्षण के कार्यक्रमों के अन्तर्गत अपेक्षित जोर देना चाहिए।

❖ स्वास्थ्य-विज्ञान

9.20 स्वास्थ्य-विज्ञान (जो स्वास्थ्य की यूनानी देवी हाइजिया के नाम से बना है) स्वास्थ्य संरक्षण के लिए किए जाने वाले आदतों का एक समुच्चय है। यद्यपि जनसामान्य की संस्कृति और बोल चाल में उसे मात्र ''स्वच्छता'' के अर्थ में लिया जाता है किन्तु अपने पूर्ण और मौलिक अर्थ में स्वास्थ्य-विज्ञान इससे कहीं अधिक गम्भीर विषय है और इसमें सभी दशाएँ और आदतें, जीवनशैली के मुद्दे, आधारिकाएँ तथा ऐसी उपयोगी वस्तुएँ जो सुरक्षित और स्वस्थ पर्यावरण सुनिश्चित करती हैं, सम्मिलित हैं। आधुनिक चिकित्सा विज्ञानों में स्वास्थ्य-विज्ञान का एक मानक है जिसे अलग-अलग स्थितियों में संस्तुत किया जाता है। अतः किसे स्वास्थ्य-विज्ञानीय माना जाए और किसे नहीं यह अलग-अलग संस्कृतियों में, लिंगों और समूहों में पृथक् हो सकता है। कुछ नियमित स्वास्थ्य-विज्ञानी आदतें एक समाज द्वारा अच्छी मानी जा सकती हैं जबकि स्वास्थ्य विज्ञान की उपेक्षा घृणास्पद, निरादरपूर्ण या यहाँ तक कि अशुभ भी मानी जा सकती है।

❖ स्वास्थ्य-विज्ञान का सम्प्रत्यय

9.21 साधारणतः स्वास्थ्य-विज्ञान का अर्थ अधिकतर उन आदतों या अभ्यासों से लगाया जाता है जो रोग-उत्पन्न करने वाले जीवाणुओं का प्रसार रोकते हों। चूँकि स्वच्छता प्रक्रम (उदाहरण के लिए हाथ धोना) संक्रामक जीवाणुओं, साथ ही साथ गन्दगी और धूल को भी दूर करते हैं इसीलिए ये स्वास्थ्य विज्ञान प्राप्त करने के तरीके हैं। इस शब्द के अन्य उपयोग इन वाक्याशों में दिखायी देते हैं जिनमें जन स्वास्थ्य के सम्बन्ध में प्रयुक्त शब्द शामिल हैः शरीर स्वास्थ्य विज्ञान, निजी स्वास्थ्य विज्ञान, निद्रा स्वास्थ्य विज्ञान, मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान, दन्त स्वास्थ्य विज्ञान और व्यावसायिक स्वास्थ्य विज्ञान। स्वास्थ्य-विज्ञान, विज्ञान की एक शाखा का भी नाम है जो स्वास्थ्य संरक्षण और संवर्धन से सम्बन्धित है, इसे स्वास्थ्य विज्ञानी भी कहा जाता है। स्वास्थ्य विज्ञानी क्रियाएँ काफी भिन्न हैं और जिसे एक संस्कृति में स्वीकार किया जाता है उसे दूसरी संस्कृति में स्वीकृत नहीं भी किया जा सकता है।

9.22 इस सन्दर्भ में स्वच्छ भारत अभियान का उल्लेख करना समीचीन होगा जिसका उद्देश्य स्वास्थ्य विज्ञानी आदतों के बारे में देश के लोगों की समझ और कर्तव्य विकसित करने और उसे गम्भीरतर करने से है। इस अभियान का उद्देश्य 2 अक्टूबर 2019, महात्मा गाँधी की 150वीं जयन्ती तक 'स्वच्छ भारत' के लक्ष्य को साकार करने की है। यह अभियान 'राजनीति से परे' और 'देशभक्ति से प्रेरित' होने के रूप में वर्णित किया गया है।

इस अभियान के विशिष्ट उद्देश्य नीचे सूचीबद्ध किए गए हैं–

(i) खुले में शौच समाप्त करना।

(ii) अस्वास्थ्यकर शौचालयों को फ्लश शौचालयों में परिवर्तित करना।

(iii) सिर पर मल उठाकर ले जाने की प्रथा समाप्त करना।

(iv) नगर पालिकाओं का शत प्रतिशत सूखा कचरा संग्रहण और वैज्ञानिक प्रक्रमण/निबटान/पुनरूपयोग करना।

(v) लोगों में अस्वास्थ्यकर आदतों के सम्बन्ध में व्यवहारपरक बदलाव लाना।

(vi) लोगों में स्वच्छता एवं सार्वजनिक स्वास्थ्य से इसके सम्बन्धों के विषय में जागरूकता उत्पन्न करना।

(vii) शहरी स्थानीय निकायों के तन्त्र के अभिकल्पन, क्रियाकरण एवं संचालन को बल प्रदान करना।

(viii) पूँजी खर्च, क्रियान्वयन और रखरखाव लागत में निजी सेक्टर की भागीदारी हेतु प्रभावी माहौल बनाना।

❖ घर एवं दैनन्दिन जीवन में स्वास्थ्य विज्ञान

9.23 घर का स्वास्थ्य विज्ञान उन स्वास्थ्य विज्ञानी क्रियाओं से सम्बन्धित है जो घर में और दैनन्दिन जीवन दशाओं में जैसे सामाजिक स्थलों पर, सार्वजनिक वाहनों में, काम की जगह पर, और सार्वजनिक जगहों आदि में रोग फैलाने का रोकथाम करती है।

9.24 घर एवं दैनन्दिन जीवन दशाओं में स्वास्थ्य विज्ञान संक्रमण रोगों के फैलने को रोकने में महत्वपूर्ण भूमिका निर्वहन करना हैं। इसमें विभिन्न प्रकार की घरेलू स्थितियों में प्रयुक्त प्रक्रियाएँ शामिल हैं– जैसे हस्त स्वास्थ्य-विज्ञान, श्वास-प्रश्वास स्वास्थ्य-विज्ञान, खाद्य एवं जल स्वास्थ्य-विज्ञान, सामान्य गृह स्वास्थ्य-विज्ञान, पर्यावरणीय स्थानों एवं सतहों का स्वास्थ्य-विज्ञान, पालतू घरेलू जानवरों का स्वास्थ्य-विज्ञान एवं गृह स्वास्थ्य देखेरख (जो लोग संक्रमण के ज्यादा खतरे वाले हैं उनकी देखरेख)।

9.25 अच्छे गृह स्वास्थ्य विज्ञान का अर्थ है क्रान्तिक बिन्दुओं पर स्वास्थ्य विज्ञानी प्रक्रियाओं को ठीक समय पर संक्रमण चक्रभंग करने हेतु अर्थात् कीटाणुओं को फैलने से पहले ही रोक देने का लक्ष्य हासिल करना। क्योंकि कुछ रोगाणुओं की 'संक्रमण खुराक' अत्यल्प हो सकती है। (10-100 जीवन क्षम इकाई या कुछ विषाणुओं के लिए इससे भी कम) और संक्रमण हथेली द्वारा या मुँह में भोजन द्वारा, नाक की श्लेष्मा या आँख द्वारा सीधे स्थानान्तरित किए जा सकते हैं, इसलिए स्वास्थ्य विज्ञानी शोधन प्रक्रियाएँ उन क्रान्तिक सतहों से रोगाणुओं के समूलोच्छेद के लिए पर्याप्त प्रभावी होने चाहिए। स्वास्थ्य विज्ञानी शोधन निम्नलिखित प्रविधियों से किया जा सकते हैं–

(i) किसी साबुन या डिटर्जेण्ट का उपयोग करते हुए भौतिकीय रूप से निरसन (अर्थात् सफाई) द्वारा। स्वास्थ्य विज्ञानी उपाय के रूप में प्रभावी होने के लिए इस प्रक्रम को सम्यक् रूप से करते हुए पानी में अच्छी तरह खंगालने तक जारी रखना चाहिए।

(ii) किसी ऐसे प्रक्रम या उत्पाद के उपयोग द्वारा जो रोगाणुओं को उनके स्थान पर ही निष्क्रिय कर देता है। कीटाणु निरसन किसी सूक्ष्म जीवाणु हन्ता उत्पाद अर्थात् संक्रमणहारी या कीटाणु प्रतिरोधी उत्पाद या निर्जल हस्त स्वच्छताकारक, या ताप के प्रयोग द्वारा पायी जा सकती है।

(iii) कुछ स्थितियों में प्रयुक्त कीटाणु अपसारण और समापन दोनों का उपयोग किया जाता है उदाहरणार्थ, कपड़ों और अन्य घरेलू चीजों जैसे तौलिया तथा बिस्तर के चादरों की धुलाई द्वारा कीटाणुओं से छुटकारा पाया जा सकता है।

9.26 शिक्षक-प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों में स्वास्थ्य विज्ञान संघटक के अन्तर्गत शामिल विभिन्न कार्यक्रम जैसे पर्यावरण शिक्षा, स्काउटिंग और गाइडिंग तथा समुदाय आधारित क्षेत्र कार्य में पूरक के रूप में भी माड्यूलों के माध्यम से व्यवस्था की जानी चाहिए।

❖ योग

9.27 योग की उत्पत्ति का अनुमान प्राक्-भारतीय वैदिक परम्पराओं से लगाया गया है लेकिन ज्यादा संभावना है कि यह ईसा पूर्व छठी या पाँचवी सदी के दौरान प्रारम्भ श्रमण गतिविधियों, जैसे तपस्वियों के समूह में विकसित हुआ होगा। बौद्ध निकायों में योग सम्बन्धी प्राचीनतम विवरण प्राप्त होते हैं। समानान्तर विकास 400 ईसा पूर्व में पतंजलि द्वारा योग सूत्रों में वर्णित किए गए थे जो ईसा पूर्व प्रथम सहस्राब्दि की सांख्य दर्शन की

भिन्न तापस अभ्यासों और प्राक् दर्शन परम्पराओं को जोड़ता है। तन्त्र से हठयोग की उत्पत्ति प्रथम सहस्राब्दि के लगभग हुई।

9.28 उन्नसवीं सदी के अन्तिम दशक एवं बीसवीं सदी के प्रारम्भिक काल में स्वामी विवेकानन्द की सफलता के अनन्तर भारत के योग गुरूओं द्वारा योग का परिचय पश्चिमी जगत को कराया गया। तभी से लोगों का ध्यान इसकी ओर गया। हाल ही में राष्ट्र महासंघ ने 21 जून को अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस के रूप में मनाने की घोषणा हमारे प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी के प्रस्ताव को स्वीकार करते हुए किया कि ''योग स्वास्थ्य एवं स्वस्ति-बोध का सर्वांगीण उपागम प्रस्तुत करता हैं।'' उल्लेखनीय है कि इस तरह की पहल पहली बार प्रस्तावित एवं क्रियान्वित हुई है।

9.29 योग-शरीरशास्त्र मनुष्यों के तीन शरीरों (स्थूल, सूक्ष्म और कारण) और पंचकोशों (अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय) का वर्णन प्रस्तुत करता है जो आत्मा को आवृत करते हैं और चक्रों में प्रवह्मान शक्ति प्रणालियों द्वारा क्रियाशील होते हैं। अनेक अध्ययनों में कैंसर, मनोविदलता, दमा और हृदय रोगों में पूरक मध्यस्थता प्रविधि के रूप में योग की प्रभाविता निर्धारित करने का प्रयास किया है। आजकल यह तनाव-प्रबन्धन एवं सुस्थित जीवन शैली के विकास में व्यापक रूप से प्रयोग में लाया जा रहा है।

9.30 छठी सदी ईसा पूर्व के वैयाकरण पाणिनि के अनुसार योग की व्युत्पत्ति दो धातुओं 'युजिर योगे' या 'युज् समाधौ' (ध्यान की एकाग्रता) में से किसी से भी मानी जा सकती है। पतंजलि के योगसूत्र के सन्दर्भ में पारम्परिक भाष्यकारों द्वारा 'युज् समाधौ' की व्युत्पत्ति सही मानी गई है। पाणिनी के अनुसार ही व्यास, जिन्होंने योगसूत्रों पर सबसे पहले मनुष्य की रचना की है, ने योग का अर्थ समाधि (ध्यान की एकाग्रता) किया है। अन्य ग्रन्थों और सन्दर्भों में, जैसे भगवद्गीता और हठयोग प्रदीपिका में योग शब्द 'युजिर' के अनुरूप किया गया है। दास गुप्ता के अनुसार योग शब्द दोनों धातुओ, 'युजिर योग' या 'युज समाधौ' (ध्यान की एकाग्रता) में से किसी के भी द्वारा किया जा सकता है। वह व्यक्ति जो योगाभ्यास करता है या जो योगदर्शन का पालन पूर्ण प्रतिबद्धता के साथ करता है, योगी (यह शब्द पुरूष या स्त्री दोनों के लिए प्रयुक्त होता है) कहलाता है या 'योगिनी' (केवल स्त्री के लिए प्रयुक्त) कहलाती है।

❖ योग का लक्ष्य

9.31 योग का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष (जीवन्मुक्ति) है यद्यपि यह इस पर निर्भर करता है कि इसे किस दार्शनिक या धर्मशास्त्री तन्त्र के साथ जोड़ा जाता है। योग के पाँच प्रधान अर्थ हैं:

(i) किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अनुशासनबद्ध विधि के रूप में योग;

(ii) शरीर एवं मन को नियंत्रित करने की प्रविधि के रूप में योग;

(iii) दर्शन के एक प्रकार या सम्प्रदाय के रूप में योग का नाम;

(iv) अन्य शब्दों के साथ जोड़कर, जैसे 'हठ योग' और 'लय योग' जिसमें अभ्यासकर्त्ता की विशेषज्ञता किसी विशिष्ट योग प्रविधि में होती है; तथा

(v) योगाभ्यास के अन्तिम लक्ष्य के रूप में योग।

9.32 योग शब्द के अर्थ कुछ अंशों तक रूढ़ हो गये हैं लेकिन वे विविध अर्थों में लिए जाते हैं जैसेः

(i) प्रत्येक्षण और संज्ञान के विश्लेषण के रूप में योग;

(ii) चेतना के उत्थान और प्रसरण के रूप में योग;

(iii) सर्वज्ञता के पथ के रूप में योग; एवं

(iv) अन्य शरीरों में प्रवेश की प्रविधि, बहुतेरे शरीरों की उत्पत्ति और परा प्राकृतिक सिद्धियों की प्राप्ति के रूप में योग।

9.33 इस क्षेत्र में स्वामी विवेकानन्द का अवदान केवल इसलिए महत्वपूर्ण नहीं है कि उन्होंने इसकी वैज्ञानिक, सटीक और अतिस्पष्ट व्याख्या प्रस्तुत की, वरन् पाश्चात् जगत में इसे कुशल-क्षेमी जीवनशैली और धृति तथा समचितत्व के रूप में प्रचारित भी किया।

❖ आधुनिक सुस्थित जीवन शैली

9.34 आध्यात्मिक लक्ष्यों के आलावा आजकल योग के शारीरिक आसन स्वास्थ्य समस्याओं को दुर करने, प्रत्याबल घटाने और मेरूदण्ड को लचीला बनाए रखने के लिए प्रयुक्त किए जाते हैं। योग को पूर्ण शारीरिक व्यायाम कार्यक्रम और शारीरिक चिकित्सा प्रणाली के रूप में भी प्रयोग किया जाता है।

9.35 अधुना प्रचलित अभ्यासों से संकेत ग्रहण करते हुए सभी शिक्षण स्तरों पर योजनाबद्ध ढंग से ऐसे अन्तरायणों का उपयोग करना समयोवित कार्य है। हमारे शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में छात्रों को व्यक्तित्व विकास के नाम पर विविध पक्ष काफी अलग-थलग और तदर्थ जैसे होते हैं और वे कुशल-क्षेमत्व स्वास्थ्य और स्वास्थ्य-विज्ञान को संवर्धित करने के उद्देश्य से अभिकल्पित नहीं प्रतीत होते हैं। कुशल-क्षेमत्व विकास कार्यक्रमों के साथ योग को उसके महत्वपूर्ण अंग के रूप में सम्मिलित करते हुए

एकीकृत योजना का निर्माण करना और सभी प्रशिक्षार्थियों हेतु उसे अनिवार्य करना निःसंदेह अति समीचीन कार्य होगा।

10. अध्यापक-प्रशिक्षकों के लिए नेतृत्व : रूपान्तरणवादी बनाम क्रियान्वितिकारी

10.1 नेतृत्व बुनियादी तौर पर एक सामान्य लक्ष्य की प्राप्ति में लोगों को अनुसरण हेतु प्रभावित करता है। लेकिन सही परिणाम प्राप्त करने के लिए नेता का प्रभावकारी दबाव ही पर्याप्त नहीं है वरन् एक शक्तिशाली और प्रेरणादायी परिप्रेक्ष्य भी आवश्यक है। 21वीं सदी के लिए आदर्श परिणाम देने वाले परिप्रेक्ष्य को संक्षेप में इन चार बीज-शब्दों द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है– परिप्रेक्ष्य, परिवर्तन, क्रियान्वयन और परिणाम देना। ये चारों इस अर्थ में परस्पर संबद्ध हैं कि भविष्य परिवर्तन लाती है, परिवर्तन क्रियान्वयन के लिए प्रेरित करता है और क्रियान्वयन से इच्छित परिणाम प्राप्त होते हैं। स्वामी जी के पास मानव निर्माणकर्त्ता के रूप में अध्यापक की एक तर्कसंगत और व्यापक दृष्टि थी और उन्होंने इसकी एक साझी समझ निजता-बोध और प्रेरणा की ऊर्जा के साथ कुछ इस तरह विकसित की जो अपनी व्यापकता में परिप्रेक्ष्य को परिचालित करती है।

10.2 आज हमारे देश में नेतृत्व के बारे में सावधानी से बनाये गये पाठ्यक्रमों में सक्रिय भागीदारी के जरिये अध्यापक-प्रशिक्षकों को इन गुणों को ठीक ढंग से आत्मसात् करना चाहिए। सबसे पहले हमें नेतृत्व की चारित्रिक विशेषताओं के उन पहलुओं पर विचार करना चाहिए जिन्हें स्वामी जी ने प्रतिपादित किया है और जो प्रभावशाली अध्यापक और अध्यापक-प्रशिक्षक बनने के लिए आज भी प्रभावी हैं।

10.3 सामान्य रूप से नेतृत्व के, और विशेष रूप से एक अध्यापक-नेतृत्व के सम्बन्ध में स्वामी जी द्वारा प्रतिपादित नेतृत्व-गुण निम्नलिखित हैं:

❖ चरित्र की पवित्रता

10.4 जहाँ नेतृत्व में चरित्र न हो वहाँ निष्ठा भी सम्भव नहीं है और पूर्ण पवित्रता सर्वाधिक चिरस्थायी निष्ठा और विश्वास को सुनिश्चित करती है।

❖ लोगों को साथ रखने की जन्मजात योग्यता

10.5 कोई एक ही जीवन में नेता नहीं बनता। इसके लिए उसे जन्म लेना पड़ता है। संगठन में और योजनाएँ बनाने में मुश्किल नहीं है। परीक्षा,

एक नेता की वास्तविक परीक्षा भिन्न-भिन्न ढंग के लोगों को सर्वसामान्य सहानुभूति की दिशा के आसपास साथ-साथ बनाए रखने में है और इसे केवल अचेतनरूप से, अनजाने ही किया जा सकता है, प्रयत्न द्वारा कभी नहीं।

❖ सेवा और प्रेम : नेतृत्व की पूर्व शर्तें

10.6 नेता की भूमिका में किसी को उतारना बड़ा मुश्किल है। उसे सेवकों का सेवक होना पड़ता है। हजारों प्रकार के विचार वालों को समावेशित करना होता है जो सबका सेवक है वही उनका वास्तविक गुरू या स्वामी हो सकता है। ईर्ष्या या स्वार्थ की एक हल्की छाया भी आप में न हो तभी आप एक नेता हो सकते हैं।

❖ सैनिक चेतना आत्माधिकार का दावा नहीं, बल्कि आत्मत्याग

10.7 कहाँ है वह सैनिक चेतना जिसमें शुरूआत में ही यह जान लेना होता है कि कैसे सेवा और आज्ञापालन करना है और किस तरह आत्मनियंत्रण का अभ्यास करना है। सैनिक चेतना आत्म-अधिकार का दावा करना नहीं बल्कि आत्मत्याग है। दूसरों के जीवन और हृदय पर अधिकार करने की योग्यता पानी हो तो पहले स्वयं आदेश के एक शब्द पर अपना जीवन न्योछावर कर देने को तैयार रहना पड़ेगा। पहले नेता को स्वयं त्याग करना चाहिए।

❖ नेता में धक्का सहने की तत्परता

10.8 क्या भारतीय सैनिक युद्ध के मैदान में कायरता का प्रदर्शन करता है? नहीं, उनको रास्ता सुझाने वाले नेता चाहिए। स्वामी जी का इस सम्बन्ध में व्यक्त आत्मकथात्मक विवरण अत्यन्त सटीक प्रतीत होता है जिसमें उन्होंने कहा– मेरा एक अंग्रेज मित्र, जिसका नाम है जेनेरल स्ट्राँग, सिपाही विद्रोह के समय भारत में था। वह इसके बारे में बहुत सी कहानियाँ सुनाया करता था। एक दिन, बातचीत के दौरान मैंने उससे पूछा, सिपाहियों के पास काफी बन्दूकें, हथियार और सुविधाएँ थीं और वे प्रशिक्षित लड़ाकू थे, फिर भी उनकी ऐसी हार क्यों हुई? उसने उत्तर दिया– उनके नेता ऐसे थे जो स्वयं आगे-आगे चलने के बजाय पीछे एक सुरक्षित मुकाम से चिल्लाते रहते थे, "लड़ते रहो, बहादुर जवानों" वगैरह-वगैरह; लेकिन आदेश देने वाला अधिकारी अगर स्वयं आगे न बढ़े और मौत का मुकाबला न करे तो उसके मातहत सिपाही कभी दिल से नहीं लड़ सकते। सभी क्षेत्रों में यही बात लागू होती है। "सरदार को अपना सिर देने को तैयार रहना चाहिए- जो सिर दे वह सरदार"। अगर आप एक लक्ष्य के लिए अपना जीवन बलिदान कर सकते हैं तभी आप

एक नेता हो सकते हैं। लेकिन हम सभी आवश्यक लाभ का मूल्य चुकाए बगैर नेता होना चाहते हैं और नतीजा होता हैं शून्य– हमारी कोई नहीं सुनता।

❖ निष्पक्ष और व्यक्ति-निरपेक्ष नेता

10.9 यह जान लो कि मुखिया के लिए पक्षपात अत्यन्त हानिकर है। आप किसी खास व्यक्ति को किसी और से अधिक प्यार देंगे तो पक्का जानिये, आप भावी परेशानियों के बीज बोयेंगे।

10.10 जिसके प्रेम व्यवहार में ऊँच-नीच का भेद भाव होगा वह कभी नेता नहीं हो सकता। जिसके प्रेम में कोई सीमा नहीं है और जिसके प्रेम में कोई ऊँच-नीच का भाव नहीं रहता, पूरी दुनिया उसके कदमों में लोटती है।

10.11 मैं ऐसे व्यक्तियों को देखता हूँ जो मुझे अपना सारा का सारा प्यार निछावर कर सकते हैं। लेकिन इसके बदले में, मुझे किसी को अपना पूरा का पूरा दिमाग नहीं दे देना चाहिए। अगर ऐसा किया तो उसी दिन सारा काम चौपट हो जाएगा। फिर भी ऐसे कुछ लोग हैं जो ऐसा प्रतिदान चाहेंगे क्योंकि उनमें व्यक्ति निरपेक्ष दृष्टि की उदारता नहीं है। सही कार्य के लिए यह जरूरी है कि मेरे हृदय में जहाँ तक सम्भव हो, भरपूर जोशीला प्रेम हो जबकि मैं स्वयं पूरी तरह व्यक्ति–निरपेक्ष रहूँ। अन्यथा, ईर्ष्या और कलह से सब कुछ छिन्न-भिन्न हो जाएगा। नेता को अवश्य ही व्यक्ति निरपेक्ष होना चाहिए।

❖ लोगों को एकजुट करना और उन्हें सहानुभूति और सहिष्णुता से सांचे में ढालना

10.12 अगर कोई अपने भाइयों में से किसी एक की बुराई करने आपके पास आता है तो उसकी बात सुनने से बिलकुल मना कर दीजिए। उसे सुनना भी पाप है। क्योंकि उसमें भविष्य की समस्याओं के कीटाणु मौजूद हैं।

10.13 हर एक की कमियों के प्रति धैर्य धारण कीजिए। लाखों लोगों की भी आलोचना को माफ कर दीजिए। और अगर आपका प्रेम पूरी तरह निःस्वार्थ है तो सभी क्रमशः एक दूसरे से प्रेम करने लगेंगे। जैसे ही वे यह पूरी तरह समझ जायेंगे कि एक का हित दूसरों के हितों पर निर्भर है, वैसे ही उनमें से हर एक ईर्ष्या करना छोड़ देगा। कोई भी काम मिल जुलकर करना हमारे राष्ट्रीय चरित्र में नहीं है। इसीलिए आपको अत्यन्त सावधानी से उस सहयोग की भावना के उद्घाटन का प्रयत्न करना होगा और धैर्य से प्रतीक्षा करनी होगी।

❖ सर्वोत्तम नेता वह है जो "बच्चे की तरह नेतृत्व करता है"

10.14 कुछ लोग सर्वोत्कृष्ट कार्य करते हैं अगर उनका समुचित नेतृत्व किया जाय। हर एक में नेतृत्व की जन्मजात प्रतिभा नहीं होती। सर्वोत्तम नेता वह है *जो बच्चे की तरह नेतृत्व करता है। यद्यपि, ऊपरी तौर पर, वह सबके ऊपर निर्भर दिखाई देता है लेकिन वह समूचे घर का होता है। कम से कम, मेरी समझ में, यह एक रहस्य है।* यही वह चीज है जिस पर स्वामी जी जोर देते थे।

❖ अध्यापक-नेता

10.15 जिन्होंने अपने आप को प्रभु के आगे पूरी तरह समर्पित कर दिया है वे लोग तथाकथित समाज-कर्मियों की तुलना में विश्व के लिए कहीं अधिक काम करते हैं। एक आदमी, जिसने अपने आप को पूरी तरह शुद्ध कर लिया है, वह उपदेशकों की एक रेजीमेन्ट की तुलना में अधिक सफलतापूर्वक कार्य करता है। पवित्रता और मौन के भीतर से शक्तिशाली शब्द फूटते हैं।

❖ एक अध्यापक का व्यक्तित्व

10.16 इंग्लैण्ड में मेरे एक मित्र ने मुझसे एक प्रश्न पूछा, "हम एक अध्यापक के व्यक्तित्व पर क्यों ध्यान दें? हमें तो बस इसकी जाँच करनी चाहिए कि वह क्या कहता है और काम कैसे करता है?" अगर एक आदमी मुझे गतिविज्ञान या रसायन शास्त्र में कुछ पढ़ाना चाहता है तो वह चाहे कैसे भी चरित्र का हो, वह मुझे गतिविज्ञान या कोई भी विज्ञान पढ़ा सकता है। चूँकि प्राकृतिक विज्ञानों में जिस ज्ञान की आवश्यकता होती है वह तो बस बौद्धिक ज्ञान होता है और बौद्धिक शक्ति पर निर्भर करता है। इसलिए ऐसे मामले में यह हो सकता है कि एक आदमी जबर्दस्त बौद्धिक शक्ति से सम्पन्न हो लेकिन उसकी आत्मिक उन्नति रत्ती भर भी न हो। लेकिन आध्यात्मिक विज्ञानों में, आदि से अन्त तक, किसी अपवित्र आत्मा में आध्यात्मिक प्रकाश का होना असम्भव है। ऐसी अपवित्र आत्मा वाला व्यक्ति क्या पढ़ाएगा? वह कुछ नहीं जानता। आध्यात्मिक सत्य है पवित्रता।

10.17 धर्म के अध्यापक में हमें सबसे पहले और सबसे अधिक यह देखना आवश्यक है कि वह क्या है? शब्दों का महत्व तो उसके बाद ही आता है, क्योंकि वह संप्रेषण का माध्यम है। अगर उसमें आध्यात्मिक शक्ति नहीं है तो वह क्या संप्रेषित करेगा? एक उपमा लेते हैं : अगर 'हीटर' गर्म है तो वह उष्णता के स्पंदन प्रेषित करेगा। लेकिन अगर वह गर्म नहीं है तो वह ऐसा नहीं कर पाएगा। धार्मिक अध्यापक के बौद्धिक स्पंदनों के विषय में भी ठीक यही बात लागू होती है, वह भी इन स्पंदनों

को विद्यार्थी की बुद्धि में प्रेषित करता है। यह एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को देने या प्रेषित करने का प्रश्न है, हमारी बुद्धि मात्र को उत्तेजित करने का नहीं। कोई वास्तविक और ठोस शक्ति अध्यापक से निकलती है और विद्यार्थी की मनोभूमि में उगने और बढ़ने लगती है। अतएव यह एक आवश्यक शर्त है कि अध्यापक को सच्चा होना ही चाहिए।

10.18 हम सर्वोत्कृष्ट शानदार व्याख्यान, अत्यन्त अद्भुत तर्कपूर्ण विमर्श सुनते हैं और घर जाकर सब भूल जाते हैं। एक दूसरे समय, हम अत्यन्त सरल भाषा में कुछ शब्द सुनते हैं और वे हमारी जिन्दगी में प्रवेश कर जाते हैं, वे हमारे अभिन्न अंग बन जाते हैं। एक ऐसे व्यक्ति के शब्द, जो उनमें अपना व्यक्तित्व डाल देता है, अपना प्रभाव छोड़ते हैं, लेकिन उस व्यक्ति का व्यक्तित्व अत्यन्त प्रबल होना चाहिए। सभी प्रकार के अध्यापन में देना और लेना चलता है। अध्यापक देता है और विद्यार्थी लेता है, लेकिन अध्यापक के पास देने के लिए कुछ होना आवश्यक है और विद्यार्थी को लेने के लिए तैयार रहना भी बेहद जरूरी है।

❖ अध्यापक का कार्य

थोड़ी देर, इन दो निम्नलिखित परिभाषाओं पर मनन करते हैं–

(i) शिक्षा मनुष्य में अन्तर्निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति है।
(ii) धर्म मनुष्य में अन्तर्निहित दिव्यता की अभिव्यक्ति है।

10.19 दोनों मामलों में, अध्यापक का कर्तव्य बस इतना है कि वह रास्ते की तमाम बाधाओं को हटा दे। मैं हमेशा कहता हूँ कि इसके बाद अध्यापक को कोई हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। बाकी सब कुछ ठीक हो जाएगा। हमारा कर्तव्य मात्र इतना है– रास्ते को बाधामुक्त कर देना। बाकी सब 'प्रभु' कर देते हैं।

❖ नकारात्मक विचार मनुष्य की दुर्बलता

10.20 नकारात्मक विचार मनुष्य को दुर्बल बनाते हैं। क्या तुम नहीं देखते कि जहाँ माता–पिता लगातार अपने बच्चों पर पढ़ने-लिखने का दबाव डालते रहते हैं, कहते रहते हैं– तुम कभी कुछ नहीं सीख सकते, और उन्हें मूर्ख वगैरह बोलते रहते हैं, उनके बच्चे कई बार सचमुच वैसे ही हो जाते हैं। अगर तुम बच्चों से कोमल शब्दों में बात करो और उन्हें प्रोत्साहित करो तो वे समय पाकर अवश्य ही स्वयं अच्छे बन जायेंगे। जो नियम बच्चों के लिए हैं वही उन लोगों के लिए भी है जो लोग उच्चतर विचारों के क्षेत्र में बच्चों जैसे हैं। रचनात्मक विचार प्रदान करने से लोगों का मनुष्य के रूप में विकास होगा और वे अपने पैरों पर खड़ा होना सीखेगें। भाषा

और साहित्य में, कविता और विभिन्न कलाओं में, सभी क्षेत्रों में हमें लोगों के विचारों और कार्यों में होने वाली गलतियों पर नहीं टोकना चाहिए बल्कि उस रास्ते के बारे में बताना चाहिए जिस पर चलकर धीरे-धीरे वे बेहतर करने के योग्य हो सकें। किसी की गलतियाँ दिखाने से उसकी आत्मा को ठेस पहुँचती है। हमने देखा है कि श्री रामकृष्ण, उन लोगों को भी, जिन्हें हम बेकार समझते थे, प्रोत्साहित किया करते थे और इस प्रकार उनके जीवन की गति में परिवर्तन ला देते थे। शिक्षा देने का उनका ढंग अद्‌भुत, अपूर्व था।

❖ मस्तिष्क और हृदय को उच्च विचार से भरना

10.21 माँस पेशियों के द्वारा ऊर्जा की थोड़ी सी अभिव्यक्ति को कहा जाता है– धर्म या कर्म। लेकिन जहाँ विचार नहीं होगा, वहाँ कर्म भी नहीं होगा। अतएव मस्तिष्क को उच्च विचारों, उच्च आदर्शों से भर दो, उन्हें रात-दिन अपने सामने रखो और उससे महान् कार्य पैदा होंगे।

10.22 प्रत्येक व्यक्ति आकाश को देख सकता है, यहाँ तक कि जमीन पर रेंगने वाला एक मामूली कीड़ा भी नीले आकाश को देखता है लेकिन वह कितनी दूर है! हमारे आदर्शों के विषय में भी ठीक यही बात है। यह निःसन्देह बहुत दूर है, लेकिन उसी समय, हम जानते हैं कि हम इसे लेकर रहेंगे। हमें अपने सामने सर्वोच्च आदर्श रखना चाहिए। दुर्भाग्य से, इस जीवन में, बहुसंख्यक लोग बिना किसी आदर्श के, इस अंधकार में भटक रहे हैं। अगर अपने सामने एक आदर्श रखकर काम करने वाला व्यक्ति एक हजार गलतियाँ करता है तो मेरा निश्चित विचार है कि आदर्शहीन मुनष्य पचास हजार गलतियाँ करेगा। अतएव सामने एक आदर्श रखना बेहतर है और जितना हो सके हमें अपने आस पास उस आदर्श की ही बात कहना और सुनना चहिए जब तक कि वह हमारे दिल में, दिमाग में और हमारी स्नायुओं में न समा जाय, हमारे रक्त की एक एक बूँद में घुल न जाय, और हमारे शरीर के एक एक रोम छिद्र में समाविष्ट न हो जाय। हमें इस पर ध्यान करना चाहिए। जब हृदय परिपूर्ण हो जाता है तब मुँह बोलता है और जब हृदय परिपूर्ण हो जाता है तभी हाथ भी काम करते है।

10.23 यहाँ अध्यापक-नेतृत्व के जो सिद्धान्त और चरित्र-लक्षण निरूपित किए गए है उनसे जो समझ बनती है उससे आप हृदयंगम कर सकते है कि अपनी भूमिका प्रभावशाली ढंग से निभाने के लिए एक अध्यापक को रूपान्तरणवादी और क्रियान्वितिकारी दोनों प्रकार की नेतृत्व शैलियों के गुणों को आत्मसात् करना होगा। मात्र एक क्रियान्वितिकारी नेतृत्व वह होता है जो अपने लिए तय करता है और चुनता है कि क्या करना है, अपनी स्वयं की भविष्य दृष्टि रखता है, देख-रेख करता है और समस्या-

समाधान के लिए उसके पास जाना पड़ता है। दूसरी तरफ, रूपान्तरणवादी नेतृत्व वह है जो प्रेरणा प्रदान करता है, साझा परिप्रेक्ष्य का निर्माण करता है, अपने साथियों-सहयोगियों को समस्या का सामना करने को तैयार करता है और उसे करिश्माई व्यक्तित्व भी कहा जा सकता है। यह कहना ज्यादा बेहतर होगा कि ये दोनों शैलियाँ गुण, योग्यता और क्षमता की विस्तृत श्रृँखला में दो परस्पर विरोधी छोर नहीं हैं। एक ही नेता के व्यक्तित्व में ये दोनों शैलियाँ कुछ कम, कुछ अधिक मात्रा में रह सकती हैं; विशेषरूप से अध्यापक में जिसकी योग्यता या अयोग्यता जिसके व्यक्तित्व में गुणों का या योग्यताओं की उपस्थिति या अनुपस्थिति का मूल्यांकन उनके व्यवहार और प्रस्तुति के दौरान होता है, एक विशेष प्रकार की क्षमता दूसरे प्रकार की क्षमता से भिन्न हो सकती है।

10.24 यह स्मरण रखना चाहिए कि अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रमों को ऐसा स्वरूप देना होगा जिससे क्रियान्वितिकारी और रूपान्तरणवादी शैलियों से जुड़ी हुई प्रभावशाली नेतृत्व की क्षमताएँ उपयुक्त रूप में परिभाषित, व्याख्यायित, सन्दर्भित और अभिक्रमित की गई हों तथा उसमें सेवा-पूर्व और सेवा-रत अध्यापकों की सम्भावनाओं को प्रोन्नत करने का ध्यान रखा गया हो। इस उद्देश्य से, कुछ अनुरूपित व्यवस्थाओं की रचना की जा सकती है जिनके माध्यम से अध्यापक-निर्माण के विभिन्न स्तरों पर इन क्षमताओं और योग्यताओं के अर्जन और समन्वयन का अभ्यास किया जा सके।

चिन्तन हेतु

1. कम से कम तीन ऐसी विशिष्टताओं का उल्लेख करें जिनको 'दायरे में बन्द सोच' से 'दायरे से मुक्त सोच' में विभेदक लक्षण माना जा सकता है।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2. निम्नांकित के लिए शिक्षा प्रभावी उपकरण कैसे प्रमाणित हुई है?

✓ महिलाओं का सशक्तिकरण

✓ जन समूहों का सशक्तिकरण

✓ राष्ट्रीय एकीकरण

✓ अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध

✓ पर्यावरणीय प्रबन्धन

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3. छात्राध्यापकों में 'सुस्थित जीवन शैली' विकसित करने के उद्देश्य से, कार्यक्रमों को वैश्विक सन्दर्भ में अभिकल्पित किया जा सकता है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

4. स्वामी विवेकानन्द के 'शिक्षा दर्शन' के अनुरूप निम्नांकित के प्रोत्साहन हेतु किन विशिष्ट कथ्यों और युक्तियों को अपनाया जा सकता है?

(अ) शिक्षा में श्रेष्ठता

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

(ब) शिक्षा में समानता

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

(स) पर्यावरणीय जागरूकता

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

(द) अध्यापक में क्रियान्वितिकारी नेतृत्व

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

5. स्वामी विवेकानन्द के योगदान के तीन ऐसे अति महत्वपूर्ण क्षेत्रों का उल्लेख करें जो उनके 'दायरे से मुक्त सोच' के सन्दर्भ में साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

पठन एवं मनन हेतु
(स्वामी विवेकानन्द द्वारा उद्धृत शिक्षाप्रद कथायें)

बहसवाद वादी मंत्रियों की कहानी

एक समय एक राजा ने जब यह सुना कि पड़ोसी देश का राजा उसकी राजधानी पर घेरा डालने के लिए आगे बढ़ रहा है, तो उसने शत्रु से देश की रक्षा के उपायों पर विचारार्थ एक जनसभा बुलायी। अभियांत्रिकों ने परामर्श दिया कि राजधानी के चारों ओर मिट्टी की एक ऊँची दीवार खड़ी कर दी जाए और उसके साथ-साथ एक चौड़ी खाई खोद दी जाए। मोचियों ने सुझाव दिया कि वह दीवार चमड़े की बनाई जाए, क्योंकि 'चमड़े से उत्तम कोई वस्तुत नहीं है।' लोहर चिल्लाये, 'नहीं ये गलत कहते हैं, दीवार को लोहे से बनवाया जाए।' और तब वकीलों की बारी आयी। उन्होंने तर्क दिया कि राज्य रक्षा का सर्वोत्तम उपाय एक ही है कि शत्रु को वैधानिक तरीके से यह बतलाया जाए कि वह दूसरे की सम्पति को हड़पने का प्रयास कर एक अनुचित और अवैधानिक अपराध कर रहा है। सबसे अंत में पुरोहित आगे बढ़े। वे इन सब सुझावों पर उपेक्षा भरी हंसी के उपरांत बोले, 'तुम सब पागलों जैसी बातें कर रहे हो। सर्वप्रथम देवताओं को बलि देकर प्रसन्न करना चाहिए और तभी हम अजेय हो सकते हैं। इस प्रकार राज्य की रक्षा करने के बजाए वे मूर्ख आपस में वाद-विवाद करते रहे। इसी बीच शत्रु आगे बढ़ आया, उसने आक्रमण कर राजधानी को ध्वस्त कर दिया।

❖

दो प्रकार का साहस

साहस दो प्रकार का होता है। एक प्रकार है, तोप के सामने अड़ जाना। दूसरा प्रकार है, आध्यात्मिक विश्वासों पर डटे रहना। एक सम्राट सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण किया। उसके गुरू ने आदेश दिया था कि वह भारत के कुछ संन्यासियों से अवश्य मिले। बहुत खोज करने के बाद उसे एक सन्त शिला पर बैठा हुआ दिखाई पड़ा। सम्राट ने उससे थोड़ी सी बात की। वह उस संन्यासी के ज्ञान से बहुत अधिक प्रभावित हुआ। उसने संन्यासी से आग्रह किया कि वह उसके साथ उसके देश को चले। संन्यासी ने कहा, 'नहीं मैं यहाँ इस जंगल से पूर्णतया संतुष्ट हूँ।' सम्राट ने कहा, 'मैं तुम्हें धन–वैभव, पद–प्रतिष्ठा सब कुछ दूंगा। मैं विश्व का सम्राट हूँ।' इस पर सन्यासी ने उत्तर दिया, 'नहीं मैं इन चीजों का भूखा नहीं।' तब सम्राट ने धमकी दी। 'यदि तुम नहीं चलोगे तो मैं तुम्हें मार डालूँगा।' यह सुनकर संन्यासी उपेक्षापूर्वक मुस्कुराया और बोला, –ऐ सम्राट! यह तुमने सबसे बड़ी मूर्खतापूर्ण बात कही। तुम मुझे मार नहीं सकते। मुझे न सूर्य सुखा सकता है, न अग्नि जला सकती है, न तलवार काट सकती है, क्योंकि मैं अजन्मा, अमर, नित्य, सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान आत्मा हूँ।' यह है आध्यात्मिक निर्भीकता। दूसरे प्रकार का साहस सिंह या व्याघ्र का साहस है।

❖

मीनार पर एक मंत्री

एक राजा के मंत्री थे। किन्ही कारणों से उसके बुरे दिन आ गये और राजा उससे कुपित हो गया। परिणामस्वरूप राजा ने उसे एक अत्यंत ऊंची मीनार के ऊपरी भाग में बंदी बना दिया। जिससे वह मंत्री वहीं भूखा प्यासा मर जाये। उस मंत्री की निष्ठावान पत्नी ने रात्रि में जाकर मीनार के नीचे से अपने पति को पुकार कर पूछा कि मैं इस संकट की स्थिति में उसकी सहायता कैसे कर सकती हूँ। मंत्री ने उसे आगामी रात्रि एक लम्बी पतली रस्सी, एक मजबूत रस्सी, साधारण सूत, रेशम का धागा, एक भ्रमर व थोड़ा शहद लेकर मीनार के पास पुनः आने को कहा। आश्चर्यचकित उसने एक आदर्श पत्नी की भांति मंत्री के आदेश का पालन किया।

पति ने उससे रेशमी धागे से उस जीवित भ्रमर को सावधानी से बाँधकर, उसके सामने के भाग में थोड़ा शहद लगाकर मीनार की दीवार पर उसे स्वतंत्र छोड़ देने को कहा। परिणाम स्वरूप वह भ्रमर उस शहद को पाने के लालच में ऊपर मीनार की ओर बढ़ने लगा और अंततोगत्वा वहाँ पहुंच भी गया। मंत्री ने भ्रमर से बंधे रेशमी धागे को पकड़ कर, अपनी पत्नी को उस धागे के दूसरे छोर पर सूती धागे को, (जो उससे कुछ मजबूत था) और फिर क्रमशः पतली रस्सी व मोटी रस्सी बांधने को कहा। धीरे-धीरे, सावधानीपूर्वक खींचने पर अंत में वह मोटी रस्सी, मंत्री को उपलब्ध हो गई। और फिर तो सब सरल ही था। वह रस्सी के सहारे उतर कर वह अपने प्राण बचाने में सफल हो गया।

हमारे शरीर में श्वास की प्रक्रिया भी उस रेशमी धागे के समान है जिसको एक बार पकड़कर, और उसे नियंत्रित करने की कला आत्मसात करके, हम नाड़ी-प्रवाह पर अधिकार कर सकते हैं– और फिर उसके द्वारा विचारों की श्रृंखला रूपी पतली रस्सी व अन्ततोगत्वा प्राण रूपी मोटी रस्सी पर आधिपत्य करके मुक्ति के द्वार तक पहुँच सकते हैं।

अभ्यास हेतु

1. 'दायरे में बन्द सोच' तथा 'दायरे से मुक्त सोच' के संकेताकों के सन्दर्भ में आप स्वयं का आंकलन करें–

निर्धारण	दायरे में बन्द सोच	दायरे से मुक्त सोच
बहुत हद तक		
कुछ हद तक		
कदापि नहीं		

2. 'व्यक्तित्व' और 'स्व' के अपने स्वयं के आँकलन में आप स्वयं कहाँ हैं?

	स्व विदित	स्व अविदित
अन्य को विदित	अ	ब
अन्य को अविदित	स	द

किस प्रकार से आप 'अ' के आकार का 'ब', 'स' अथवा 'द' के सापेक्ष विस्तार करेंगे?

3. संस्था जिससे आप सम्बन्ध हैं, का एस.डब्लू.ओ.टी. (शक्तियाँ, कमियाँ, अवसर तथा खतरे) आधारित विश्लेषण पाँच के समूह में करे।

4. अध्यापक शिक्षा संस्था जहाँ आप कार्यरत है वह संस्था आपके अनुभव में निम्नांकित मानदण्डों पर उत्कृष्ट/सामान्य/सामान्य से न्यून, में से किस स्तर पर है:

क्रम संख्या	मानदण्ड	उत्कृष्ट	सामान्य	सामान्य से न्यून
1.	पर्यावरणीय जागरूकता			
2.	बालिका स्वतंत्रता			
3.	राष्ट्रीय एकीकरण कार्यक्रम			
4.	अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध कार्यक्रम			
5.	अध्यापक की सुस्थित जीवन शैली			
6.	प्रधानाचार्य/संस्थाध्यापक की क्रियान्वितिकारी शैली			
7.	श्रेष्ठता प्रोत्साहन की गतिविधियाँ			
8.	परिसर में स्वास्थ्य प्रबन्धन			
9.	एकाग्रता हेतु योग सत्र			

अध्ययन एवं परामर्श हेतु

1. स्वामी विवेकानन्द : *हिन्दू धर्म,* श्रीरामकृष्ण-शिवानन्द-स्मृति ग्रन्थमाला (पुष्प 17), रामकृष्ण मठ, नागपुर, 2007.
2. स्वामी विवेकानन्द : *विवेकवाणी,* श्रीरामकृष्ण-शिवानन्द-स्मृति ग्रन्थमाला (पुष्प 160), रामकृष्ण मठ, नागपुर, 2013.
3. स्वामी विवेकानन्द : भारतीय युवा-शक्ति के नायक, विवेकानन्द केन्द्र कन्याकुमारी, 2013.
4. स्वामी विवेकानन्द का शंखनाद : विवेकानन्द केन्द्र, हिन्दी प्रकाशन विभाग, जोधपुर, 2012.
5. स्वामी रंगनाथानन्द : 'स्वामी विवेकानन्द का मानवतावाद', अद्वैत आश्रम, कोलकाता, 2010.
6. निवेदिता रधुनाथ भिड़े : 'स्वामी विवेकानन्द का दृष्टिकोण और भारतीय स्त्री जीवन–भावी पथ', विवेकानन्द केन्द्र, हिन्दी प्रकाशन विभाग, जोधपुर, 2014.
7. ए.आर.के.शर्मा : 'उद्यमिता के सूत्र' (स्वामी विवेकानन्द के संदेशों पर आधारित) रामकृष्ण मठ, नागपुर, 2014.
8. ए.आर.के.शर्मा : 'स्मृति सीमा से परे होकर सोचने का तरीका' (स्वामी विवेकानन्द की रचनात्मक प्रतिभा पर आधारित) रामकृष्ण मठ, नागपुर, 2013.
9. स्वामी विवेकानन्द : 'पत्रावली' श्री रामकृष्ण–शिवानन्द–स्मृति ग्रन्थमाला (पुष्प 34) रामकृष्ण मठ, नागपुर, 2014.
10. स्वामी विवेकानन्द सार्धशती समारोह शृंखला : विश्वजीत पुस्तक माला (12) स्वामी विवेकानन्द सार्धशती समारोह समिति, नई दिल्ली, 2013.
11. स्वामी विदेहात्मानन्द 'स्वामी विवेकानन्द और उनका अवदान', अद्वैत आश्रम, कोलकाता, 2012.
12. स्वामी विवेकानन्द : (संक्षिप्त जीवनी) अद्वैत आश्रम, कोलकाता, 2013.
13. ए.आर.के. शर्मा : 'साहसी बनने के लिए स्वामी विवेकानन्द के नेतृत्व–सूत्र', राम कृष्ण मठ, नागपुर, 2013.
14. A.R.K. Sharma, *Out-of-the-box-thinking*, Sri Sarada Book House, Vijayawada, 2014.
15. John W. Gardner, *Excellence – Can We Be Equal and Excellent Too?*, University Book Stall, Delhi, 1967.
16. Pandey K.P., *Perspectives in Social Foundations of Education*, Shipra Publication, New Delhi, 2010.
17. M. Mujeeb, *Education and Traditional Values*, Meenakshi Prakashan, Delhi, 1965.

18. John Fien et al., *Learning for a Sustainable Environment – An Agenda for Teacher Education in Asia and the Pacific*, UNESCO, Bangkok, 1996.

19. *New Frontiers for Designing and Implementing Environmental Education Programmes*, Report of a Round Table, Colombo, Sri Lanka, UNESCO, Bangkok, 1992.

20. *Peace Education – Framework for Teacher Education*, UNESCO, New Delhi, 2005.

21. *Challenge of Education – A Policy Perspective*, Ministry of Education, Govt. of India, New Delhi, 1985.

22. Sri Yogendraraj, *Yoga Hygiene Simplified*, The Yoga Institute, Santracruz Mumbai, 2008.

23. Chris Clarke-Epstein, *Important Questions Every Leader Should Ask and Answer*, PHI, New Delhi, 2007.

24. Marmar Mukhopadhyay, *Total Quality Management in Education*, NIEPA, New Delhi, 2001.

हिन्दी–अंग्रेजी शब्दावली
(हिन्दी रूपान्तरण)

मॉड्यूल्-1

जीवन रचना	Life-Building
मानव सृजन	Man-Making
चरित्र गठन	Character-Making
विचारों का आत्मसात्करण	Assimilation of Ideas
अपेक्षित	Needed
ग्रंथालय	Libraries
विश्वकोश	Encyclopaedia
अधिदेश	Mandate
परिप्रेक्ष्य / भविष्य की दृष्टि	Vision
प्रासंगिकता	Relevance
गुणात्मक / गुण	Quality
नियामक	Regulatory
सशक्तिकरण	Empowering
प्रतिमानपरक बदलाव	Paradigmic Shift
चिन्तन हेतु	To Reflect
अधिगम समाज	Learning Society
अधिगम के लिए सीखना	Learning to Learn
समावेशी शिक्षा	Inclusive Education
पठन एवं मनन हेतु	To Read and Ruminate
कथायें	Parables
अभ्यास हेतु	To Do
पुनः अभिविन्यासित	Reorienting
अध्ययन एवं परामर्श हेतु	To Read and Consult

मॉड्यूल्-2

सकारात्मक विचार	Positive Ideas
नकारात्मक विचार	Negative Thoughts
अध्यापक प्रशिक्षक	Teacher Educator
नेतृत्व गुण	Leadership Qualities
कर्त्तव्यनिष्ठा	Devotion to Duty
हस्तक्षेपहीनता	Non-Interference
स्वदेश प्रेम एवं स्वातंत्र्य बोध	Patriotism and Freedom
व्यक्तित्व विकास	Personality Development
प्रक्षिप्त	Tossing
शांति एवं सौहार्द	Peace and Harmony
आंतरिक शान्ति	Inner Peace
समाजिक शान्ति	Social Peace
प्रकृति से शान्ति	Peace with Nature
अन्तर्राष्ट्रीय अहिंसा दिवस	International Day of Non-Violence
जागरूकता / अभिज्ञता	Awareness
सार्वभौम प्रासंगिकता	Universal Relevance
अहिंसा के सिद्धान्त	Principles of Non-Violence
शान्ति की संस्कृति	Culture of Peace
सहिष्णुता	Tolerance
परस्पर अवबोध	Understanding
समानता	Equality
उत्कृष्टता / श्रेष्ठता	Excellence
कौशल विकास कार्यक्रम	Skill Development Programme
दक्षताएं	Competencies
केन्द्रिक शिक्षण कौशल	Core-Teaching Skills
विचारावेश प्रक्रिया आधारित सत्र	Brainstorming Session
वाद–विवाद सत्र	Debate Session

मॉड्यूल्-3

एकाग्रता	Concentration
ज्ञान प्राप्ति	Attaining Knowledge
प्रवृत्ति	Tendency
पाठ्यक्रम और शिक्षण पद्धतियाँ	Curricular and Teaching Methods
उपागम	Approach
अभिकल्प	Design
सामान्य रूचियां	Common Interacts
संस्थागत कारक	Institutional Factors
प्रासंगिक समागम	Relevant Associations
व्यावसायिक वर्गीकरण	Professional classification
एकीकरण की अवधारणायें	Unifying Concepts
विषय-केन्द्रित	Subject-Centred
विद्यार्थी-केन्द्रित	Student-Centred
मूल्यन	Valuing
अन्तर्वस्तु और प्रक्रिया	Content and Process
प्रवर्धक	Multiplier
दो अलग युग्म	Dichotomous
प्रत्यक्ष और परोक्ष	Direct and Indirect
अनुदेशन	Instruction
समस्या–समाधान	Problem-Solving
पृच्छा	Inquiry
संकल्पना / सम्प्रत्यय / अवधारणा	Concept
सम्प्राप्ति युक्तियां	Attainment Strategies
दृष्टान्त	Example
परास	Range
सम्प्रत्ययात्मक गति	Conceptual Movement
आगमन और निगमन	Induction and Deduction
नकारात्मक दृष्टान्तों	Non-Examples

अन्वेषण	Search
खोज	Discovery
अधिगमकर्ता	Learner
स्वमूल्यांकन	Self-Evalution
समूह परिचर्या	Group Discussion
सूचना और प्रौद्योगिकी सम्प्रेषण	Information and Communication Technology
आंकिक साक्षरता	Digital Literacy
परिवर्तनशील शिक्षणविधा	Changing Pedagogy
रचनावाद	Constructivism
संयोजितावाद	Connectivism
विमर्शी सत्र	Reflective Session
क्रियात्मक शोध परियोजना	Action Research Project
युग्मीय विमर्श सत्र	Buzz Session

मॉड्यूल्-4

साधन	The Means
साध्य	The End
वैश्विक संदर्भ	Global Context
ज्ञान के लिए अधिगम	Learning to Know
करने के लिए अधिगम	Learning to Do
साथ–साथ रहने के लिए अधिगम	Learning to Live Together
आत्म सिद्धि के लिए अधिगम	Learning to Be
प्रज्ज्वलित मस्तिष्क	Ignited Mind
सामंजस्य की स्थापना में	In Attaining Congruence
सेवा–पूर्व	Pre-Service
सेवा–रत	In-Service
जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान	District Institute of Education and Training
पुनर्रचना	Re-Structuring
प्रेक्षणों	Observations
पुनः अभिकल्पन	Re-Designing
नीतिपरक सिद्धान्तों	Principles of Ethicality
मतारोपण	Indoctrination
विमर्श परिचर्चा	Reflective Discussion

मॉड्यूल-5

नैतिक आचार	Moral Ethics
मुद्दे एवं परिप्रेक्ष्य	Issues and Perspectives
मूल्य	Value
मूल्यों का शिक्षण–शास्त्र	Pedagogy of Values
अधिकोषण	Banking
प्रतिधारित	Retained
उद्देश्य	Objective
सहकार	Co-Operation
मनोवैज्ञानिक	Psychological
सामाजिक	Sociological
ज्ञान–मीमांसा	Epistemological
मूल्य–उन्मुख	Value-Oriented
शारीरिक शिक्षा	Physical Education
सांवेगिक शिक्षा	Emotional Education
मानसिक विकास	Mental Development
सौन्दर्यात्मक विकास	Aesthetic Development
नैतिक और आध्यात्मिक	Moral and Spiritual
नैतिक दायित्व	Moral Obligation
नैतिक प्रेरणा	Moral Motivation
पेशा / व्यवसाय विशिष्ट	Profession Specific
परिष्कृत नैतिक समझ	Sophisticated Ethical Understanding
आन्तरिक मूल्यों	Inner Values
संयम की नीति	Ethic of Restraint
सदाचार की नीति	Ethic of Virtue
परोपकारिता की नीति	Ethic of Altruism
भिक्षुओं	Monks
भिक्षुणिओं	Nuns
प्रदूषण	Pollution

अहिंसक	Non-Violent
सतर्कता	Heedfulness
सावधानी	Mindfulness
अभिज्ञता / जागरूकता	Awareness
बुनियादी उपकरणों	Basic Toolkit
अन्तरदर्शनात्मक	Introspective
पंथ–निरपेक्ष संदर्भ	Secular Context
आत्म–सम्मान	Self-Respect
व्यक्तिगत निष्ठा	Personal Integrity
आत्म–छवि	Self-Image
अन्तर्निविष्ट	Inculcation
व्यष्टि अध्ययन	Case Study
कारणों का विवरण	Etiology

मॉड्यूल-6

प्रबल सत्यनिष्ठा	Tremendous Integrity
प्रबल निष्कपटता	Tremendous Sincerity
प्रबल अध्यवसाय	Tremendous Perseverance
प्रबल इच्छाशक्ति	Tremendous will
सफलता का रहस्य	Secret of Success
दायरे से मुक्त सोच	Out-of-the-Box-Thinking
दायरे में बन्द सोच	In-the-Box-Thinking
भेदक	Differentia
लक्ष्यों	Goals
सुविदित	Familiar
अविदित	Unfamiliar
उल्लास और भावों के प्रवाह	Exuberance and Flow of Emotions
यन्त्रवत और सुस्त	Mechanical and Dull
साझा भविष्य दृष्टि और अवबोध	Shared Vision and Understanding
बोझ	Taxed
आवेग और प्रेरक की ऊर्जा	Thrill and Energy of Inspiration
कमाऊ–खाऊपन के रूझान	Motive of being 'Go-Getter'
रूपान्तरण	Transformation
कार्यों के निष्पादन	Transaction of Tasks
पहियों को खुला रास्ता	Freewheeling
प्रणाली में कसी	Straitjacketed
प्रतिवादक या व्याख्यता की पद्धति	Interpreter Mode
अनुवादक की पद्धति	Translator Mode
एक नया मानक सृजित	Emergence of a Norm
निर्धारित मानकों द्वारा नियंत्रित	Controlled by Norms
स्वाधीनता और परस्पर निर्भरता के प्रतिमान	Paradigm of Independence and Inter-Dependence
परनिर्भरता के प्रतिमान	Dependence Paradigm

मूल्यांकन के प्रारूप	Evaluation Protocols
रचनात्मक और संकलनात्मक	Formative and Summative
सृजनात्मक	Creativity
आवर्धित	Magnified
गुणवत्ता और श्रेष्ठता / उत्कृष्टता	Quality and Excellence
वैयक्तिकता एवं साझेदारी के प्रयोजन	Individuality and Shared Purposes
स्वयं को पाना तथा स्वयं को खोना	Finding Oneself and Losing Oneself
समानता और समता	Equality and Equity
उपयोगितावादी	Utilitarianism
अवधारणा और अर्थ	Concept and Connotation
समानता के निर्धारक	Determinants of Equality
महिला सशक्तिकरण	Women Empowerment
सम्मानीय स्मृति	Revered Memory
उपासना	Worship
आत्म त्याग	Renunciation
पंथ निरपेक्ष शिक्षा	Secular Education
जन शिक्षा	Education of the Masses
महान् आध्यात्मिक सत्यों	Great Spiritual Truths
पूर्वापेक्षाएँ	Requisites
अनुभव	Feeling
समाधान	Solution
दृढ़ता	Steadfastness
कार्य उपासना के रूप में	Work as worship
पर्यावरणीय शिक्षा	Environmental Education
प्रबन्ध	Management
बहुसांस्कृतिक शिक्षा	Multi-Cultural Education
राष्ट्रीय एकता	National Integration
छिद्रान्वेषी	Fault-Finding

अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध	International Understanding
सहयोग	Co-operation
शान्ति	Peace
प्रकार्य	Functions
सुस्थित जीवन शैली	Wellness Life Style
स्वास्थ्य	Health
स्वास्थ्य-विज्ञान	Hygiene
योग	Yoga
वैकल्पिक उपागम	Alternative Approaches
निर्धारक	Determinants
मूलभूत घटक	Key factors
जैविक चिकित्सकीय	Bio-medical
मानसिक स्वास्थ्य	Mental Health
उपापचयी	Metabolic
प्रावारक	Coping
आनुवंशिकी	Genetics
मोक्ष	Liberation
सर्वांगीण उपागम	Holistic Approach
योग-शरीरशास्त्र	Yoga Physiology
मध्यस्थता	Intervention
मनोविदलता	Schizophrenia
दमा	Asthma
तनाव–प्रबन्धन	Stress Management
संज्ञान	Cognition
चेतना	Consciousness
सर्वज्ञता	Omniscience
परा प्राकृतिक सिद्धियों	Supernatural Accomplishments
रूपांतरणवादी	Transformationalist
क्रियान्वितिकारी	Transactionalist

चरित्र की पवित्रता	Purity of Character
जन्मजात योग्यता	Inborn Quality
सैनिक चेतना	Martial Spirit
आत्माधिकार	Self-Assertion
आत्म त्याग	Self-Sacrifice
धक्का सहने की तत्परता	Bear the Brunt
निष्पक्ष और व्यक्ति-निरपेक्ष	Impartial and Impersonal
सहानुभूति और सहिष्णुता	Sympathy and Tolerance
शक्तियाँ, कमियाँ, अवसर तथा खतरे आधारित विश्लेषण	SWOT (Strength, Weakness, Opportunity and Threat) Analysis

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद्

सारे देश में अध्यापक शिक्षा प्रणाली का योजनाबद्ध और समन्वित विकास करने तथा अध्यापक शिक्षा प्रणाली में मानकों और स्तरमानों विनियमन और उन्हें समुचित रूप में बनाए रखने की दृष्टि से तथा उनसे सम्बन्धित विषयों का उपबन्ध करने के लिए राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् की स्थापना संसद के एक अधिनियम (1993 का अधिनियम संख्यांक 73) के द्वारा की गयी। राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् 17 अगस्त 1995 को अस्तित्व में आया।

अध्यापक शिक्षा

''अध्यापक शिक्षा'' से विद्यालयों में पूर्व प्राथमिक, प्राथमिक, माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक प्रक्रमों पर अध्यापन करने के लिए व्यक्तियों को तैयार करने के लिए शिक्षा, अनुसंधान या प्रशिक्षण के कार्यक्रम अभिप्रेत है और इसके अन्तर्गत अनौपचारिक शिक्षा, अंशकालिक शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा तथा पत्राचार शिक्षा है। (अनुच्छेद 2 (ठ) रा0 अ0 शि0 प0 अधिनियम 1993)

मानक एवं स्तरमान

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् द्वारा निम्नांकित अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों के लिए राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् (मान्यता मानदण्ड तथा क्रिया–विधि) विनियम 2014 की अधिसूचना जारी की गयी :

- स्कूल पूर्व शिक्षा में डिप्लोमा (डी.पी.एस.ई.) प्राप्त कराने वाला प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा कार्यक्रम।
- प्रारम्भिक शिक्षा में डिप्लोमा (डी.एल.एड.) प्राप्त कराने वाला प्रारम्भिक अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम।
- प्रारम्भिक शिक्षा में स्नातक (बी.एल.एड.) डिग्री प्राप्त कराने वाला प्रारम्भिक अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम।
- शिक्षा में स्नातक (बी.एड.) डिग्री प्राप्त कराने वाला स्नातक शिक्षा कार्यक्रम।
- शिक्षा में मास्टर (एम.एड.) डिग्री प्राप्त कराने वाला शिक्षा में मास्टर कार्यक्रम।
- शारीरिक शिक्षा में डिप्लोमा (डी.पी.एड.) प्राप्त कराने वाला शारीरिक शिक्षा में डिप्लोमा कार्यक्रम।
- शारीरिक शिक्षा में स्नातक (बी.पी.एड.) डिग्री प्राप्त कराने वाला शारीरिक शिक्षा में स्नातक कार्यक्रम।
- शारीरिक शिक्षा में मास्टर (एम.पी.एड.) डिग्री प्राप्त कराने वाला शारीरिक शिक्षा में मास्टर कार्यक्रम।
- प्रारम्भिक शिक्षा में डिप्लोमा (डी.एल.एड.) प्राप्त कराने वाला मुक्त और दूरस्थ शिक्षा प्रणाली के माध्यम से प्रारम्भिक शिक्षा में डिप्लोमा कार्यक्रम।
- शिक्षा में स्नातक (बी.एड.) डिग्री प्राप्त कराने वाला मुक्त और दूरस्थ शिक्षा प्रणाली के माध्यम से शिक्षा में स्नातक कार्यक्रम।
- कला शिक्षा में डिप्लोमा (दृश्य कलाएं) प्राप्त कराने वाला कला शिक्षा में डिप्लोमा (दृश्य कलाएं) कार्यक्रम।
- कला शिक्षा में डिप्लोमा (निष्पादन कलाएं) प्राप्त कराने वाला कला शिक्षा में डिप्लोमा (निष्पादन कलाएं) कार्यक्रम।
- बी.ए. बी.एड./बी.एससी. बी.एड. प्राप्त कराने वाला 4 वर्षीय (एकीकृत) कार्यक्रम।
- शिक्षा में स्नातक (बी.एड.) डिग्री प्राप्त कराने वाला शिक्षा में स्नातक (अंशकालिक) कार्यक्रम।
- बी.एड. एम.एड. (एकीकृत) डिग्री प्राप्त कराने वाला बी.एड. एम.एड. 3 वर्षीय (एकीकृत) कार्यक्रम।

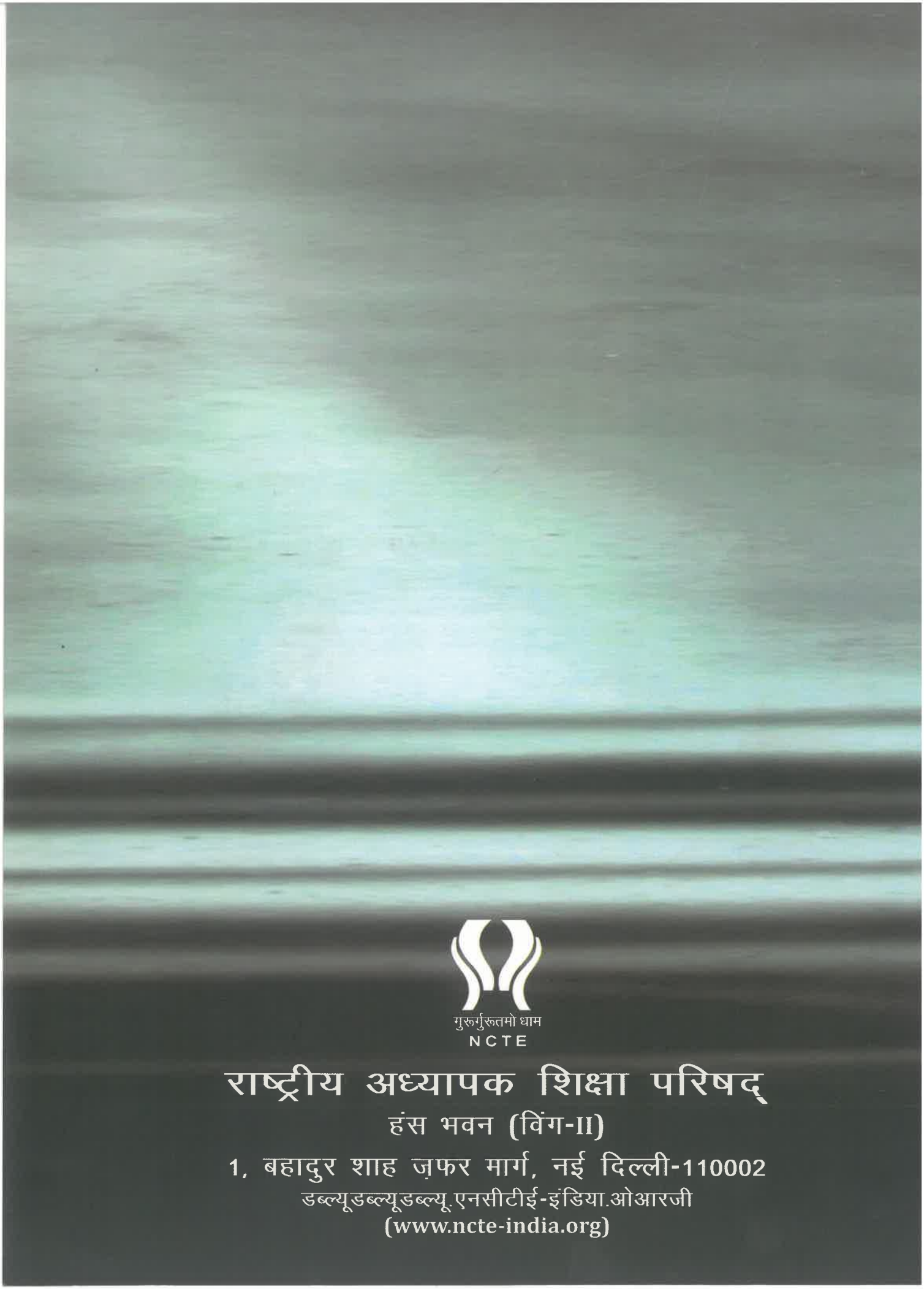

गुरूर्गुरूतमो धाम
NCTE

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद्

हंस भवन (विंग-II)

1, बहादुर शाह ज़फर मार्ग, नई दिल्ली-110002

डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू.एनसीटीई-इंडिया.ओआरजी

(www.ncte-india.org)